मन्नूभण्डारी के कथा-साहित्य में नारी चरित्र

(सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध)
(२००४)

अनुसन्धित्सु
चौहाण कैलास एम.
सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,
राजकोट

शोध-निर्देशिका
डॉ. गीताबहन दवे
अध्यक्षा, हिन्दी विभाग,
के.एस.एन. कणसागरा महिला कॉलेज
राजकोट

वर्ष : २००४

अनुशंसा प्रमाणपत्र

मैं प्रमाणित करती हूँ कि कैलास एम. चौहाण ने ''मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में नारी चरित्र '' शीर्षक प्रस्तुत शोध प्रबंध अपनी पीएच. डी. की उपाधि के लिए मेरे निर्देशन में तैयार किया है। यह इनका मौलिक शोधकार्य है। अतएव मैं कैलास एम. चौहाण को यह शोध प्रबंध सौराष्ट्र विश्व विद्यालय की उक्त उपाधी के लिए प्रस्तुत करने की अनुमती देती हूँ। इस अनुशंसा के साथ ही मैं यह प्रमाणित करती हूँ कि यह शोधकार्य किसी भी अन्य विश्वविद्यालय में पूर्णतः अथवा अंशतः किसी भी अन्य उपाधि के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है।

राजकोट (गुजरात)
दिनांकः

प्रो. (डॉ.) गीताबहन दवे
शोध-निर्देशिका
अध्यक्षा,
हिन्दी विभाग,
के.एस.एन. कणसागरा महिला कॉलेज
राजकोट

CANDIDATE'S STATEMENT

I hereby declare that the work incorporated in my present thesis is original and has not been sumitted to any universities/Institutions for the award of diploma or degree.

I further deciare that the result presented in this thesis and considerations therein. contribute in general tothe adrancement of knowledge hindi and particular to "The Famel Characters in the Fiction by Mannu Bhandari"

Kailas .M. Chauhan
Ph.D. Researcher (Hindi)
Saurashtra University
Rajkot
(Gujarat)

निवेदन

१. विषय प्रवेश :

मनुष्य जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिये एक व्यवस्था को स्थापित व विकसित किया जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत नियम, नीतियाँ, धारणाएँ आदर्श आदि सभ्यता और संस्कृति का रूप धारण कर लेती है। समाज के विकास के लिये इस प्रकार के जीवन मूल्य एक दर्शन का विकास करते हैं। भारतीय दर्शन के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को जीवन के सर्वोच्च पुरुषार्थ अथवा मूल्य माना गया, किन्तु देश काल और संस्कृति से इसकी भिन्नता का होना स्वाभाविक है।

जीवन में इनकी अवस्थिति भौतिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक आध्यात्मिक आदि आधारों पर होती है। व्यावहारिक तौर पर पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव और अर्थ तंत्र के बढ़ते शिकंजे के कारण भौतिक और आध्यात्मिक विकास की गति अवरुद्ध हुई है। इस अवरोध से सामाजिक मूल्यों में सहिष्णुता समानता और नैतिकता के भाव अवरुद्ध हुए है। इस अवरोध से सामाजिक मूल्यों में सहिष्णुता, समानता और नैतिकता के भाव लोप होने लगा है, किन्तु स्वार्थ और स्वयं के प्रति आग्रह में वृद्धि हुई है। मैं की इस दौड़ में अधिकारों की मांग बढी है, कर्तव्यों की प्रतिबद्धता न्यून हुई है। प्रतिस्पर्धा की यह चेतना स्त्री–पुरुष दोनों में बढी हैं फलतः मूल्यों के हास का संकट भी उत्पन्न होने लगा है। अरस्तु ने कहा था– औरत केवल पदार्थ है, जबकि पुरुष गति है। मन्नूजी ने लिखा है– नारी कभी स्वतंत्र नहीं है, न बाल्यकाल में, न यौवनकाल में और न वृद्धावस्था में। पुरुष ने अपनी सफल प्रभु सत्ता के लिए स्त्री को खतरा माना और उसकी सत्ता को घर की चार दीवारी में जकड़ दिया गया। औरत ने कभी स्वतंत्र रूप से अपना

संगठन नहीं बनाया, कभी स्वयं को स्वतंत्र जाति के रूप में नहीं देखा, न ही कोई उसका जातिय इतिहास रचा गया। चाहे राजनीतिक क्रान्ति हो, चाहे अर्थक्रान्ति हो, चाहे सामाजिक शोषण के खिलाफ संघर्ष की भूमिका हो, स्त्री की स्थिति सदा नगण्य रही। उसके कारण युद्ध रचे गये लेकिन उसने युद्ध नहीं किया, वर्ग संघर्ष ने उसके श्रम का मूल्य नहीं आंका गया, वह हाशिये पर अपने जन्म और जैविकिय आधार को अपनी नियति मान कर सहती रही। कला, संगीत, सौदर्य साहित्य की अन्तर्वर्ती धारा-की प्रेरणा और मूर्तिकरण के बावजूद नारी सदा जीवन के हाशिये पर जीती रही।

भारतीय संदर्भो में नारी शोषण का एक लम्बा इतिहास हैं। मध्यकालीन विदेशी आक्रमण और विलास का आत्म केन्द्रीत रूप भी उसी का अंग है, किन्तु वर्तमान संदर्भो में नारी की स्वतंत्रता भी पुरुष विरोधी और अतिवादी दौर पर नहीं अपितु स्वयं के संतुलित आकलन पर निर्भर है। कठिनाई तब आती है, जब अपनी मूलभूत परंपराओं से हटकर दो सभ्यताओं का आदान प्रदान एक नई मगर दुविधाग्रस्त संस्कृति का जन्म बन जाता है।

२. विषय का महत्त्व :

सृष्टि का सर्वोतम समुभत विकास मानव सभ्यता में परिलक्षित होता हैं। आदि मानव से अधुनातन समाज संगठनों तक विविध सामाजिक, सांस्कृतिक बौद्धिक विचारधारा सतत विकास मान रही है। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण भुमिका पति और पत्नि के रूप में पुरुष और स्त्री की रही है। पुरुष और स्त्री का यह दाम्पत्य-भाव विवाह और पारिवारिक जीवन के सामाजिक विकास का एक लम्बा इतिहास विद्यमान है। समाज सम्मत स्त्री पुरुष के संबंध जिस दिन विवाह के रूप में परिणत हुए, उसी दिन दाम्पत्य जीवन का एक नया आयाम विकसीत

हुआ । सभ्यता के साथ-साथ यह संबंध मानव जीवन में अपनी विशिष्ट स्थिति और प्रभाव छोड़ता गया ।

सामाजिक मूल्यों के परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप समाज जीवन के मूल्यों में भी परिवर्तन हुआ । संचार माध्यमों और विज्ञान की उन्नति ने विश्व संस्कृतिओं को परस्पर निकट ला खड़ा किया । परिणाम स्वरूप सारे विश्व के समाजों में सामाजिक विघटन की कई प्रवृतियाँ समाविष्ट हुई । भारतीय समाज-जीवन भी इससे प्रभावित हुआ । नारी जीवन संबंधी मूल्यों और मान्यताओं में परिवर्तन हुए । इसका सीधा प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा है ।

मन्नू भण्डारी का कथा-साहित्य द्वन्दों से भरा पड़ा हैं । उनके कथा-साहित्य में पाश्चात्य के व्यक्ति वैचित्र्यवाद और भारतीय रसवाद का समान संमिश्रण देखा जा सकता है । नारी मन की क्षमता और दुर्बलता का चित्रण इनके कथा-साहित्य का मुख्य प्रतिपाद्य रहा है । नारी मन से नारी का यथार्थपरक चित्र ही प्रस्तुत किया है । मन्नूजी के पास वह शक्ति, जिससे वह भ्रम और सेक्स के शोषण के बीच पिसती नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्त्व को ढूंढ निकालती है ।

मन्नूजी के कथा-साहित्य में नारी की मानसिकता का चित्रण अधिक है । उनके नारी पात्र अन्तर्द्वन्दों से गुजरते हैं, वे अन्तर्द्वन्द आज भी समाज में देखे जा सकते हैं ।

आज के हिन्दी कथा-साहित्य में जीवन का विस्तार अधिक हैं, इसमे कोई संदेह नहीं इस विस्तार के कई रूप, स्तर और आयाम है, मनुष्य के टूटने बनने की बहुमुखी गाथा है । यह भी सत्य है कि इसमे बाह्य जीवन का स्वरूप ही विशेष रूप में प्रस्तुत किया गया है । इतना ही नहीं सामाजिक जीवन के अनेक स्तर भी उद्‌घाटित हुए हैं । जीवन के उतार-चढाव के अनेक चित्र भी प्रस्तुत किए गए हैं । मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में युग के सामाजिक राजनीतिक जीवन के

मूल्यों और मान्यताओं की पृष्ठभूमि में सहज मानव आवरण और उसकी विडम्बना को दर्शाया गया हैं ।

मन्नू भण्डारी के साहित्यिक क्षेत्र में नारी–पुरुष संबंधों के नये मूल्यांलकन समाज–जीवन में नारी का महत्त्व, आवश्यकता, अधिकार, परिवार विवाह, दाम्पत्य जीवन और इनसे संबंधित कई समस्याओं को मन्नू भण्डारी ने अपने विशिष्ट दृष्टिकोण द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । इस दृष्टि से उनका निरंतर अभिवृद्ध होता योगदान उनके कथा–साहित्य की बहुत बड़ी उपलब्धि हैं ।

यह अध्ययन मन्नू भण्डारी के कथा–साहित्य में नारी चित्रण के व्यापक योगदान को प्रस्तुत करता है। इस में दाम्पत्य जीवन की आधुनिक जटीलता, नारी की सामाजिक नियति, पुरुष की एकाधिकारी मानसिकता और विभिन्न स्तरों पर जीवन यापन कर रहे नारी–पुरुष के संबंधों, कुंठाओं, वर्जनाओं एवम् परिवेश को कथा–साहित्य के द्वारा समझने और विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है ।

३. प्रेरणा एवम् विषय चयन :

हिन्दी के प्रति मेरा लगाव विद्यार्थी काल से ही बढ़ता रहा है। हिन्दी भाषा साहित्य के प्रति विशेष अभिरुचि होने के कारण मैंने स्नातकोत्तर कक्षा के लिए हिन्दी विषय को पसंद किया।

मैं स्वयं नारी हूँ। पेशे से प्राध्यापिका हूँ। मन्नू भण्डारी के कथा–साहित्य की नायिकाओं में मेरा पाठकीय प्रतिनिधायन स्थापित हैं। स्वतंत्रता के पचास वर्ष के पश्चात भी आज भारतीय नारी को अपने ही समाज में अपनी अस्मिता को खोजना कठिन हैं। प्राध्यापिका के रूप में मन्नू भण्डारी की कतिपय कहानियों को पढ़ाने का मुझे मौका मिला हैं । मैं शरु से ही स्मित चुगताई, अमृता प्रीतम, शिवानी, सुर्यबाला, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, कृष्णा सोबती इत्यादि प्रथित यश

महिला कथा साहित्यकारों द्वारा प्रतिगादित नारी जीवन दर्शन से प्रभावित हूँ। अतः मैंने मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य पर शोधकार्य करने का निश्चय किया।

डॉ. गीताबहन दवे ने इस शोधकार्य की दिशा में मेरा पथदर्शन किया। डॉ. गीताबहन मेरे शोध निर्देशिका ही नहीं पथपदर्शिका भी हैं। इनके सत्यपरामर्शन में मेरा शोधकार्य सुचारु रूप से चल रहा है। उन्होंने मेरी आनुशीलनिक निष्ठा को विकासोन्मुख आयाम दिया है। मैं श्रद्धा पूर्वक डॉ. गीताबहन की मूक प्रणति यहाँ निवेदित करती हूँ।

हिन्दी महिला कथा साहित्यकार वस्तुतः नारीवादी हैं। भारतीय नारी की सामाजिक समस्याओं को केवल भारतीय नारी ही समझ सकती है। नारीवादी कथाकार मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य पर मैं भी एक नारी के रूप में शोधकार्य कर रही हूँ। यह मेरे लिए प्रणल्लभ प्रसन्नता की बात है।

४. सामग्री संकलन के सूत्र :

सामग्री संकलन अध्ययन की आधारशिला है। सामग्री की पूर्णता से ही अध्ययन कार्य स्तरीय बनता है। मेरे अध्ययन का कार्य प्रारंभ करने के साथ ही मन्नू भण्डारी के समग्र कथा-साहित्य को जानने का प्रश्न उपस्थित हुआ। ग्रंथालयों एवम् प्रकाशकों की सहायता से मन्नू भण्डारी का समग्र साहित्य प्राप्त हुआ।

शोधकार्य में गुजरात के समृद्ध ग्रंथालयों से सहायता प्राप्त हुई। सर्व प्रथम मैंने श्रीमती न. च. गांधी महिला कॉलेज-भावनगर, श्री वी. एम. साकरीया महिला कॉलेज-बोटाद, कवि श्री बोटादकर कॉलेज के ग्रंथालयों की मुलाकात लेकर संदर्भ ग्रंथ प्राप्त किए।

गुजरात विद्यापीठ-अहमदाबाद के ग्रंथालय की सदृश्य बनकर संदर्भ ग्रंथों एवम् शोध प्रबंधों का अध्ययन किया।

भावनगर विश्व विद्यालय के ग्रंथालय एवम् एस. एन. डी. टी. महिला कॉलेज के ग्रंथपाल से मुझे संदर्भ साहित्य प्राप्त हुआ।

अध्ययन करते समय अनेक कठिन सवाल हुए। अनुशंधान कार्य में मेरे परम श्रद्धेय गुरुवर्य एवम् अनेक विद्वानों से साक्षात्कार करके गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न किया आत्मीय लोगों के सहयोग से मेरी अनुशीलन यात्रा पल्वीत हुई। परिणाम स्वरूप यह शोध प्रबंध प्रस्तुत हुआ।

५. प्रस्तुत शोध प्रबंध की विशेषताएँ :

प्रस्तुत शोध प्रबंध में हिन्दी कथा-साहित्य में नारी के स्वत्त्व की पहचान को प्रतिपादिक करने का प्रयास किया गया है।

मन्नू भण्डारी के अद्यावधि प्रकाशित तमाम कथा-साहित्य का नारी चित्रण परिवेश में अध्ययन करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य के सामाजिक परिवर्तन को व्यापक भावभूमि पर अनुशीलन करने का प्रयास किया गया है।

मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी समाज की समस्याओं को व्यक्त किया गया है। नारी की दुर्बलता और क्षमता का चित्रण उनके साहित्य का प्रतिपाद रहा है। नारी अस्मिता का प्रश्न अनेक आयामी हैं। एक लम्बी पुरानी स्थापित व्यवस्था को तोड़कर जनसंघर्ष में जुड़ना और कदम-कदम पर यथार्थ से मुठभेड़ करना अस्मिता की पहचान का तकाजा है। मन्नूजी के कथा-साहित्य के माध्यम से स्वाधीनता के पश्यात आये सामाजिक परिवर्तन को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

६. प्रबंध परिचय :

प्रस्तुत प्रबंध मन्नू भण्डारी के साहित्य में नारी चित्रण की सामग्री पूर्व

कथन को छोड़कर छः अध्यायों में विभाजित की गई है।

प्रथम अध्याय :

१. मन्नू भण्डारी का व्यक्तित्व एवम् कृतित्व :

प्रथम अध्याय में मन्नू भण्डारी के व्यक्तित्व की चर्चा विभिन्न पक्षों के आधार पर की गई हैं। जन्म, माता-पिता, शिक्षा, विवाह, व्यक्तित्व आदि विभिन्न पहलूओं को उपविभागों में बाँटकर विस्तार से स्पष्ट किया गया है।

इस में मन्नू भण्डारी के कृतित्व का उल्लेख भी किया गया है। मन्नूजी के अबतक पाँच उपन्यास, आठ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। जिनका शीर्षक हैं ''आपका बंटी'', ''महाभोज'', ''कलवा'', ''स्वामी'' और ''एक इंच मुस्कान''। मन्नूजी के आठ कहानी संग्रह हैं, ''मैं हार गई'', ''तीन निगाहों की एक तस्वीर'' ''यही सच हैं'', ''एक प्लेट सैलाब'', ''आँखों देखा झुठ'', ''त्रिशंकु'' तथा अन्य कहानियाँ। मन्नूजी के इस कथा-साहित्य का विवेचन इस अध्याय में किया गया है।

द्वितीय अध्याय :

२. हिन्दी कथा साहित्य और नारी चित्रण :

द्वितीय अध्याय में हिन्दी कथा-साहित्य में निरूपीत नारी के शाश्वत रूपों का विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है। साहित्य में नारी के रूपों का वर्गीकरण सदैव होता रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्यात परिस्थितियाँ बदलति है। इसके साथ नारी के जीवन जीने का आधार बदला है। हिन्दी कथा-साहित्य में नारी के शाश्वत रूप माता, पत्नी, प्रेयसी, बहन, विधवा, वेश्या का चित्रांकन किया गया है।

हिन्दी कथा-साहित्य के माध्यम से यह विश्लेषण किया गया है। हिन्दी

कथा साहित्यकार निरूपमा सोबती, मोहन राकेश, महेरुन्नीशा परवेज, उषा प्रियंवदा शैलेष भटियानी, मंजुल भगत, सिम्मी हर्षिता, दूधनाथसिंह, महिपतसिंह, निर्मल वर्मा, मृदुला गर्ग, गिरीराज किशोर, कमलेश्वर, भिष्म साहनी, मुक्तिबोध एवम् राजेन्द्र यादव के कथा-साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन मैंने द्वितीय अध्याय में किया हैं ।

तृतीय अध्याय :

३. मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में नारी के शाश्वत रूप :

तृतीय अध्याय में मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी के शाश्वत रूपों का चित्रण किया गया है । मन्नूजी के नारी चित्रण वैयक्तिक और सामाजिक परिवेश की सीमा में आबद्ध यथार्थ को जोकता हैं और इसी यथार्थभोगी चरित्र अभिष्ट रहा हैं । मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य के आधार पर नारी के माता, पत्नी, प्रेयसी, बहन, विधवा एवम् वेश्या के रूप का विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है ।

मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी के प्रेम, काम, वात्सल्य, स्वातंत्र्य, स्वाभिमान, सहचार्य, अर्थ, दायित्व तथा समायोग्य आदि मूल्यों के विकास मनोवैज्ञानिक आधार फलक पर ग्रहण किया गया है । मन्नूजी के सामाजिक परिवेश में नारी मन की धूटन, टूटन एवम् पुरुष के मन में उठनेवाले संदेह, ईर्षा, भावना आदि को कथा-साहित्य में अभिव्यक्ति प्रदान की है । इस तथ्य को मन्नूजी के कथा साहित्य के अनुशिलन करके रेखांकित किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय :

४. मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में विशिष्ट नारी पात्र :

मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य को उपन्यास और कहानी में विभाजीत

करके इस के विशिष्ट नारी पात्रों का परिचय दिया गया है ।

मन्नू भण्डारी में व्यक्ति का परिवेश उसकी मानसिक परिस्थितियों के लिए किसी हद तक जिम्मेदार होता है । मन्नूजी ने आदर्शो की स्थापना न करते हुए सामाजिक विकृतियों और विडम्बनाओं पर उंगली रखकर सराहनीय कार्य किया है। मन्नूजी के सभी नारी पात्र आधुनिक युग की विषम एवम् संघर्षशील परिस्थितियों में जन्मे मानव हैं । उनके विशिष्ट नारी पात्रों का उल्लेख करके मनोविश्लेषणात्मक ढंग से चरित्र चित्रण प्रस्तुत किया गया है ।

पंचम अध्याय :

५. मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी जीवन की समस्याएँ और समाधान :

मन्नूजी के कथा-साहित्य में नारी जीवन की पारिवारिक, प्रेम व यौन संबंधि, कामकाजी महिला की एवम् विधवा जीवन की समस्याओं का विश्लेषण किया गया है । प्रस्तुत अध्याय में इन समस्याओं का विस्तृत विवेचन किया गया है ।

मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी की समस्याओं का वास्तविक रूप समाज के सामने स्पष्ट करने का एक आयाम रहा है । मन्नूजी के कथा-साहित्य में नारी जीवन की समस्याओं का समाधान भी दिया गया है । नारी पर अन्याय पूर्ण सामाजिक रुढ़ियों को थोपना उचित नहीं हैं । वह शिक्षा ग्रहण कर सके, अपनी इच्छा से विवाह कर सके, विधवाएँ पून:विवाह कर सके और नारी समाज निर्माण के कार्यो में महत्त्व पूर्ण निर्णायक बनें यह चरितार्थ है । इस अध्याय में नारी जीवन की समस्याओं एवम् समाधान पर विमर्श किया गया है ।

षष्ठ अध्याय :

उपसंहार :

हिन्दी की आधुनिक कथा लेखिकाओं में मन्नू भण्डारी अग्र गण्य है । उन्होंने बृहतर सामाजिक आयाम को अपनाकर व्यापक जीवन दृष्टि का परिचय दिया है ।

भारतीय नारी समस्त जागृति, स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता और बौद्धिक क्षमता के बावजूद परिवार प्रति और बच्चों को सर्वाधिक महत्त्व देती है । विशेष रूप से मातृत्व उसका सर्वाधिक प्रबल पक्ष है, अतः पति के दायित्वहीन होने पर भी वह बच्चों के भविष्य को दाव पर नहीं लगा पाती । वह पति से अलग रहकर अथवा विधवा होने पर माता और पिता दोनों की भुमिकाएँ स्वयं निभाती है । उसका निजत्व प्रबल होने पर ''आपका बंटी'' की समस्याँ उत्पन्न हो जाती है । नारी की स्वयं की भी और समाज की भी मानसिकता नारी के त्याग को ही महत्त्व देती है । मन्नूजी के कथा-साहित्य में नारी का वास्तविक चित्रण किया गया है । गहरी संवेदनशीलता अनुभव की उच्चाई और प्रस्तुति का अपना मौलिक कलात्मक अंदाज वे विशेषताएँ हैं, जो उन्हें हिन्दी की एक श्रेष्ठ कथाकार सिद्धती है ।

७. कृतज्ञतापन :

प्रस्तुत शोध प्रबंध विषय चयन के आरंभ से लेकर अनुष्ठान की पूर्णाहुति तक डॉ. गीताबहन दवे (कणसागरा कॉलेज राजकोट) ने मेरा पथ प्रदर्शित किया । उन्होंने असीम स्नेह एवम् धैर्य से सुचारु मार्गदर्शन दिया है । परम आदरणीय श्रद्धेय गुरुवर के स्नेह, आशीर्वाद और पथ प्रदर्शन से लाभान्वित होकर यह अनुसंधान कार्य अग्रसर हुआ है । विषय की पसंदगी करने और सुश्रृंखलित ढंग से अध्यायों के विभाजन करने में उनका मार्गदर्शन बहुत मूल्यवान महसूस

हुआ है। विषय के चुनाव से लेकर उसकी परिणति तक उनके सुझाव और उपदेश मिलते रहे। पूज्य गुरुवर के प्रति में हृदय से आभारी हूँ।

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. एस. पी शर्मा जैसे अर्वाचिन ऋषि समान सदगुरु की प्रेरणा और मार्गदर्शन सम्पन्न हुआ है।

भावनगर विश्व विद्यालय के प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष प्रो. डॉ. जे. जे. त्रिवेदी हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ, प्रखर चिंतक हैं। उनके पथ प्रदर्शन से मेरा श्रम-सौदर्य सार्थक हुआ हैं। में उनकी अंत:करण से आभारी हूँ।

श्री वी. एम. साकरीया कॉलेज के आचार्या श्री शारदाबहन की भी आभारी हूँ। जिन्हों ने मुझे इस शोधकार्य को पूर्ण करने के लिए सदैव उत्साहित किया है।

मैं बोटादकर कॉलेज के ग्रंथपाल श्री आचार्यभाई तथा न. च. गांधी महिला कॉलेज के ग्रंथपाल श्री स्वरूपबहन तथा वी. एम. साकरीया कॉलेज के ग्रंथपाल श्री कृपांगभाई एवम् कणसागरा कॉलेज के ग्रंथपाल श्री हर्षीदाबहन की भी आभारी हूँ। जिन्हों ने संदर्भ सूची और पुस्तकों को उपलब्ध करने में मेरी काफी सहायता की हैं।

मेरी मौसी श्री कुसुमबहन परमार (अध्यापक लालबहादुर शास्त्री विद्यालय-राजकोट) के स्नेह, सहयोग और औदात्यने मुझे बल प्रदान किया हैं।

मेरे जीवन साथी एस. बी. राठोड तथा मेरे दादाजी स्व. जिणाभाई राठोड की शुभकामनाएँ मेरे कार्य की सफलता में पूरक रही है। इस अध्ययन के लिए सामग्री संकलन का कठिन कार्य सम्पन्न करने में सौराष्ट्र विश्व विद्यालय पुस्तकालय, गुजरात विद्यापीठ-अहमदाबाद, श्री बोटादकर कॉलेज ग्रंथालय, श्री न. च. गांधी महिला कॉलेज ग्रंथालय, श्री वी. एम. साकरीया महिला कॉलेज ग्रंथालय

श्री कणसागरा कॉलेज ग्रंथालय के ग्रंथपालों ने विशेष सहयोग दिया हैं । इन सबके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

मैं सभी शुभेच्छकों एवम् सहयोगीयों के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिन्हों ने मुझे यथासंभव सहयोग प्रदान किया हैं ।

सुचारु रूप से टंकनकार श्री हसमुखभाई जी. चौहाण का हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ।

बोटाद **विनीत**

दिनांक **(कैलास एम. चौहाण)**

अनुक्रमणिका

प्रकरण-१

१. मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में नारी चरित्र १-४५

प्रकरण-२

२. हिन्दी कथा साहित्य और नारी चित्रण ४६-११५

प्रकरण-३

३. मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी के शाश्वत रूप ११६-१३७

प्रकरण-४.

४. मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में विशिष्ट नारी पात्रः १३८-१८५

प्रकरण : ५

५ मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी जीवन की

समस्याएँ और समाधान १८६-२२७

प्रकरण-६

उपसंहार २२८-२३९

परिशिष्ट ग्रंथानुक्रमणिका आधार ग्रंथ २४०-२४३

सहायक अंग्रेजी ग्रंथ २८८

पत्र पत्रिकाएँ २८५

विषयानुक्रमणिका

प्रकरण-१

१. मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में नारी चरित्र

१.१ मन्नू भण्डारी का व्यक्तित्व

१.१.१ प्रस्तावना

१.१.२ जन्म

१.१.३ माता-पिता

१.१.४ शिक्षा

१.१.५ विवाह

१.१.६ व्यक्तित्व

१.२ मन्नू भण्डारी का कृतित्व

१.२.१ उपन्यास

१.२.१.१ एक इंच मुस्कान

१.२.१.२ आपका बंटी

१.२.१.३ स्वामी

१.२.१.४ महाभोज

१.२.१.५ कलवा

१.२.२ कहानी संग्रह

१.२.२.१ मैं हार गई

१.२.२.२ यही सच है

१.२.२.३ त्रिशंकु

१.२.२.४ तीन निगाहों की एक तस्वीर

१.२.२.५ एक प्लेट सैलाब

१.२.२.६ आँखों देखा झूठ

१.२.३ नाटक

१.२.३.१ बिना दिवारों के घर

१.३ निष्कर्ष

प्रकरण-२

२. हिन्दी कथा साहित्य और नारी चित्रण

२.१ आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य का विकासात्मक परिचय

२.१.१ कहानी

२.१.२ उपन्यास

२.२ भारतीय समाज में नारी का स्थान और स्थिति

२.२.१ प्राचीनयुग

२.२.२ मध्ययुग

२.२.३ अर्वाचीन युग

२.३ हिन्दी कथा-साहित्य में नारी चित्रण

२.३.१ नारी महत्त्व और सार्थकता

२.३.२ कथा-साहित्य में नारी के विविध रूप

२.३.२.१ माता

२.३.२.२ पत्नी

२.३.२.३ प्रेयसी

२.३.२.४ बहन

२.३.२.५ विधवा

२.३.२.६ वेश्या

२.४ निष्कर्ष

प्रकरण-३

३. मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी के शाश्वत रूप

३.१ प्रस्तावना

३.२ माता

३.३ पत्नी

३.४ प्रेयसी

३.५ बहन

३.६ विधवा

३.७ निष्कर्ष

प्रकरण-४.

४. मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में विशिष्ट नारी पात्र:

४.१. उपन्यास के विशिष्ट नारी पात्र

४.१.१. एक इंच मुस्कान : रंजना - अमला

४.१.२. महाभोज : रुकमा

४.१.३. स्वामी : सोदामिनी (मीनी)

४.१.४. आपका बंटी : शकुन (ममी)

४.२. कहानी के विशिष्ट नारी पात्र:

४.२.१. घूटन : प्रतिमा

४.२.२. नई नोकरी : रमा

४.२.३. एखाने आकाश नाई : लेखा

४.२.४. उँचाई : शिवानी

४.२.५. नशा : आनंदी

४.२.६. एक बार और : बिन्नी

४.२.७. एक कमजोर लड़की की कहानी : रूप

४.२.८. गीत का चुम्बन : कनिका

४.२.९. एक प्लेट सैलाब : कम्मो

४.२.१०. तीन नीगाहों की एक तस्वीर : चित्रा - अरुणा

४.२.११. रानी माँ का चबुतरा : गुलाबी

४.२.१२. क्षय : कुन्ती

४.२.१३. त्रिशंकु : तनु

४.२.१४. सयानी बुआ : सयानी बुआ

४.२.१५. इसा के घर इंसान : एंजिला

प्रकरण : ५

५ मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी जीवन की समस्याएँ और समाधान

५.१. प्रस्तावना

५.२. पारिवारिक समस्याएँ

५.३. प्रेम व यौन सम्बन्धी समस्याएँ

५.४. कामकाजी महिला की समस्याएँ

५.५. विधवा नारी की समस्याएँ

५.६ समस्या का समाधान

५.७ निष्कर्ष

प्रकरण : ६.

उपसंहार

प्रकरण-१

१. मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में नारी चरित्र

१.१ मन्नू भण्डारी का व्यक्तित्व

१.१.१ प्रस्तावना

१.१.२ जन्म

१.१.३ माता-पिता

१.१.४ शिक्षा

१.१.५ विवाह

१.१.६ व्यक्तित्व

१.२ मन्नू भण्डारी का कृतित्व

१.२.१ उपन्यास

१.२.१.१ एक इंच मुस्कान

१.२.१.२ आपका बंटी

१.२.१.३ स्वामी

१.२.१.४ महाभोज

१.२.१.५ कलवा

१.२.२ कहानी संग्रह

१.२.२.१ मैं हार गई

१.२.२.२ यही सच है

१.२.२.३ त्रिशंकु

१.२.२.४ तीन निगाहों की एक तस्वीर

१.२.२.५ एक प्लेट सैलाब

१.२.२.६ आँखों देखा झूठ

१.२.३ नाटक

१.२.३.१ बिना दिवारों के घर

१.३ निष्कर्ष

प्रकरण :१

१.१ मन्नू भण्डारी का व्यक्तित्त्व

१.१.१ प्रस्तावना

महिला लेखिकाओं में चेतना-सम्पन्न रचनाधर्मिता की दृष्टि से मन्नू भण्डारी का स्थान अप्रतिम है। कहानीकार के रूप में गौरव प्राप्त करना कदाचित उनके लिए अत्याधिक स्वाभाविक था। क्योंकि उनकी कहानियों का परिणाम एवम् विषयक्षेत्र व्यापक और विस्तृत है। लेकिन अज्ञेय की तरह संख्या मे इतने कम उपन्यास लिखकर भी औपन्यासिक क्षेत्र में इतनी प्रसिद्धि अर्जित करना वस्तुतः स्तुत्य है।

आधुनिकता और समसामायिकता से गतिशिलता का बोध होता है। इस आधुनिकता की सर्व प्रथम झलक ''गोदान'' में दिखाई देती है, जहाँ प्रेमचंद की आदर्शवादी मान्यताएँ यथार्थ के थपेडों के सामने पराजित होती है। ''शेखर एक जीवनी'' गोदान की एक अगली कड़ी है, जहाँ संरचनात्मक परिवर्तन को सर्जनात्मक स्तर पर देखा जा सकता है। समकालीन उपन्यास की उपलब्धियों के अन्तर्गत आँचलिकता कम महत्त्वपूर्ण उपलब्धि नहीं है। रेणु का ''मैला आँचल'' अनुभूति और अभिव्यंजना दोनों स्तरों पर आधुनिक भाव बोध से परिपूर्ण है। इस प्रकार आधुनिकता का बोध ''अन्धेरें बन्ध कमरे'', ''राग दरबारी'' और ''उसका बचपन'' उपन्यासों में अनवरत उभरता जाता है। आधुनिकता की इस प्रतिष्ठा में महिला लेखिकाओं ने अपनी चेतना सम्पन्न रचना-धर्मिता का परिचय दिया है। जिस प्रकार नन्हीं-सी अरुण किरण के संस्पर्श से जल-थल-तल-अतल-जड़-चेतन कोई भी अछूता नहीं रह पाता, इसी प्रकार समाज का प्रत्येक कोना, साहित्य की प्रत्येक विद्या नारी शून्य नहीं है।

१.१.२ जन्म

मन्नू भण्डारी का जन्म ३ अप्रैल १९३१ को भानपुरा (मध्य प्रदेश) में हुआ था। उनको लेखन संस्कार पिता से विरासत में मिला है। ''मन्नूजी का वास्तविक नाम महेन्द्रकुमारी है। ''मन्नू'' नाम घर में, प्यार से पुकारा जाता रहा है। चूं कि मन्नू नाम छोटा भी है और स्वयं उन्हें प्रिय भी, अत: इसी नाम से वे जानी जाने लगीं। कुछ निकट के व्यक्तियों को छोड़कर शायद ही कोई उन्हें महेन्द्रकुमारी के नाम से जानते हैं।''[१]

१.१.३. माता-पिता

''हिन्दी पारिभाषिक कोश के आदि निर्माता श्री सुखसम्पतराम भण्डारी की सबसे छोटी पुत्री मन्नू भण्डारी को लेखन संस्कार पैतृकदाय के रूप में प्राप्त हुआ है।''[२] वास्तव में मन्नूजी के पिता बड़े स्वाभिमानी एवम् सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रति सजग व्यक्ति थे। सामाजिक प्रतिक्रिया को वे बहुत महत्त्व देते थे। कॉलेज जीवन में यदि मन्नूजी के किसी कार्य की प्रशंसा होती तो वे भी उन्हें खूब शाबासी देते थे। उनके पिताजी राजनीतिक और सामाजिक कार्यों में सक्रिय भाग लिया करते थे। यहीं नहीं, उनके घर में अकसर राजनैतिक बैठकें भी हुआ करती थी। मन्नूजी भी पिताजी की इन बैठकों में जोर-शोर से भाग लिया करती थी। इन बहसों ने इनके ज्ञान को विस्तार एवम् अभिव्यक्ति की प्रेरणा दी।

मन्नूजी की माँ अपनी बिटिया को गृहकार्य में दक्ष बनाना चाहती थी, किन्तु पिता अपनी प्रतिभाशालीनी बेटी के लिए कुछ और ही सपनें देखा करते थे । वे मानते थे कि उसे अपनी योग्यता को प्रमाणित करने का अवसर मिलना चाहिए। वह समय का सदुपयोग करे और कुछ बनकर दिखाए। उनकी दृष्टि में नारी की नियति घर की चार दीवारी या चूल्हें-चौकें तक ही सीमित न होकर समाज के हर क्षेत्र में

व्याप्त थी। पिताजी के विचारों का प्रभाव भी मन्नूजी पर अपेक्षित रूप में पड़ा। पिता की आकांक्षाओं, अपेक्षाओं और विचारों ने ही शायद प्रेरणा का काम किया। मन्नूजी के व्यक्तित्त्व का खुलापन, स्पष्टवादिता, निर्भीकता और आधुनिक वैचारिकता शायद पिता की ही देन हैं।

मन्नूजी की सादगी और सिधा-सादा सरल व्यक्तित्त्व उन्हें अपनी माँ से विरासत में मिला है।

१.१.४. शिक्षा

मन्नूजी की प्रारंभिक शिक्षा अजमेर (राजस्थान) में सम्पन्न हुई। अजमेर के सावित्री कॉलेज से उन्होंने इन्टर पास किया। जब वे कॉलेज में थी तो राष्ट्रीय आंदोलन पूरे जोर पर था। मन्नूजी भी इससे अछूती नहीं रह सकी। सामाजिक उत्थान व राष्ट्रीय भावना की प्रेरणा उन्हें अपनी एक प्राध्यापिका शीला अग्रवाल से मिलती थी। फलतः सामाजिक कार्य में वे भरपूर व सक्रिय भाग लेती थी। राष्ट्रीय व सामाजिक विषयों पर जोरदार भाषण देना, गाँवों में जाकर सामाजिक कार्य करना तथा मजदूर कोलोनियों में जाकर सेवा कार्य करना आदि उनकी उन दिनों प्रिय प्रवृतियाँ थी। उनकी शिक्षिका शीला अग्रवाल को उनकी राष्ट्रीय प्रवृतियों के कारण सेवा निवृत्त कर दिया गया। सरकार व कॉलेज के प्रबंधकों का मन्नूजी और उनकें साथियों ने खुलकर विरोध किया। उनकी इस विरोधात्मक प्रवृतियों का परिणाम यह हुआ कि उन्हें बी.ए. में एडमिशन नहीं दिया गया और उन्हें बी.ए. की प्राईवेट परीक्षा देनी पड़ी।

मन्नूजी ने मैट्रिक की परीक्षा सन् १९४५ में और इन्टर की परीक्षा १९४७ में पास की थी। एम.ए. उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से द्वितीय श्रेणी में पास किया।

१.१.५. विवाह

मन्नूजी का विवाह १९५९ में हिन्दी साहित्य जगत में ख्याति प्राप्त कहानीकार और आलोचक राजेन्द्र यादव से हुआ । इस समय मन्नूजी ने साहित्य जगत में प्रवेश ही किया था । स्वभाव में दृढ़ निश्चयता और मन में आई बात को पूर्ण करने का साहस मन्नूजी में अटूट है । परिवार के घोर विरोध के उपरांत राजेन्द्रजी से विवाह करना इसी दृढ़ता और साहस का परिचायक है ।

मन्नूजी ने राजेन्द्र यादव से अपनी प्रथम मुलाकात, परिचय व उसकी परिणति केविषय में लिखा है – ''बाली गंज शिक्षा सदन में मुझे लाईब्रेरी के लिए पुस्तकों की सूची तैयार करनी थी । चयन के सिलसिले में इनसे मेरा पहला परिचय हुआ । यों अप्रत्यक्ष परिचय पहले से भी था । आज भी अच्छी तरह याद है कि उस दिन काम की बात करने की जगह, हम बड़ी देर तक अपनी लिखी हुई चीजों की बातें करते रहे । तीसरी मुलाकात में ही यह परिचय घनिष्ठता का रूप लेने लगा था ।''[३] स्पष्ट है कि समान रुचि लेखन ही इस मधुर संबंध का मेल आधार बना । बाद में यह परिचय और गाढ़ बना, दोनों विवाह सूत्र में बंध गए । विवाह के पश्यात जब राजेन्द्रजी कलकत्ता से दिल्ली आ गए तो मन्नूजी को भी दिल्ली आना पड़ा । दिल्ली आकर उन्होंने मिराण्डा कॉलेज में प्राध्यापन कार्य प्रारंभ कर दिया ।

मन्नूजी पर गृहस्थी, लेखन व अध्यापन के साथ मातृत्व का दायित्व भी था । अपनी बेटी रचना व अपने परिवार के प्रति वे अत्यंत ममता मयी और कुछ हद तक पजेसिव भी है । पति व अपनी बिटियाँ के साथ बैठ कर बातचीत करना उनके गृहस्थ जीवन का सर्वाधीक सुखमय पल होता था । यह उनके नारीत्त्व की स्वाभाविक प्रतिक्रिया भी है । लेकिन आज मन्नूजी का गृहस्थ जीवन लड़खड़ा

गया है। मन्नूजी एक भावुक कलाकार होने के साथसाथ एक संवेदनशील नारी भी है।

१.१.६. व्यक्तित्त्व

मन्नूजी का व्यक्तित्त्व दृढ़ता एवम् साहस से भरपूर है। मन्नूजी के स्वभाव में नाजुकता और भावुकता भी कम नहीं। अपने मन के विरुद्ध कुछ घटित होने पर वे तनिक भी सह नहीं पाती है। उनकी असहिष्णुता उनके खाने-पीने, सोने, घुमने-फिरने, रहन-सहन आदि सभी में किसी-न-किसी रूप में उभरकर आ जाती है। मन्नूजी के स्वभाव की इस अधीरता एवम् असहिष्णुता की चर्चा करते हुए राजेन्द्रजी ने एक जगह लिखा है ''अधीरता अर्थात् असहिष्णुता'' मन्नूजी का दुसरा नाम है।''[४]

मन्नूजी के स्वभाव में एक खुलापन और सादगी पूर्ण सरलता है। यही कारण है कि जीवन्त, सरल, खुश मिजाज, बातुनी तथा सौम्य-शांत व्यक्तित्त्व के लोगों का संसर्ग व उनकी मित्रता उन्हें भाती है। सदगृहस्थ व सज्जन व्यक्तियों को वे सम्मान की दृष्टि से देखती है, किन्तु अहम्वादी, आत्मश्लाघा में लिप्त या पोथी साहित्यिक बौद्धिकता वालों से उन्हें चिढ़ होती है। ओढी हुई साहित्यिक गंभीरता को वे नहीं स्वीकारती। वे स्वयं सरल हृदया है। अतः सहज सरल स्वभाव के व्यक्ति ही उन्हें अच्छे लगते हैं।

मन्नूजी स्वभाव से ही स्पष्टवादी है। अपनी इस स्पष्टवादिता और दो टूक जवाब की प्रवृत्ति में वे राजेन्द्रजी को भी लपेट ने से नहीं चुकती है। जैसा अनुभव किया वैसा ही कह देना उनका स्वभाव है। पत्नी होने के उपरांत राजेन्द्रजी की आदतों व स्वभाव की निर्भीक टिप्पणी करने में वे बिलकुल संकोच नहीं करती है। मन्नूजी ही क्यों राजेन्द्र यादवजी भी उनके स्वभाव का खुलकर पोस्ट

मोर्टम करते हैं । ''दोनों ही निसंकोच एक दुसरों की आदतों व स्वभाव को पहचान ने में माहिर हैं । जैसा ''एक इंच मुस्कान'' उपन्यास और ''औरों के बहाने'' के लेखों में देखा जा सकता है । किन्तु इन टिप्पणियों का उद्देश्य एक-दुसरें को नीचा दिखाना नहीं है ।''[५]

मन्नूजी स्वभाव की सरलता और सच्चाई के कारण ही श्वसुर पक्ष में उपयुक्त आदर व प्यार प्राप्त कर सकी है । राजस्थान के जैन परिवार में जन्मी व पली मन्नूजी ने उत्तर प्रदेश के यादव कुटूंब में विवाह किया था । दोनों ही परिवारों के रहन-सहन, रीति, रिवाज व खान-पान में अन्तर होना स्वाभाविक ही था । फिर उन्होंने तो प्रेम विवाह किया था । अत: किसी भी विपरीत परिस्थिति के उत्पन्न होने की संभावना हो सकती थी । किन्तु श्वसुर पक्ष ने मन्नूजी को खुले-हृदय से सन्मान पूर्वक स्वीकार किया था । उनकी सास एक सीधी व ममतामयी नारी थी । उन्हें यह भी नहीं मालुम था कि वे किस तरह के परिवार से आई है । फिर भी अपना भरपुर स्नेह और आदर उन्होंने मन्नूजी को दिया है । अत: घर की सबसे बड़ी बहू होने के नाते मन्नूजी पर पारिवारिक जिम्मेदारियाँ होना भी स्वाभाविक ही था । कुछ विपरीत परिस्थितियों में भी उन्होंने अपनी आत्मीयता और सरलता के कारण परिवार का हृदय जीत लिया ।

१.२. मन्नू भण्डारी का कृतित्त्व

मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है । (१) उपन्यास साहित्य (२) कहानी साहित्य । मन्नूजी के अब तक पाँच उपन्यास और आठ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं । एक बालउपयोगी उपन्यास है। हमारे विवेचन की वस्तु पाँच उपन्यास हैं। अतः आगे पाँचो ही उपन्यास पर क्रमशः विचार किया जा रहा हैं । ''आपका बंटी'', ''महाभोज'', ''कलवा'', ''स्वामी'' और ''एक इंच मुस्कान'' पाँच उपन्यास है।

मन्नूजी के आठ कहानी संग्रह हैं। ''मैं हार गई'', ''तीन निगाहों की एक तस्वीर'', ''यही सच है'', ''एक प्लेट सैलाब'', ''मन्नू भण्डारी की श्रेष्ठ कहानियाँ'' ''आँखो देखा झूठ'', ''त्रिशंकु'' तथा ''मन्नू भण्डारी की प्रतिनिधि कहानियाँ'' । मन्नू भण्डारी के सम्प्रति आठ कहानी संग्रहों में ''मैं हार गई'' में बारह, ''तीन निगाहों की एक तस्वीर'' में आठ, ''यही सच है'' में आठ, ''एक प्लेट सैलाब'' में नौं, ''मन्नू भण्डारी की श्रेष्ठ कहानियाँ'' में आठ, ''त्रिशंकु तथा अन्य कहानियाँ'' में नौं तथा ''मन्नू भण्डारी की प्रतिनिधि कहानियाँ'' संग्रह में ग्यारह कहानियाँ संकलित है ।

१.२.१ उपन्यास

१.२.१.१ एक इंच मुस्कान

''एक इंच मुस्कान'' प्रयोग की दृष्टि से एक नवीन और विशिष्ट रचना कही जा सकती है। उपन्यास की विशिष्टता यह है कि इसे मन्नू भण्डारी और उनके पति राजेन्द्र यादव ने संयुक्त रूप से लिखा हैं। हिन्दी साहित्य में इस से पूर्व भी ''ग्यारह सपनों का देश'' और ''प्रतिक'' में प्रकाशित ''बारह खम्बा'' आदि रचनाएँ इसी प्रकार के प्रयोग कही जा सकती है। किन्तु उन्हें इतनी सफलता नहीं

प्राप्त हुई थी, जितनी कि ''एक इंच मुस्कान'' को। यद्यपि स्वयं राजेन्द्रजी ने इस तथ्य को स्वीकारा है। उन्हीं के शब्दों में पाठकों को चाहे जितना सफल और रोचक लगा हो–लेकिन रचना की आंतरिक अन्विति में गहरी कमज़ोरी आ गई है – ''यह एहसास मुझे लगातार कचोटता रहा। शायद यह इस प्रकार के प्रयोग की कमज़ोरी थी और इसका कोई इलाज नहीं था।''[६]

विवेच्य उपन्यास का कथानक चौंदह अध्यायों में विभक्त है। ये चौंदह अध्याय राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी ने पर्याय क्रम से लिखें हैं। विषम अध्याय राजेन्द्रजी के है और सम संख्यक मन्नूजी के हैं। पहले अध्याय में ही राजेन्द्रजी ने बड़ी कुशलता से कथानक के संकेत सूत्र दे दिए है और उसे ''अमर की कहानी'' का आधार दे दिया है। पहला अध्याय 'अंत' से प्रारंभ होता है। पाँचवें अध्याय में खट्–खट् की पुनरावृतियाँ और ग्यारहवें अध्याय में 'अब' की पुनरावृतियाँ हैं। ग्यारहवाँ अध्याय 'अब' से शरु होकर 'अब तक' से समाप्त होता है। पुरुष पात्रों का दायित्त्व राजेन्द्र यादव पर तथा स्त्री पात्र मन्नूजी ने ही संभाल रखे थें। दोनों लेखकों की शैलीगत भिन्नता भी परिक्षित होती है। राजेन्द्रजी में चिंतनशीलता और मन्नूजी में भावुकता की प्रगाढ़ता है। अपनी शैली के अनुरूप ही दोनों ने डायरी शैली का प्रयोग किया हैं।

उपन्यास का नायक अमर भावुक, अनुभूती प्रवण एवम् प्रतिभा संपन्न साहित्यकार है। उसके व्यक्तित्त्व की सब से बड़ी सीमा यह है कि वह परिवेश के साथ सामंजस्य स्थापित करने में असमर्थ है। वह वास्तविक धरातल को छोड़कर मानसिक धरातल पर जीने का अभ्यस्त हो चुका है। अमर के जीवन की संपूर्ण दुर्बलताओं और सीमाओं से अवगत होते हुए भी रंजना अपने हृदय के संपूर्ण प्रमोदगार उसके लिए समर्पित करती है तथा अपना सर्वस्व त्यागकर उसके साथ

विवाह बंधन में बंधती है । नियति की विडम्बना कहें अथवा व्यक्ति की हीन विवश और कातर स्थिति, इसी दौरान अमर की भेंट आधुनिक, बुद्धिवादिनी एवम् अहंवादिनी अमला से होती है । पति परित्यक्ता अमला का मानसिक स्तर और उसकी मन्द-मन्द मुस्कान अमर को इस हद तक प्रभावित कर देती है कि अपने घनिष्ठ मित्र टंडन और उसकी पत्नी मन्दा के आग्रह पर रंजना से विवाह करने के पश्यात भी अमर उस मोहपाश से मुक्त नहीं हो पाता । अमला के विवाह न करने संबंधी विचार और स्वतंत्र साहित्यकार के रूप में जीवनयापन करने संबंधी उसकी मान्यताएँ अमर पर इस कदर हावी हो जाती है कि उसका वैवाहिक जीवन प्रारंभ से लड़खड़ाने लगता है। रंजना का निश्छल समर्पण भाव भी अमर को सही राह के चुनाव में कोई भुमिका न निभा सका। रंजना अमर के सुख और खुशियों के लिए उसके जीवन से निकल जाती है, अमला भी जीवन की प्रताड़नाओं से ऊबकर आत्महत्या कर लेती है, अमर नि:सहाय एकाकी जीवन का सामना करने के लिए नितांत अकेला रह जाता है ।

''एक इंच मुस्कान'' की प्रमुख समस्या दाम्पत्य जीवन से संबंधित है । आधुनिक युग में परिवार और दाम्पत्य जीवन एक क्रान्तिकारी दौर से गुजर रहा है । परम्परागत जीवन मूल्य और मान्यताएँ ध्वस्त होते जा रहे हैं। इस स्थिति ने परिवार और दाम्पत्य की नींव को भी हिला दिया है। प्रेम, विवाह और परिवार को लेकर आज समाज में नए-नए प्रश्न और नई-नई परिस्थितियाँ उपस्थित हुई हैं। क्या प्रेम की अभीष्ट और अंतिम परिणति विवाह ही है ? आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के इन सभी ज्वलंत प्रश्नों को मन्नू भण्डारी ने इस उपन्यास में उठाने का प्रयास किया है ।

प्रेम-विवाह और उसकी सफलता-विफलता आधुनिक युग की एक गंभीर

समस्या है। निरंतर बदलते हुए जीवन मूल्यों ने प्रेम और उसके साथ दाम्पत्य को आज एक ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है जहाँ से कोई निश्चित राह नहीं सूझ पा रही है। प्रेम का अंतिम परिणाम विवाह है, किन्तु आाधुनिक परिस्थितियों में प्रेम-विवाह जिस गति से असफल होते देखे जा रहे हैं वह निश्चय ही गंभीर चिंता का विषय कहा जा सकता है।

मूलत: प्रस्तुत उपन्यास मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित हैं। अत: सभी समस्याओं की पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व चिंतन और उहा-पोह द्वारा ही व्यक्त किया गया है। कहीं-कहीं ऐसा प्रतीत होने लगता है लेखक ने अपने-अपने पात्रों के वर्गो को लेकर दूसरे के सामने मोर्चा ले लिया है। राजेन्द्र यादव जहाँ अमर और उसके कलाकार की मन:स्थितियाँ और मनोवृतियों की सच्चाई और स्वाभाविकता सिद्ध करने में प्रयत्नशील प्रतीत होते हैं, वहाँ मन्नूजी भी अपनी दोनों नारी पात्रों के पक्ष को सुदृढ़ और विश्वसनीय सिद्ध करने में संलग्न दीख पड़ती है। मन्नूजी अपनी संवेदन शीलता के कारण अपने इस प्रयत्न में विजयी भी हो सकी हैं, क्योंकि पाठकों की संपूर्ण सहानुभूति उन्हीं के पक्ष में जाती है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ''एक इंच मुस्कान'' नवीन प्रयोग है। विषय, पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और समस्या की दृष्टि से एक समर्थ और सुंदर उपन्यास है।

१.२.१.२ आपका बंटी

''आपका बंटी सन् १९७१ में प्रकाशित मन्नू भण्डारी का सर्व प्रथम मौलिक एवम् स्वतंत्र उपन्यास है। यद्यपि लेखिका का अब तक प्रकाशित यह एक मात्र मौलिक उपन्यास है, तथापि कथानक, प्रस्तुतीकरण, रचनातंत्र, समस्या और उसकी

का एक महत्त्वपूर्ण पदचिह्न बनाने में सफल हुई है ।''[७]

''आपका बंटी'' हिन्दी उपन्यास जगत का एक सर्वथा नवीन व अछूता प्रयास कहा जा सकता है । इस से पूर्व हिन्दी उपन्यास में बाल-मानस का इतना सुंदर व सर्वांगींण चित्रण नहीं हो सका था । किन्तु ''आपका बंटी'' की बाल मनोविज्ञान को उद्घाटित करने वाला उपन्यास मात्र मान लेना भी कदाचित उपयुक्त नहीं होगा । क्योंकि यह तलाकशुदा माता-पिता के बालक की करुण गाथा अथवा उसकी विवश स्थिति को प्रस्तुत करने का ही एक मात्र उद्देश्य लेकर चलने वाला उपन्यास नहीं है, आधुनिक परिस्थितियों में मानवीय संबंधो को जाँचने-परखने व उनका विश्लेषण करने का उद्भूत व अद्वितीय प्रयास है ।

''आपका बंटी'' उपन्यास आज के सामाजिक और द्वन्द्वात्मक परिवेश में जहाँ आधुनिक पति-पत्नी, मम्मी-पप्पा होकर भी अपने स्वतंत्र अस्तित्त्व और अर्थवान होने की सार्थकता के कारण एक अंतहीन विसंगति में यातना का सामना करते हैं । जो उसकी अतिरिक्त संवेदनशीलता को एक गहरी पीड़ा में बदल देता है । न मम्मी ही अपने व्यक्तिगत अहं के कारण अपना कुछ खोकर बंटी के लिए उसके पापा को पाने का प्रयास करती है, इसी प्रकार अहं का मनोविज्ञान और सामाजिक अधिकार-भावना के बीच मम्मी और पप्पा का तलाक हो जाता है । माता-पिता द्वारा नये संबंध स्थापित करने के कारण निर्दोष बंटी दोनों ही स्थितियों में समझौता नहीं कर पाता । बंटी के अतिरिक्त कोई भी अन्य समस्या इन संबंधों के लिए उत्तरदायी नहीं है । ''आपका बंटी'' की शकुन अभिशप्त परित्यकता नहीं वरन् स्वेच्छा से पति से तलाक होने के पश्चात् पुनर्विवाह भी करती है । व्यक्तिवादी विचारधारा के कारण समाज गौण हो गया है । इसलिए सामाजिक स्तर पर ये संबंध चाहे प्रभावित न हो किन्तु व्यक्तिगत स्तर पर भी बहुधा सामंजस्य स्थापित करना

कठिन हो जाता है। बंटी का हृदय माँ पर अधिकार भाव की आकांक्षा करता है लेकिन शकुन उससे समझौते की अपेक्षा करती है। शकुन के लिए विवाह जन्म-जन्मान्तर का संबंध नहीं है। विवाह एक समझौता प्रतीत होता है जो ठीक न लगने पर तलाक के माध्यम से टुट जाता है। आर्थिक-आत्म-निर्भरता के कारण वह न केवल पति से तलाक लेती है वरन् पुन:विवाह भी करती है। ''शकुन का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण बंटी के विस्थापन का कारण बनता है और वह स्वयं डॉक्टर के परिवार में एडजस्ट होती है, लेकिन बंटी का अकेलापन समाज के सामने एक प्रश्न-चिह्न खड़ा कर देता है।''[८]

बंटी के माध्यम से ही बालक के बाल-मन की मनोवृतियों और बाल-मनोविज्ञान की और संकेत किया गया है। सर्वत्र बंटी ही पाठक की जिज्ञासा का केन्द्र-बिन्दु बनता है। क्योंकि उपन्यास के सभी पात्र किसी न किसी रूप में बंटी से ही संबंधित है, सबके मूल में बंटी ही है। अधिकारिक और प्रासंगिक दोनों कथाओं में बंटी ही केन्द्रित है। अत: ''आपका बंटी'' शीर्षक की सार्थकता स्वत:सिद्ध है और इसका औचित्य किसी भी तर्क की अपेक्षा नहीं रखता। ''बंटी'' को ही कथानक का आधार बनाकर लेखिका पाठकों को सामाजिक प्रश्नचिह्न लगा के इस विषय में सोचने के लिए बाध्य करना चाहती है। ''जीते जागते बंटी का तिल-तिल करके समाज की एक बेमान इकाई-भर बनते चले जाना यदि पाठक को अश्रुविगलित ही करता है तो मैं समझूँगी कि यह पात्र सही पतों पर नहीं पहुँचा है।''[९]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि ''आपका बंटी'' की कथा बंटी के चारों ओर घुमती है। शेष सभी उसके चरित्र तथा व्यक्तित्त्व निर्माण में साधन रूप में अवतरित हुए हैं। सभी घटनाएँ व प्रसंग बंटी को केन्द्र में रखकर निर्मित किए गए हैं।

आधुनिक युग में शिक्षा के प्रसार ने पति-पत्नी के संबंधों में विघटन की स्थिति उत्पन्न करती है। दाम्पत्य जीवन के इस ध्वस्त रूप में बच्चे की स्थिति को मन्नूजी ने इस उपन्यास में उभारा है। तलाक शुदा माता-पिता की संतान को क्या, कितना और कैसे भोगना पड़ता है, जीना पड़ता है, ''बंटी'' के माध्यम से लेखिका ने इस विषय को विविध पहलुओं से चित्रित किया है। आधुनिक समाज की चिंतनीय समस्या को मन्नूजी ने ''आपका बंटी'' में प्रभावपूर्ण ढंग से उठाया है। इस समस्या पर उपन्यासकार की संवेदना और दुश्चिन्ता प्रभावित करती है। मन्नूजी ने समस्या को समाज के समक्ष एक प्रश्नचिह्न के रूप में प्रस्तुत किया है- इसका समाधान न देकर पाठकों पर छोड़ दिया है।

१.२.१.३. स्वामी

''स्वामी'' सौदामिनी की कहानी है। प्यार से सभी उसे मिनी कहकर पुकारते है। पिता की मृत्यु के बाद मिनी अपनी विधवा माँ के साथ मामा के घर रहती है। मामा के अतिशय लाड-प्यार ने मिनी को कभी पिता का अभाव महसूस नहीं होने दिया। मिनी के मामा मणिबाबू एक शिक्षित विचार वाले और आधुनिक व्यक्ति है। मिनी को भी वे अपने संस्कारों और विचारों के अनुरूप ढाल लेते हैं।

नरेन्द्र जमींदार का लड़का है जो अक्सर मणीबाबू से मिलने घर पर आता है। वह शिक्षित एवम् आधुनिक विचारों का युवक है। मणीबाबू के साथ तर्क-वितर्क के दौरान उसे मिनी की बुद्धिशीलता और वैचारिक प्रौढ़ता से परिचय होता है। यों तो मिनी को बचपन से देखता और जानता आया है। प्रतिभाशालिनी, तर्कशीला और लावण्यमयी मिनी उसके हृदय पर गहरी छाप छोड़ जाती है। धीरे-धीरे मिनी और नरेन्द्र के बीच प्रणय का मधुर संबंध बंध जाता है।

मिनी की माँ गीरी एक परंपरागत संस्कार संपन्ना बंगाली नारी है। वह मिनी का विवाह अपनी जाति के किसी सुयोग्य युवक के साथ करना चाहती है। वह वर तलाश करने का अपने भाई पर जोर देती है। किन्तु मणिबाबू मिनी के मन का हाल जानते है और बहन की बात टालते रहते है। लेकिन मजबूरन गीरी के सुझाए हुए लड़के को देखने वे जाते हैं। और वहाँ से आकर वह मिनी को आश्वासन देते हैं कि जो वह चाहेगी वहीं होगा।

इसी बीच मिनी की माँ और बुआ ने मिलकर मिनी की शादी घनश्याम से कर दी। मिनी चाहकर भी कुछ नहीं कह सकी और उसको घनश्याम से विवाह करना पड़ा। किन्तु मिनी मन से वह रिश्ता नहीं स्वीकार कर पाती।

नए घर और नये माहौल में आकर मिनी का दु:ख और उसकी उदासी और बढ़ जाती है।

परिवार और पास-पडोशियों की व्यंगात्मक बातों से उसका मन और भी क्षुब्ध हो जाता है। वह पति से अलग रहकर अपनी अपेक्षा को स्पष्ट कर देती है। किन्तु इसके बावजुद पति का स्नेहपूर्व व शांत व्यवहार उसे चकित करता है। जल्दी ही मिनी को यह भी ज्ञात हो जाता है कि यह शांत, धीर, गंभीर व्यक्ति सिर्फ उसी द्वारा अपेक्षित नहीं है। घर-गृहस्थी बागडोर उसकी सास के हाथ में हैं। उसने देखा कि सौतेले देवर अखील की एक ही आवाज पर पूरा घर और नौकर-चाकर उसकी सेवा में उपस्थित हो जाते हैं और घनश्याम की छोटी-सी माँग पर कोई कान भी नहीं धरता।

यह स्थिति मिनी के मन मे पति के प्रति एक करुणा और सहानुभूति पैदा करती है। मिनी का विद्रोही मन यह अन्याय नहीं सहन कर पाता। मिनी के मन में पति के प्रति प्रेम नहीं है, फिर भी उसके स्नेह और लाड प्यार से उसके मन में

एक कोमलता प्रस्फुरित हो जाती है, मिनी पति की सहनशीलता, क्षमाशीलता और प्रशांत व्यक्तित्त्व से झुंझला उठती है। फलतः मिनी और उसकी सास के बीच एक युद्ध-सा ठन जाता है।

पति की उस परिवार में हुई उपेक्षा को वह कुछ हद तक अपने आपको भी दोषी मानती है। मिनी का यह अपराध बोध उसे परिवारजनों के अन्याय से पति की रक्षा करने प्रेरित करता है। परंतु मिनी का यों पति का पक्ष लेना उसकी सास को सहन नहीं हो पाता। अतः किसी न किसी प्रश्न को लेकर वह मिनी का अपमान करने, झगड़ने व नीचा दिखाने को तत्पर रहने लगती है। मिनी के लाए दहेज, उसके व उसकी माँ के धार्मिक संस्कार और मिनी की पति सेवा को लेकर सास, ननद व देवरानी उस पर व्यंग्य बाण छोड़ती रहती है। मिनी भी उन्हें समुचित प्रत्युत्तर देकर उनका मुँह बंद कर देती है, किन्तु मिनी का पति घनश्याम उसे माँ से माफी मांगने को मजबूर कर देता है।

यद्यपि मिनी को अपनी भूल स्वीकार्य नहीं होती किन्तु पति का यह आदेशात्मक रूप उसे अच्छा लगता है। उसे लगता है कि उसका पति पौरुषहीन और लिजलिजा नहीं है। बल्कि जितना वह शांत, सहनशील व धार्मिक है उतना ही दृढ़, विचारवान और स्नेहमय भी है। पति के इस रूप पर मिनी के मन में श्रद्धा जाग उठती है। घनश्याम उसकी पसंद-नापसंद का, सुख दुःख, उसके मान-अपमान का ध्यान रखकर उसका दिल जीत लेता है। उसके पसंद के रंग की साडी भी उपहार में उसे देता है। वह घर के लोगों के कटुता पर उसकी कवच की तरह रक्षा भी करता है। इसी के कारण मिनी के मन के एक नवीन प्रकार की कोमलता उजागर होती है। उसे पश्चाताप होने लगता है। अब वह अपने आपको पति के प्रति समर्पित कर उसके सारे उपकारों से लालायित हो उठती है, किन्तु

उसके संकेतो के बावजूद भी पति उसकी ओर हाथ नहीं बढ़ाता तो वह उपेक्षा अपमान और लज्जा से क्षुब्ध हो उठती है।

इसी मानसिकता की स्थिति में नरेन्द्र वहाँ आ जाता है। मिनी नरेन्द्र के सामने आने से कतराती है। जब उसका नरेन्द्र से आमना-सामना होता है तो उसका कातर, मलिन और उदास मुख देखकर मिनी का सोया प्रेम फिर से हिलोरे लेने लगता है। मानसिक यंत्रणा से गुजरती मिनी के मन में नरेन्द्र की उपस्थिति ने एक हलचल सी मचा दी। तभी नरेन्द्र उसे एकांत में पाकर उसका हाथ पकड़ कर उसे अपने साथ भागने को कहता है।

मिनी समझ नहीं पाती कि वह नरेन्द्र से क्या कहे। तभी सास व ननद उन्हें साथ-साथ देखकर घर में एक कुहराम-सा मचा देते हैं। सास नरेन्द्र के साथ उसकी ननद दूरी का रिश्ता करवा देने के लिए उससे आग्रह किया था और मिनी ने उसे एक प्रकार से टाल दिया था। उस अपमान के लिए आज सास उससे बदला लेने पर उतारु हो गई।

शाम को पति आए तो मिनी उसके लांछन प्रताडना सुनने के लिए तत्पर बैठी हुई है। किन्तु घनश्याम ने उसे कुछ भी नहीं कहा बल्कि नरेन्द्र के इतने जल्दी चले जाने पर आश्चर्य, दु:ख प्रकट किया अपने अपराध कम करने के लिए उसने घनश्याम को ही दोषी मान लिया। वह उस पर तीव्र प्रहार करने के लिए बैचेन हो उठी और उसे मौका भी मिल गया। उसकी माँ का घर जल गया था। माँ का पत्र घनश्याम की जेब से पाकर वह क्रोध से कांपने लगती है। उसे लगता है कि घनश्याम नें जानबूझ कर उसे वह पत्र नहीं दिया। इसलिए घनश्याम से वह लड़ बैठती है। उसे कड़वी बातें सुनाती है।

घनश्याम दो दिन तक वापिस नहीं आया तो वह आशंकित हो उठी। इसी

बीच सास-परिवारजनों के व्यंग बाणों और उपहास मिश्रित उपेक्षा से क्षुब्ध हो उठी। तभी नरेन्द्र लौट आया और तभी मिनी ने निर्णय ले लिया। मिनी ने नरेन्द्र से कहा कि वह भी उसके साथ चलेगी। वह दोनों स्टेशन जा पहुँचते हैं। नरेन्द्र फुला नहीं समाता। किन्तु नरेन्द्र का उत्साह और आवेश मिनी को छू तक नहीं पा रहा है। मिनी यंत्रचलित नरेन्द्र के साथ आ तो गई हैं, पर उसका मन रह-रह कर अतीत में लौटने लगता है। घनश्याम की शांत, सौम्य मुखाकृति, परिवारजनों की उसके प्रति उपेक्षा, स्वयं उसका अपना व्यवहार तथा सास, ननद व देवरानी के उपहास व व्यंग्य उसे रह-रह कर याद आने लगते हैं। उसे लगता है कि वह घनश्याम को सास व परिवार के अन्याय, अपमान व उपेक्षा के बीच अकेला छोड़ आई है। पति का स्नेहपूर्ण व्यवहार, धीरज, क्षमाभाव और सहनशीलता आदि उसे याद आने लगते हैं और वह वापिस लौट ने के लिए तत्पर होती है।

नरेन्द्र मिनी के इस व्यवहार पर चकित और दु:खी हो जाता है। साथ ही वह उसे समझाता है कि अब उसके परिवार वाले उसे स्वीकार नहीं करेगें। स्थिति की विषमता को पहचान मिनी अपने माँ के घर चली जाती है, किन्तु वह नरेन्द्र को आग्रहपूर्ण अपने पति घनश्याम के पास स्थिति की वास्तविकता समझाने के लिए भेज देती है। पति के प्रति मिनी की इस आस्था, श्रद्धा व निष्ठा को देख पहले तो नरेन्द्र को ईर्षा होती है। किन्तु मिनी की दृढ़ता, विश्वास और श्रद्धा उसके आवेश और उद्विग्नता को खत्म कर देते हैं।

मिनी जब माँ के घर पहुँचती है तो उसे ज्ञात होता है कि घनश्याम ने एक आदमी को रुपयें देकर माँ की सहायता के लिए भेजा था। पति के हृदय की विशालता और उदारता पर मिनी का हृदय कृतज्ञता और पश्चाताप से भर जाता है। तभी घनश्याम उसे ले जाने आ जाता है। मिनी का क्षुब्ध और अशांत मन पति को

निर्द्वन्द्व भाव से समर्पित होकर शांत हो जाता है।

१.२.१.४ महाभोज

मन्नू भण्डारी द्वारा विरचित सन् १९७९ ई. में प्रकाशित उपन्यास ''महाभोज'' १५९ पृष्ठों में लिखा गया उपन्यास है।

राजनीतिक विरूपता को चित्रित करने वाला ''महाभोज'' नौ परिच्छेदों में विभक्त हैं तथा कथा की विशालता के अतिरिक्त पात्रों की बहु संख्या इस उपन्यास की अन्य विशेषता है। राजनीति बोध के घिनौनेपन और उससे उत्पन्न जीवन-विरोधी परिस्थितियों और विसंगतियों पर हिन्दी कथा-साहित्य में पर्याप्त लिखा गया है। ऐसा लेखन स्वाभाविक परिस्थितियों से प्रेरित भी है। मन्नू भण्डारी का नया उपन्यास ''महाभोज'' एक हरिजन युवक की निर्मम हत्या और उससे उभरने वाले परिवेश की व्याख्या करता है। ऐसे नाजुक कथ्य का चुनाव कर मन्नू भण्डारी ने एक जोखिम भरा कार्य किया है। ''अपने इस नये उपन्यास में ग्राम्य-जीवन की नाटकीय स्थितियों का विविध और विस्तृत चित्र खींचा है। अतः शहर में गाँव की यह रचनात्मक यात्रा मन्नू भण्डारी के लेखन का नयापन है, जो खतरे से भरा हुआ है। इस साहस एवम् जोखिम भरे कार्य के लिए लेखिका बधाई की हकदार बन जाती है।''[१०]

सुकुलबाबू, दा साहब, लोचन, शिक्षामंत्री, त्रिलोचनसिंह रावत, लखनसिंह, जोरावर, बिन्दा, दत्ताबाबू, हीरा (बीसू का पिता) महेश शर्मा, गनेशी, काशीराव, चौधरी, पुत्तन, एस.पी.सक्सेना, आई.जी.सिन्हा, थानेदार, रूपमादेवी और जमना इसके पात्र हैं। ''बीसू'' इस उपन्यास की कहानी का मृतक पात्र है, उसकी हत्या या आत्महत्या प्रस्तुत उपन्यास की विषय वस्तु है। चुनाव के दिनों में छोटी-से-छोटी घटना के प्रति राजनेता किस प्रकार सक्रिय हो उठते हैं। मन्नूजी

ने प्रस्तुत करने के साथ-साथ राजनीतिक भ्रष्टाचार, छल, प्रपंच, अवसरवादिता को ''महाभोज'' में प्रस्तुत किया है। बिसू की हत्या व बिन्दा के साथ हुआ अन्याय मानव की नैतिकता पर प्रश्नचिह्न लगा देता है, किन्तु आज न जाने कितने ही सिरोहा जैसे प्रदेशों में ''बीसू'' की हत्याएँ की जा रही है, बिन्दा पर अत्याचार किया जा रहा है। ये सभी पात्र मन्नूजी ने इस प्रकार उभारे हैं कि वे वैयक्तिक सीमा से उपर उठकर ''वर्ग'' बन गए हैं।

''सिहोरा प्रांत में चुनाव के दिन हैं। महिने भर पहले की ही तो बात है- गाँव की सरहद से जरा परे हटकर जो हरिजन टीला है। वहाँ झोपड़ियों में आग लगा दी गई थी, आदमियों सहित दूसरे दिन लोगों ने देखा तो झोंपड़ियाँ राख में बदल चुकी थी, और आदमी कबाब में।''[११]

आज इस सिहोरा प्रांत में बिसेसर की लाश सड़क के किनारे पुलिया पर पड़ी मिली है। बिसू ने आत्महत्या की या उसकी हत्या की गई इस विषय को लेकर राजनेता अपना-अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। अपने स्वार्थ के अनुसार घटना को मोड़ते हुए सुकुलबाबू व दा साहब सामने आते हैं। सुकुलबाबू पिछले चुनावों में हार गये थे, किन्तु अब पुन:राज सत्ता में आना चाहते है। दा साहब राजनीति में माहिर है। परिस्थिति को अपने अनुकूल परिवर्तित कर लेना उनके बाएँ हाथ का खेल है। वे सिरोहा जा कर हीरा पर ही अपनी धाक नहीं जमाते अपितु सारे सिहोरा निवासियों पर भी जादू-सा कर जाते हैं। वे सिरोहा निवासियों को बिसू काण्ड़ की अन्य स्तरीय जाँच का आश्वासन देते हैं।

एस.पी. सक्सेना को जाँच का कार्य भार सौंपा जाता है। जब सक्सेना घटना की जाँच करता है तो हत्या का रहस्य अनावृत होने लगता है। बिन्दा जो बिसू का मित्र है वह सक्सेना को यह बतलाता है कि बिसू ने गत आगजनी काण्ड़

के कुछ प्रामाणिक दस्तावेज एकत्रित कर लिए थे, और प्रमाणों के आधार पर वह आगजनी के रहस्य को सामने लाना चाहता था और संभवत: यही बात बीसू की हत्या का कारण हो। सक्सेना जब घटना की जाँच करता है तो उसकी अन्तरात्मा उसे सत्य पथ पर चलने को कहती है। फलत: वह दा साहब एवम् डी.एस.पी.साहब द्वारा प्रस्ताविक रिपोर्ट पर अपना हस्ताक्षर करने से इन्कार कर देता है। परिणाम स्वरूप उसे सस्पेन्शन मिल जाती है।

दुसरी और दा साहब नकली रिपोर्ट तैयार करवा कर बिन्दा को हत्यारा साबित कर देते हैं और एक बार फिर राजतंत्र का कुचक्र गरीब को पीसकर खा जाता है।

संभवत: ''इस उपन्यास की रचना के पीछे किसी पद प्रश्न है कि इस में अपने व्यक्तित्त्व और नियती को निर्धारित करने वाले परिवेश के प्रतिशोध के रूप में ही देखता था। बाकी प्रत्याशाएँ और आरोप तो अपने हैं।''[१२] ''महाभोज'' की रचना संभवत: इसी उदेश्य को आधार मानकर की गई है। इस राजनीतिक उपन्यास में लेखिका ने चुनाव के समय का पुर्णत: यथार्थ चित्रण किया है और भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों ने निजी स्वार्थों के कारण राजनीति को किस तरह विकृत और घिनौना रूप प्रदान किया है, इस विषय की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट किया है। इस चुनाव के बीच मानवीय त्रासदी, करुणा और पीढ़ी की नियति की सच्चाई को अभिव्यंजित करने का सशक्त प्रयास लेखिका ने किया है। ''राजनीतिज्ञों की उपरी महानता औदात्य तथा गंभीरता भरे खोल के अंदर से उनकी जो घिनौनी तस्वीर उभरती है वह छोटे-छोटे ब्योरे के माध्यम से उभरी है।''[१३]

''महाभोज'' में आपातकाल के बाद कॉंग्रेस की पराजय और जनतापार्टी

के शासनकाल की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है । ''महाभोज का परिवेश हमारा आधुनिक राजनीतिक जीवन है। वर्तमान जीवन में व्याप्त राजनीति को लेखिका ने इस उपन्यास में खूबी से बाँधा है। इस कृति का राजनीतिक परिवेश भ्रष्ट, घिनौना और लज्जित करने वाला है।''[१४] ''आज की राजनीति ने जीवन को अर्थहीन और विषाक्त बना दिया है, इस पूँजीवादी व्यवस्था ने राजनीति को पुर्णत: भ्रष्ट और दूषित बना दिया है ।''[१५] नि:संदेह ''महाभोज सामाजिक उत्पीड़न और उस पर टिकी हुई व्यवस्था पोषक राजनीति के विरुद्ध संवेदनशील रचनाकार की विनम्र, किन्तु साहसपूर्ण प्रति क्रियाएँ हैं ।''[१६]

१.२.१.५ कलवा

''कलवा'' चवालीस पृष्ठों का लघु''[१७] उद्देश्यात्मक और बालोपयोगी उपन्यास है। इसका आधार स्त्रोत ''पंचतंत्र'' ही प्रतीत होता है। इस लघु उपन्यास में भी लेखिका ने जीवन के कटु सत्यों को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया है। प्रतीत होता है कि वह पात्रों के प्रतीकात्मक संदर्भो द्वारा मनुष्य की जिन्दगी से जुड़ने वाले मनोभावों को ही वाणी प्रदान करने के लिए चेष्टारत है। कहानी का प्रारंभ एक गुरुकूल से हुआ है, जहाँ एक राजा का बेटा, साहूकार और चमार का बेटा शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते हैं। चमार के पुत्र को देखकर गुरु को विशेष आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता होती है, क्योंकि ''उस समय शुद्र अपने बच्चों को शिक्षा प्राप्ति के काबिल समझते नहीं थे ।''[१८] तीनों के चरित्र द्वारा जीवन के तीन पक्ष सामने आते हैं। राजपुत्र दम्भी और अभिमानी है, साहूकार का बेटा चालाक और चतुर है। चमार का बेटा सीधा-सरल एवम् परिश्रमी है। तीनों जब-जब अवकाश के पश्चात घर से आश्रम वापिस आते हैं। ''राजपुत्र में घमंड साहूकार के बेटे में चालाकी और चतुराई की और चमार के बेटे में ज्ञान की वृद्धि सदैव होती है।''[१९]

उपन्यास के नायक कलवा के सामने मुख्य प्रश्न और अन्तर्द्वन्द्व यही है, ''मेहनत करने वाले लोग इतने गरीब क्यों होते हैं और ऐश-आराम करने वाले लोग इतने अमीर क्यों ? जो जितना कम काम करता है, वह उतना ही अमीर और जो जितना ज्यादा काम करता है, वह उतना ही गरीब ? और जो रात-दिन अपने को काम में लगाए रहता है, वह तो केवल भूखो मरता है।''[२०]

पाँच वर्ष शिक्षा प्राप्त करने के बाद जब उनकी शिक्षा-दीक्षा पूरी हुई तो गुरु ने तीनों से एक प्रश्न किया, जिस से उनके ज्ञान की परीक्षा करना गुरु का लक्ष्य था। प्रश्न के उत्तर में ही तीनों की चारित्रिक विशेषताओं को उजागर किया गया है। प्रश्न मानों निष्कर्ष बनकर राजपुत्र साहूकार के बेटे और चमार के बेटे को अपने भीतर छिपे सत्य को उगलने के लिए प्रेरित करता है। ''दुनिया में सबसे बड़ी शक्ति कौन-सी है और सबसे बड़ी दुर्बलता कौन-सी ? दुनिया में सबसे शक्तिशाली कर्ता कौन है ? तुम आगे जाकर क्या करोगें, क्या बनोगें ?''[२१] राजकुमार ने उत्तर दिया, ''दुनिया मे सबसे बड़ी शक्ति है भाग्य। मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है असंतोष। संसार में सबसे बड़ा कर्ता है ईश्वर, और हर एक आदमी को कर्मो के अनुसार फल देता है।'' चमार के बेटे का उत्तर इस प्रकार था - ''दुनिया में सबसे बड़ी शक्ति है मनुष्य, और सबसे बड़ा कर्ता है मनुष्य का अपना पौरुष। मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है ईश्वर और भाग्य में उसका विश्वास। ईश्वर न कभी था न आज है। अगर सचमुच ईश्वर जैसी कोई शक्ति होती तो दुनिया में कभी इतना अंधेरा नहीं होता, इतना मतभेद नहीं होता।''

साहूकार के बेटे का उत्तर- ''दुनिया में सबसे बड़ी शक्ति धन है। जिसके पास धन है उससे भगवान भी प्रसन्न है और दुनिया भी। मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है भावुकता, नरमदिल वाला आदमी दुनिया में कभी कुछ नहीं कर

सकता । सबसे बड़ा कर्ता है मनुष्य की बुद्धि । आदमी चाहे जितना धन कमा सकता है, दुनिया में चाहे जितनी इज्जत, प्रतिष्ठा पा सकता है ।''[२२] राजकुमार अपने राज्य में चला जाता है वह ज्ञानी है । राजकुमार का सितारा जब बुलंदी पर था । तब चालाक एवम् धृत साहूकार के बेटे ने अपना उल्लू साधने का अच्छा मौका पाकर अपनी चालाकी और चापलूसी से राजमहल में जा बैठता है और अपनी बुद्धि एवम् चतुराई से दावपेंच करने लगता है । आस पास के शत्रु उसकी दुर्बलता एवम् उसकी कुनीतियों को जानकर उस पर आक्रमण करते हैं ।

उपन्यास का अंतिम भाग कलवा चमार के जीवन पर प्रकाश डालता है । गुरु का आशीर्वाद लेकर जब वह गाँव की ओर चला, तब उसके साथ न लाव-लश्कर थे, न ही हाथी-घोडें, पर मन में न जाने कैसे-कैसे सपने तैर रहे थें । आश्रम से गाँव तक पहुँचते ही अपने ही विचारों के संसार में खोया रहा । कलवा को इस बात पर अत्याधिक आश्चर्य और रोष है कि साहूकार और जमींदार कभी मेहनत नहीं करते पर उनकी हवेलियाँ मंजिल-पर-मंजिल चढती जाती है । पैसा पानी की तरह बहाते हैं पर उतना ही बढ़ते जाता है । जो जितना मेहनत करता है, वह उतना ही ज्यादा भूखा मरता है और जो कुछ नहीं करता वह उतना ही ऐश करता है । पूरे मार्ग में वह सोचता रहा कि वह अपने ज्ञान के द्वारा गाँव को यह सोचने के लिए बाध्य कर देगा कि धन का असली मालिक मेहनत करने वाला होता है । जो धन साहूकार और जमींदार भोगते हैं, उस पर गरीबों का ही अधिकार है । ''वह ऐसी दुनिया को बदलने का साहस करेगा, जिससे गाँव वालों की भलाई हो । इसलिए उत्साह और विश्वास ओर भी बढ़ जाता है ।''[२३]

गाँव पहुँचने पर उसका न कोई स्वागत हुवा न सत्कार । कलवा ने पिता का काम संभाल तो लिया पर समस्या यह थी कि लोगों को खाने को दाने तो मिलते

नहीं थे, फिर जूते पहनने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। तब उसने महसूस किया कि लोग बड़े आदमी की ही बात समझ सकते हैं। ''उस जैसे साधारण आदमी की भला कौन सुनेगा। आज अगर वह उँचे पद पर होता तो अपनी हर बात मनवा लेता, पर उँचे पद पर पहुँचना ही तो विकट समस्या है।''[२४]

''कलवा को एक दिन राजपुत्र के लश्कर से भी वैभव और ठाठ-बाठ देखने का अवसर मिला, मार्ग में हाथी-ऊँट-घोडें और रथ की कतारें जा रही थी। रास्ते में उसने झिलमिलाता हार देखा जिसे देखकर कलवा के मन में विचार आया, ''हो न हो यह हार उसी राजा का है।''[२५]

यहाँ कलवा के चरित्र का विशेष पक्ष अभिव्यंजित हुआ है, इतनी गरीबी में रहकर भी उसके मन में लोभ का भाव क्षण भर के लिए भी नहीं उभरता। इस के विपरीत दौड़ता-दौड़ता पसीने से लथ-पथ हो कर रथ के पास पहुँचता है। मखमली पर्दा हटाकर उस में से देबू बंजारे ने देखा तो आश्चर्यचकित रह गया कि ऐसा किंमती हार देखकर भी जिसकी नियत नहीं बिगड़ी और जो पसीना बहाता दौड़ता-दौड़ता यहाँ तक आया, वह कोई साधारण आदमी नहीं हो सकता। कलवा ने उत्तर दिया मैं आदमी हूँ और आदमी की तरह जीना चाहता हूँ। ''नीयत महाराजाओं की डोलती हैं, गरीबो की नीयत नहीं डोलती।''[२६] बंजारा वह हार उसे इनाम में देता है पर कलवा को पराई चीज लेना हराम है, इसलिए उसके लिए यह हार फूटी कौड़ी से भी कम है। वह कहता है कि- ''यह हार किसी राजा को भेंट दे देना क्योंकि राजाओं को धन की बहुत भूख होती है।''[२७] ''कलवे को इस बात की चिंता अधीक थी की वाद-विवाद में उसका समय व्यर्थ ही निकल गया और धन का चक्कर ही ऐसा है कि आदमी अपना ज्ञान और कर्तव्य सब भूल जाता है।''[२८] इसलिए राजा के मन में कलवा के लिए आदर और डर दोनों ही भाव जाग

रहे थे। उसकी दृष्टि में वह अवश्य कोई महापुरुष है, इसलिए वह भी कलवा को अत्यधिक विनम्रतापूर्वक बंजारे के हाथों हार भेजने का निश्चय करता है। ''कभी जरुरत हों तो सेवा का मौका भी दें। सेवा करके सुख पाऊँगा। दर्शन होंगे सो अलग।''[२९] वह उपहार का अस्वीकार करता है और कहता है कि ''देना ही था तो कोई ऐसी चीज देते जिसमें न जनता का पैसा हो, न गरीबों का खून। अपनी महेनत का कुछ देते। देने का ऐसा ही शोख चर्राया है तो उसे कहो कि साल भर के लिए अपना राज दे दे। एक बार सबको दिखाऊँ कि राज कैसे किया जाता है।''[३०]

कलवा की किंमत और कोई भी आंक नहीं सकता। देबू बंजारा पूनः कलवा से मिला और इस प्रकार बोला ''तुने जो कहा वही लाया हूँ। इस में न जनता की कमाई है न गरीबों का खून। राजा की अपनी चीज हैं अब मुकरना मत। राजा ने धन-दौलत नहीं भेजी। भेजी हैं अपनी कन्या। राजा की एक ही लड़की साक्षात् लक्ष्मी। अब स्वीकार न किया तो तेरे जैसा झूठा नहीं और मेरे जैसा कोई बुरा नहीं।''[३१] ''कलवा की चुप्पी को बंजारे ने रजामंदी समझी और राजा के पास शादी का पैगाम भेज दिया।''[३२]

कलवा के साथ सारे गाँव वालों की किस्मत जाग पडी, उसकी शादी हो गई। ''बंजारे ने कलवा के रूप में अपना पुत्र पाकर अपनी मेहनत का सारा धन कलवा को दे दिया। गाँव के लोग कलवा को प्यार करने लगे।''[३३] हम सभी भगवान है, अपना-अपना भाग्य बनाना अपने हाथ में हैं। ''मैं लक्कड़हारा हूँ मैं अपनी मेहनत से कमाऊँगा और आप भी मेहनत करें। वे कलवा को भगवान मानने लगे। वे जान चुके थे कि भगवान इस संसार के भीतर ही है, बाहर नहीं। मनुष्य अपने सद्गुणों से स्वयं ही भगवान बनता है।''[३४]

इस प्रकार लेखिका ने राजकुमार कलवा के उदाहरण से भाग्य और कर्मवाद पर प्रकाश डाला है। राजकुमार ने जिंदगी भर भाग्य पर भरोसा करके सारी प्रजा को दु:खो के आग में झुलसाया और स्वयं घास छीलते हुए जीवन के अंतिम दिन काटे। कलवा चमार की परिश्रम में आस्था गीता के पुरुषार्थ और कर्तव्यता की पर्याय प्रतीत होती है। ''कलवा का समाज में समानता लाने का स्वप्न अंत में पूर्ण होता है और वह अपनी ईमानदारी, मेहनत और सत्य प्रियता के कारण अपने पूरे राज्य को ही स्वर्ग बना देता है।''[३५]

१.२.२. कहानी संग्रह

१.२.२.१ मैं हार गई

''मैं हार गई'' - १९५७ में प्रकाशित मन्नूजी का प्रथम कहानी संग्रह है। इस में इनकी प्रारंभिक रचनाएँ हैं। मन्नूजी की प्रारंभिक कहानियाँ कोई घटना या प्रसंग लिए हुए है और वे व्यक्तिगत आत्मकथा के रूप को लेकर चलती प्रतीत होती है। प्रारंभिक कहानियाँ वर्णनात्मक हैं। इन कहानियों के लिए स्वयं लेखीका ने ''दो शब्द'' में स्वीकार किया है- ''शायद नये मन और पूरानी रुढ़ियों का संघर्ष ही इन कहानियों की विषय-वस्तु और कहानीकार की मन:स्थिति है।''[३६]

इस संग्रह में निम्नलिखित कहानियाँ हैं।

(१) ईसा के घर इन्सान

(२) गीत का चुम्बन

(३) जीती बाजी की हार

(४) एक कमज़ोर लड़की की कहानी

(५) सयानी बुआ

(६) अभिनेता

(७) श्मशान

(८) दिवार–बच्चें और बरसात

(९) पंडित गजाधर शास्त्री

(१०) कील और कसक

(११) दो कलाकार

(१२) मैं हार गई

१.२.२.२ यही सच हैं

''यही सच हैं'' १९६६ में प्रकाशित कहानी संग्रह है। इस संग्रह की कहानी ''यही सच हैं'' अपनी रचना के समय से ही अत्यधिक चर्चित रही है। विश्व की अनेक भाषाओं में इस के अनुवाद हो चुके हैं। नैतिक–अनैतिक से परे यथार्थ को निर्भ्रान्त निगाहों से देखते जाना इस संग्रह की अद्वितिय विशेषता है।

इस संग्रह की कहानियों में ''मैं हार गई'' संग्रह की अपेक्षा अधिक परिपक्वता दिखाई देती है। जीवन की विभिन्न परिस्थितियों और समस्याओं के केन्द्र को सुक्ष्म दृष्टि से पहचान कर उसे सफलता पूर्वक अभिव्यक्त किया है। इन कहानियों में मन्नूजी का लेखन अधिक व्याप्ति लिए हुए हैं। मन्नूजी की सृजनात्मक प्रतिभा का यह दूसरा सोपान है।

इस संग्रह में निम्नलिखित कहानियाँ है।

(१) क्षय

(२) तीसरा आदमी

(३) सजा

(४) नकली हीरे

(५) नशा

(६) इन्कमटेक्स और नींद

(७) रानी माँ का चबुतरा

(८) यही सच हैं

१.२.२.३ त्रिशंकु

''त्रिशंकु'' (१९७८) इस अध्ययन का तीसरा गुलदस्ता है जो विविध भाव-रंगो के पुष्पों से सुसज्जित हैं।

पिछले २०-२५ वर्षो के लेखन का अनुभव इस संग्रह में दिखवाई देता है। कवि अजीतकुमार के दिए एक इन्टरव्यू में स्वयं लेखिका स्वीकार करती है कि ''पहले लिखना बहुत सहज, सरल और उबाल की तरह होता था। उस समय का सबसे बड़ा संतोष मात्र अभिव्यक्ति और सबके बीच उसका स्वीकार ही था। अब अभिव्यक्ति के साथ सार्थकता और प्रासंगिकता का प्रश्न भी जुड़ गया है। भीतर सृजक के साथ उससे भी तगड़ा आलोचक आकर बैठ गया है।''[३७]

इस कथन से स्वत: स्पष्ट है कि इस संग्रह की मन्नूजी की कहानियाँ उन्हीं के भीतर बैठे आलोचक की पैनी दृष्टि से निकलकर परिष्कृत रूप लिए आई हैं। सार्थकता और प्रासंगिकता की शर्त को पूरा करती है। मन्नूजी से पूछे गए एक प्रश्न के उत्तर में वे कहती है :

''अच्छे और सार्थक लेखन के लिए सामाजिक चेतना अनिवार्य है। समाज से कटा-छटाँ और जीवन की धड़कनों से शून्य साहित्य सार्थक हो सकता है, मुझे इससे संदेह है।''

''त्रिशंकु'' संग्रह की कहानियों में मन्नूजी की सृजनात्मक प्रतिभा का तीसरा सोपान स्पष्ट परिलक्षित होता है, ये कहानियाँ व्याप्ति लिए हुए हैं। संत बख्शसिंह के शब्दों में कहे तों- ''प्रमाणिक अनुभवों का दस्तावेज हैं।''[३८]

इस संग्रह में निम्नलिखित कहानियाँ है –

(१) आते जाते यायावर

(२) दरार भरने की दरार

(३) स्त्री सुबोधिनी

(४) शायद

(५) त्रिशंकु

(६) रेत की दिवार

(७) तीसरा हिस्सा

(८) अलगाव

(९) एखाने आकाश नाई

आधुनिक युग के संदर्भ में परंपरागत मूल्यों का विघटन हो रहा है, नवीन मूल्यों की प्रस्थापना का प्रयत्न जारी है, किन्तु यह कार्य सुगम नहीं है। जैसा कि डॉ. रघुवीर सिन्हा कहते है कि ''यह एक समाज शास्त्रीय सत्य है, भौतिक तत्त्वों की अपेक्षा में वैचारिक तत्त्व देर सें प्रभावित होते हैं।''[३९]

अर्थात बाह्य जीवन में जिस सुगमता से परिवर्तन हो जाते हैं, उस सुगमता से विचारों में परिवर्तन नहीं होता है। परिणाम स्वरूप जब भी किसी नये विचार या स्थिति से हमारा सामना होता है हम उसे एक बार भी स्वीकार नहीं कर पाते। आज के लेखकों के समक्ष यह एक बहुत बड़ी समस्या है किन्तु साथ ही चुनौती भी है। मन्नूजी ने इस चुनौती को स्वीकार किया है एवम् अपने लेखन के माध्यम से बदलती स्थितियों का विश्लेषण बड़ी स्पष्टता से किया है।

नवीन सामाजिक मूल्यों की स्थापना में साहित्यकार के योगदान के विषय में मन्नूजी से पूछे गए प्रश्नो के उत्तर में वे कहती है– 'साहित्यकार सीधे–सीधे तो

नये मूल्यों के लिए कोई दिशा निर्देश नहीं करता। यदि करें भी तो उससे नये मूल्यों की स्थापना हो जाएगी, मुझे उस में संदेह है। उसका काम तो केवल इतना है कि जहाँ भी विकृतियाँ है, असंगतियाँ है, उनको बेबाक ढंग से उजागर करें। सामाजिक विकृतियों के परिणाम स्वरूप जो व्यक्ति या वर्ग यातना झेलता है बड़ी संवेदना के साथ उसकी पीड़ा को वाणी दे। यों नयी स्थितियों, नये मूल्यों के लिए मानसिक पृष्ठभूमि तैयार करने की भूमिका तो साहित्यकार निभाता ही है।'

मन्नूजी अपने उत्तरदायित्त्व के प्रति सजग है। उन्होंने सामाजिक विकृतियों एवम् विषम परिस्थितियों पर तटस्थ दृष्टि से विचार किया है। उनकी संवेदनशील प्रकृति एवम् सूक्ष्म मेघा उन्हें समस्याओं के मूल तक पहुँचा देती है। और उनका कलाकार उस मूल संवेदन को प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित करने में सफल रहा है। शायद इसलिए कमलेश्वर को कहना पड़ा– ''मन्नू भण्डारी की कहानियाँ नए समाज, नई परिस्थितियों और नई संवेदनाओं को प्रेषित करती है।''[४०]

१.२.२.४ तीन निगाहों की एक तस्वीर

''तीन निगाहों की एक तस्वीर यह पारिवारिक प्रेम एवम् दाम्पत्य संबंध की कहानी है। जिन्दगी का यथार्थ तथा आधुनिकता बोध जीवन में अकेलेपन, अजनबीपन तथा व्यर्थताबोध को उभारने का प्रयत्न तो करता है ही साथ ही धरातल पर संघर्ष को जन्म देकर उसके संबंधों को खण्डित भी करता है और उसकी सोच को भी बदलता है।''[४१]

व्यक्ति अहं व सामाजिक परिवेशजन्य विसंगतियों से उसके व्यक्तित्व का विघटन आदि स्थितियों का सूक्ष्म एवम् यथार्थपरक चित्रण संग्रह की दूसरी कहानी ''अकेली'' के अन्तर्गत हुआ है।

''अनचाही गहराइयाँ'' इस संग्रह की तीसरी कहानी है। यह एक साधारण

कहानी होते हुए भी पाठक के मन को छू लेने वाली कहानी है ।

''तीन निगाहों की एक तस्वीर'' के अन्तर्गत निम्न लिखित शीर्षक में आठ कहानियाँ है–

(१) तीन निगाहों की एक तस्वीर

(२) अकेली

(३) अनचाही गहराइयाँ

(४) खोटे सिक्कें

(५) घूटन

(६) हार

(७) मजबूरी

(८) चश्मे

१.२.२.५ एक प्लेट सैलाब

संग्रह की प्रथम कहानी ''नई नौकरी'' है जिसके अन्तर्गत लेखिका ने आधुनिक रहन–सहन और विचारधारा को प्रस्तुत किया है ।

दूसरी कहानी ''बंध दराजों के साथ'' संरचनात्मक क्षमता और द्वन्द्व की एकाग्रता देखते बनती है ।

तीसरी कहानी ''एक प्लेट सैलाब'' का रचना संसार पूर्ववर्ती आाधार को छोड़ता हुआ समकालीन संवेदना के धरातल पर तनाव विघटन को उसकी सामाजिक व्याप्ति में ग्रहण करता है ।

''छत बनाने वाले'' शीर्षक चौथी कहानी, मध्यमवर्गीय परिवार की है जिसमें पुरानी पीढ़ी की नई पीढ़ी के साथ तुलना दृष्टिगोचर होती है ।

''एक बार और'' पाँचवीं कहानी है । यह कहानी मूल रूप से प्रेम तथा

दाम्तत्य संबंधों पर आधारित है।

लेखिका ने इस कहानी के माध्यम से प्रेम की विषम परिस्थितियों में नारी के निर्णायक क्षण को अन्तर्द्वन्द्व के रूप में चित्रित किया है।

''संख्या के पार'' संग्रह की छठवीं कहानी है। भावना प्रधान कहानी में संतान के लिए छिपी ममता का सुंदर चित्रण किया है।

संग्रह की आठवीं कहानी ''कमरे, कमरा और कमरें'' की नायिका नीलम केवल बुद्धि की ही नहीं, किस्मत की भी बड़ी धनी है।''[४२] नीलम मनचाही नौकरी के साथ समस्त उपलब्धियाँ भी प्राप्त करती है। इन सारी पूर्णता के साथ भी उसे एक नयी अपूर्णता का बोध होता था।

संग्रह की नौवीं कहानी ''ऊँचाई'' के अन्तर्गत आधुनिक नारी के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित किया है। आधुनिक नारी अब उस पारस्परिक पत्नी बोध से मुक्त हो गई है जिसमें केवल पतिवृत धर्म ही उसके जीवन का प्रमुख सार था। अब वह पति और प्रेमी इन दोनों में वैसे कोई भेद नहीं करती।

इस संग्रह के अन्तर्गत निम्न लिखित नौं कहानियाँ है–

(१) नई नौकरी

(२) बंध दराजों का साथ

(३) एक प्लेट सैलाब

(४) छत बनाने वाले

(५) एक बार और

(६) संख्या के पार

(७) बाहों का घेरा

(८) कमरे, कमरा और कमरें

(९) ऊँचाई

१.२.२.६ आँखो देखा झूठ

संग्रह की प्रथम कहानी ''आँखो देखा झूठ'' है। कहानी राज धनसिंह तथा रानी मनसा पर आधारित है।

संग्रह की दूसरी कहानी ''दुर्भाग्य की हार'' अपने आप में पूर्ण कहानी है। परंतु इसकी कथावस्तु पूर्व कहानी से संबंधित है।

''आँखो देखा झूठ'' का तीसरा भाग ''वशीकरण'' है। इस कहानी के माध्यम से ''आँखो देखा झूठ'' के अन्य पात्र उभरकर आते हैं तथा कथा को आगे बढ़ाने में सहयोग देते हैं।

चौथी कहानी ''बढ़ता हुआ यश'', ''आँखो देखा झूठ'' से ही संबद्ध है तथा यह अपने आप में पूर्ण है। यह राजा राजनी की कहानी न होकर किसान की कहानी है। जिसकी बेटी सोनल के बाल सोने के हैं और राजकुमार के उस पर मोहित हो जाने पर तथा विवाह की इच्छा प्रकट करने को वह स्वीकार नहीं कर पाती वह सुनार के पुत्र को पति के रूप में स्वीकार करती है। इस प्रकार यह कहानी सोनल के धैर्य और साहस को ही व्याख्यित करती है और इसी कहानी में प्रारंभ से चली आ रही ''आँखो देखा झूठ'' कहानी का समापन होता है।

किसान की सूझ तथा चतुराई पर आधारित दूसरी कहानी ''संकट की सूझ'' है। किस प्रकार किसान चतुराई तथा धीरज से अपने खेत में चोरी करने आये चोरों को दण्ड देता है, रुचिकर है।

काल्पनिक घटनाओं पर आधारित कहानी ''आवाजें'' हैं। कहानी में नवीनता कुछ भी नहीं है। राजा-रानी तथा जादू के प्रभाव से रानी का चिड़िया बन जाना तथा राजकुमार के परिश्रम से रानी का पुनः मानव शरीर धारण कर लेना यही

इसकी कथावस्तु है।

मन्नू भण्डारी द्वारा लिखित बालपयोगी कहानी संग्रह ''आँखो देखा झूठ'' इसके अन्तर्गत निम्न लिखित आठ कहानियाँ हैं-

(१) आँखो देखा झूठ

(२) दुर्भाग्य की हार

(३) वशीकरण

(४) बढ़ता हुआ यश

(५) संकट की सूझ

(६) आवाजें

(७) नहले पर दहला

(८) हिम्मती सुमेश

१.२.३ नाटक

१.२.३.१ बिना दिवारों के घर

मन्नू भण्डारी मूलतः कथा लेखिका है, और उनकी अधिकांश रचनाएँ कहानियों और उपन्यासों के रुप में ही हैं। लेकिन अपने लेखन के प्रारंभिक वर्षो में उन्होंने ''बिना दिवारों के घर'' नामक एक नाटक की रचना की थी। सन् १९६५ में अक्षर प्रकाशन द्वारा इस नाटक का प्रकाशन किया गया। दिल्ली विश्व विद्यालय के मिराण्डा कॉलेज की छात्राओं ने १९६६ में इसका सफल मंचन भी किया था।

यह नाटक तीन अंकीय है। जिसके प्रथम अंक में दो तथा दूसरे अंक में तीन-तीन दृश्यों का आयोजन किया गया हैं। सभी दृश्यों का घटना स्थल एक ही ड्राइंग रुम है। संपूर्ण नाटक में कुल नौ पुरुष पात्र और पाँच नारी पात्र हैं।

मध्यमवर्गीय भारतीय परिवार में नारी और पुरुष के टूटते दाम्पत्य-संबंधों पर यह नाटक आधारित है। वर्तमानयुग की सामाजिक, पारिवारीक और आर्थिक परिस्थितियों में मानवीय संबंधो की विषमताओं, आपसी संघर्षो और उनके परिणामों को मन्नूजी इस नाटक में समेट ने का प्रयत्न किया है।

मन्नूजी की यह नाट्यकृति यद्यपि नाटकीयता की दृष्टि से अति साधारण कही जा सकती है। किन्तु विषय की दृष्टि से निर्विवाद रुप से एक महत्त्वपूर्ण एवम् प्रभावात्मक रचना है। सम्भवत: अपने समकालीन साहित्यकार मोहन राकेश जो एक विलक्षण कथाकार होने के साथ-साथ एक युगांतरकारी नाटककार भी थे, वे प्रभावित होकर ही लेखिका ने इस नाट्यकृति की रचना की हो। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-साहित्य जगत में मन्नू भण्डारी का स्थान उनकी गहरी अन्तर्दृष्टि एवम् विलक्षण चरित्रांकन क्षमता के कारण अग्रण्य साहित्यकारों में माना जाता है। नारी की विविध परिस्थिति जन्य-मानसिकता को जिस कौशल और विशिष्टता से लेखिका ने चित्रित किया है- वह प्रशंसनीय है। स्त्री-पुरुष के संबंधों की विडम्बना, तनाव और टकराहट को सजीव रुप में इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है।

कथानक :

अजित और शोभा का दाम्पत्य जीवन भी संघर्ष पूर्ण स्थितियों से गुजर रहा है। जब अजित और शोभा का विवाह हुआ था तब शोभा मेट्रिक पास ही थी। बाद में अजित उसे पढ़ाता है और संगीत भी सिखवाता है। पढ़-लिखकर शोभा कॉलेज में प्राध्यापिका हो जाती है। यदा-कदा वह रेडियो व संगीत समारहों में गाने के प्रोग्राम भी दे दिया करती है। ज्यों-ज्यों शोभा अपने बाहरी कामों से अधिकाधिक व्यस्त व लोकप्रिय होने लगती है। त्यों-त्यों अजित को वह अपने

से दूर जाता हुआ महसूस करती है। अजित बार-बार उसकी अतिशय व्यस्तता व घर की अनदेखी की शिकायत कर उससे झगड़ता रहता है।

अजित का एक दोस्त है जयंत। जयंत का अपनी पत्नी मीनी से संबंध-विच्छेद हो चुका है। जयंत और अजित की दोस्ती उनके कॉलेज जीवन से ही थी अत: शोभा के आने पर इस दोस्ती में वह भी शामिल हो गई। जयंत की शादी के बाद उसके अपने स्टेनो के साथ प्रेम-संबंधो को लेकर पत्नी से अनबन हो गई। पहले जयंत व मीना साथ ही अजित व शोभा से मिलने आया करते थे। मीना से संबंध-विच्छेद के बाद जयंत अकेला ही आता जाता रहेता है। यही नहीं वह शोभा के लिए व्यवसायिक उचित अवसर भी खोजने में सहायता करता रहेता है।

जयंत का इस प्रकार शोभा में रुचि लेना तथा उससे घनिष्ठता रखना अजित के मन में संदेह उत्पन्न कर देता है। वह जयंत से खींचा-खींचा रहने लगता है और शोभा के साथ किसी न किसी बहाने से लड़ता है।

शोभा की उन्नति व लोकप्रियता भी अजित में एक हीन भावना उत्पन्न करती है। इसी भाव से प्रेरित होकर वह शोभा की व्यस्तता व नौकरी का विरोध करने लगता है। किन्तु शिक्षित व महत्त्वकांक्षी शोभा भी अजित के अहं पर अपने स्वतंत्र, स्वावलंबी व्यक्तित्त्व को कुरबान करने के लिए तत्पर नहीं होती। यह स्थिति दोनों में टकराहट पैदा कर देती है।

अजित के घर अप्पी की देखभाल के लिए उसकी विधवा बहन भी रहती है। वह परिस्थिति की विषमता को पहचान कर दोनों को समझाना चाहती है पर दोनों ही अपने-अपने अहं को लेकर डटे रहते हैं।

जयंत जानता है कि उसका शोभा के साथ मित्रता रखना अजित को पसंद

नहीं लगता है । फिर भी अजित उसके घर के प्रति अपनी आत्मीयता और अधिकार भाव को समझकर वह नियमित रूप से आता है और शोभा को सलाह देता है । अपने प्रभाव से वह शोभा को प्रिन्सीपल की नौकरी दिलवा देता है । अजित चाहता है कि शोभा यह नौकरी न करें किन्तु शोभा अपनी योग्यता की कसौटी का मोह नहीं छोड़ पाती । फिर जयंत भी उसे विश्वास दिला देता है कि जिस तरह अजित जयंत की उन्नति से ईर्ष्या करता है, उसी तरह वह शोभा की उन्नति से भी ईर्ष्या करता है । इस तरह जयंत एक प्रकार से शोभा को अजित के विरुद्ध खड़ा होने के लिए प्रेरित करता है ।

तभी अजित अपनी नौकरी से असंतुष्ट होकर त्यागपत्र दे देता है । दूसरी नौकरी के लिये वह जी-जान लगा देता है, पर उसे नहीं मिलती । फिर शोभा के कहने पर जयंत उसे वह नौकरी दिलवा देता है । शोभा की तरक्की की खुशी में घर में पार्टी में आए उनके मित्र व उनकी पत्नियाँ शोभा और जयंत के संबंधों पर दबी जबान में व्यंग्य करते हैं । अजित का मन तो पहले ही शंका व ईर्ष्या से क्षुब्ध था ही । अब पत्नी के आचरण का इस आलोचना पर उसका अहं आहत होता है । और वह भड़क उठता है । वह जयंत को लेकर पत्नी के आचरण पर अपना संदेह व्यक्त करता है ।

शोभा जयंत को देवर का स्नेह देती हुई आई है । पति के इस निरर्थक आरोप से वह अपने को बुरी तरह अपमानित महसूस करती है । दोनों में इस विषय को लेकर भीषण झगड़ा होता है । और फिर शोभा घर छोड़कर चली जाती है । जीजी दोनों को ही समझाती है किन्तु दोनों ही अपनी-अपनी जगह डटे रहते हैं ।

फिर जब अप्पी बीमार हो जाती है तो जीजी के आग्रह करने व अजित के

समझाने पर शोभा वापिस आती है। किन्तु न ही अजित उससे बात करता है और न ही मनाने या रुकने के लिए आग्रह करता है। अपमानित और उपेक्षीत शोभा अप्पी को साथ लेकर वापिस लोट जाना चाहती है, किन्तु अजित अप्पी को ले जाने के लिए इंकार कर देता है। अतः शोभा यह कहकर चली जाती है कि ठीक है तो मैं अकेली ही चली जाऊँगी। जहा मैंने अपने भीतर की पत्नी को मारा है, वही अपने भीतर की माँ को भी मार दूँगी। बच्ची की कुर्बानी से यदि तुम्हारा अहं संतुष्ट होता है तो उस मासूम बच्ची की भी कुर्बानी करो।

१.३ निष्कर्ष

मन्नू भण्डारी के कथा–साहित्य का सिंहावलोकन यह निष्कर्ष देता है, कि उन उपन्यास मानव मनोविज्ञान के आधार पर मानव के मन की गहन अनुभूतियों का चित्रण करने में सफल रहे है। ''आपका बंटी'' एक यथार्थवादी प्रयोगशील रचना है और लेखिका ने इस रचना को मनोविज्ञान अथवा समाज शास्त्र में सिद्धांत की व्याख्या करने वाली रचना भर नहीं होने दिया है, अपितु पारिवारिक और सामाजिक समस्या से जुझते हुए और मानव की अंतरानुभूतियों को सशक्त अभिव्यक्ति देते हुए एक ऐसे बिन्दु पर पहुँचा दिया है, जहाँ मनोविज्ञान और समाजशास्त्र अपने आप जाकर मिल जाते हैं। बंटी के माध्यम से बाल मनोविज्ञान से संबंधित अत्याधिक सहज और स्वाभाविक चरित्र चित्रण तथा दूसरी और ''महाभोज'' एक राजनीतिक आयाम को खोलने वाली और उसके माध्यम से उपजीन्य महानगर बोध की विद्रपताओं और विषमताओं को चित्रित करने वाली एक सहज रचना है।

मन्नू भण्डारी की कहानियाँ प्राय: आधुनिक कहानियों के अन्तर्गत रखी जा सकती है। क्योंकि कथावस्तु पर अधिक बल न देकर कथा पात्रों के चरित्रों के उद्‌घाटन पर अधिक बल दिया गया है। चरित्रो के उद्‌घाटन को मन्नूजी की एक विशेष भंगिमा है, जो अत्याधिक वैज्ञानिक और व्याहारिक भी है। उनकी यही भाव भंगिमा ''यही सच है'', ''रानी माँ का चबुतरा'', ''क्षय'', ''तीसरा आदमी'', ''ऊंचाई'', ''बाँहों का घेरा'', ''शायद'', ''मैं हार गई'' जैसी अमर कहानियाँ हमें देती है। जरुरी नहीं कि इन कहानियों के निष्कर्ष सर्वमान्य है। लेकिन वे विचारों के आधार पर अवश्य है, और एक सफल रचनाकार विचारोंदीप्त होकर छोड़ देता है। निष्कर्षों को स्वीकारना न स्वीकारना पाठक अथवा आलोचकों की

आस्था और अनुभूतियों पर निर्भर करता है। संक्षेप में- मन्नू भण्डारी की कथा-साहित्य एक सहज स्वाभाविक और तार्किक शक्ति से संपन्न पात्रों का कथा-साहित्य है।

प्रकरण १ संदर्भ सूचि

(१) सं. राजेन्द्र यादव : श्रेष्ठ कहानियाँ, मन्नू भण्डारी (नये कहानीकार) प्रमुखस्वर। पृ. : ७

(२) मन्नू भण्डारी : आपका बंटी, राधा कृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ही १९९० । पृ. : ४

(३) सं. राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी : औरों के बहाने, १९८१ । पृ. : १४५

(४) राजेन्द्र यादव : औरों के बहाने, १९८१ । पृ. : ७१

(५) सं.राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी : औरों के बहाने, १९८१ । पृ : ११७

(६) राजेन्द्र यादव : एक इंच मुस्कान, अपना व्यक्तित्व, १९६३ । पृ. : ३१३

(७) डॉ. मनमोहन सहगल : हिन्दी उपन्यास के पदचिहन सूर्यप्रकाशन, दिल्ही, १९७३ । पृ. : ३२२

(८) डॉ. शीला रजवार : स्वातंत्र्योतर हिन्दी कथा-साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ, ईस्टर्न बूक लिंकर्स, दिल्ली । पृ. : २०२

(९) मन्नू भण्डारी : आपका बंटी (वक्तत्त्व) । पृ. : ७

(१०) डॉ.रामविनोद सिंह : आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास, अनुपम प्रकाशन पटना, १९८० । पृ : १६५-१६७

(११) महाभोज : मन्नू भण्डारी । पृ : ६

(१२) मन्नू भण्डारी : महाभोज, (१३वीं आवृति) लेखिका की आत्मकथा । १९८९ । पृ : ६

(१३) डॉ. सुशीला शर्मा : हिन्दी उपन्यास में प्रतीकात्मक शिल्प, (प्रथम संस्करण) १९८४ । पृ : २०७

(१४) संपादक गोपाल राय : समीक्षा, १९७१ । पृ : ४

(१५) डॉ. ममता शुकला : मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, १९८९ । पृ : ५८१

(१६) कृष्ण कुमार बिस्सा ''चन्द्र'' : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास में राजनीतिक चेतना, प्रथम संस्करण, १८९४ । पृ : ९८१

(१७) मन्नू भण्डारी : कलवा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नईदिल्ली, १९९३ । पृ : ५

(१८) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : ६

(१९) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : ६-८

(२०) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : ७-८

(२१) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : ९-१०

(२२) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : ८-९

(२३) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : २८-२९

(२४) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : २९-३०

(२५) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : ३०-३१

(२६) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : ३१

(२७) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : ३२

(२८) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : ३३

(२९) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : ३३-३४

(३०) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : ३७

(३१) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : ४०-४१

(३२) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : ४१

(३३) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : ४१

(३४) मन्नू भण्डारी : कलवा । पृ : ४४

(३५) मन्नू भण्डारी : कलवा। पृ : ४४

(३६) मन्नू भण्डारी : मैं हार गई। पृ : ५

(३७) मन्नू मण्डारी : त्रिशंकु। पृ : २६

(३८) डॉ. संत बख्शसिंह : नई कहानी नये प्रश्न। पृ. : ४१

(३९) डॉ. रधुवीर सिन्हा : आधुनिक हिन्दी कहानी समाज शास्त्रीय दृष्टि-भूमिका।

(४०) सं. कमलेश्वर : दो सौ नए निबंध। पृ. : १२६

(४१) डॉ. शिवशंकर पाण्डेय : स्वातंत्रोत्तर हिन्दी कहानी, कथा और शिल्प आलेख प्रकाशन। पृ. : २००

(४२) मन्नू भण्डारी : एक प्लेट सैलाब-कमरे, कमरा और कमरें, अक्षर शिल्प आलेख प्रकाशन। पृ. : २०१

प्रकरण-२

२. हिन्दी कथा साहित्य और नारी चित्रण

२.१ आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य का विकासात्मक परिचय

२.१.१ कहानी

२.१.२ उपन्यास

२.२ भारतीय समाज में नारी का स्थान और स्थिति

२.२.१ प्राचीनयुग

२.२.२ मध्ययुग

२.२.३ अर्वाचीन युग

२.३ हिन्दी कथा-साहित्य में नारी चित्रण

२.३.१ नारी महत्त्व और सार्थकता

२.३.२ कथा-साहित्य में नारी के विविध रूप

२.३.२.१ माता

२.३.२.२ पत्नी

२.३.२.३ प्रेयसी

२.३.२.४ बहन

२.३.२.५ विधवा

२.३.२.६ वेश्या

२.४ निष्कर्ष

प्रकरण : २. हिन्दी कथा साहित्य और नारी चित्रण

२.१ आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य का विकासात्मक परिचय

'आधुनिक काल' हिन्दी साहित्य का चौथा युग-खण्ड है, जिसका प्रारंभ सन् १८५० ई. से. माना जाता है। सौभाग्य से यही भारतेन्दु बाबु हरिशचन्द्र की जन्मतिथि भी है, जिन्हें हिन्दी साहित्य में आधुनिक जीवन बोध-प्रवर्तक माना जाता है। आचार्य शुकल ने इस युगखण्ड का नाम आधुनिक काल सबसे पहले दिया, लेकिन कुछ विध्वानों ने इसे 'विकास काल' अथवा 'पुनर्जागरण काल' भी कहा है। यह वस्तुतः रीतिकालीन परिपाटी से बिलकुल भिन्न एक ऐसा युगखण्ड है, जिसमें नवीन जागरण, देशप्रेम की भावना, राष्ट्रीय उत्थान और भारतीय संस्कृति के पुनर्मूल्यांकन की कई दिशाएँ हमें मिलती है।

स्वातंत्र्य प्राप्ति के पूर्व का साहित्य स्वतंत्रता प्राप्ति के उद्देश्यों पर समर्पित था। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से साहित्यिक रचनाएँ स्वतंत्रता प्राप्ति और राष्ट्रीय जागरण के प्रति संकल्पित थी किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्यात रचनाकारों का लक्ष्य बदल गया। विदेशी सत्ता से टकराने, उन्हें बहिष्कृत करने और शासन की स्वायत्तता का उद्देश्य पूरा हो गया। उसके पश्यात आंतरिक स्थितियों के सूक्ष्म निरीक्षण और आलोचना का क्रम आरंभ हूआ।

स्वातंत्र्य प्राप्ति के संघर्ष में भारतीय जनमानस की बहुविध आशाएँ और आकांक्षाएँ काम कर रही थीं। लोगों का विश्वास था कि स्वतंत्रता प्राप्त हो जाने के बाद देश की स्थिति में अनुकूल परिवर्तन होगा, सभी नागरिकों को विकास के समान अवसर मिलेंगे, सभी की भावनाओं का आदर होगा, सभी का जीवन स्तर उपर उठेगा और स्वतंत्र वातावरण में सभी नागरिक सुरक्षित और सम्मानजनक जीवन जी सकेंगे। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए विश्वेश्वर

ने लिखा है- ''स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षो में हमने जो सपने और धारणाएँ संजो रखी थीं, वे आज किसी भी स्तर पर साकार नहीं हुई। परिणामत: जनमानस गहरी उदासीनता और उत्कट विक्षोभ का शिकार हुआ। कभी हम सबको व्यर्थ बेहूदा और असंगत कहकर रिजेक्ट कर देते हैं और कभी अपनी स्थितियों को लेकर चिंतित हो उठते है। याने हमारा मानस उदासीनता और उद्वोलन की द्वन्द्वात्मक स्थिति से गुजर रहा है। संभावनाओं के लिए जो उत्कट प्रयास हमने किया था उसका नतिजा आज शून्य निकला।''[१] राजनैतिक सत्ता के प्राप्त हो जाने पर भी आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक स्तर पर दासता की बेडियाँ, पूर्ववत ही बनी रहीं। परिणामत: धीरे-धीरे असंतोष, आशंका और अविश्वास का वातावरण बनने लगा।

सन् १९४७ से लेकर सन् ६० तक की विधाओं में यही बौद्धिक चेतना सक्रिय रही। कथ्य के इस वैशिष्ट्य ने साहित्य के अभिव्यंजक शिल्प को भी बहुत दूर तक प्रभावित किया।

सन् ६० के बाद स्थितियों में परिवर्तन हुआ। भारत पर चीन और पाकिस्तान के आक्रमण हुए। हमारे देश में इस समय चार चुनाव संपन्न हुए। तीन पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी हुई। विभिन्न महत्त्वकांक्षी योजनाओं की सार-हीनता लोगों के सामने स्पष्ट हुई। गरीब और अधिक गरीब तथा धनी और अधिक धनी होता गया। शासन व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार सामने आने लगा। देश का नेतृत्त्व मूल्यधर्मी चेतना से विरत और स्वार्थो तथा षड्यंत्रों से लिप्त होने लगा। परिणाम स्वरूप व्यापक स्तर पर मोहभंग की स्थिति पेदा हुई। इस काल के साहित्यकारों ने विशेष रूप से युवा साहित्कारों ने अपने भीतर विशेष प्रकार की बेचैनी अनुभव की। इस मोहभंग की स्थिति ने उन्हें विद्रोही क्रान्तिकारी और असहनशील बना

दिया । परिणाम स्वरूप इन साहित्यकारों ने व्यवस्था के विरोध में तीव्र स्वर उठाया। विभिन्न विधाओं में लिखने वाले रचनाकारों में यह असंतोष सामान्य रूप से व्याप्त हुआ ।

सन् १९७० के बाद साहित्यिक वातावरण में कुछ स्थिरता आयी। आक्रोश की तीव्रता कुछ कम हुई। तत्कालीन प्रतिक्रियाओं के सीन पर सुवैचारिक चिंतन और विवेक को महत्त्व दिया जाने लगा। विभिन्न राजनैतिक सिद्धांतो के समर्थक साहित्यकारों ने भी अपनी राजनैतिक प्रतिबद्धताओं से अलग हटकर मानवीय नियति और मानवीय संभावना का संधान करने लगे । स्थितियों की अतिवादी भूमिका को छोड़कर उनके सहज और संतुलित रूप को स्पष्ट करने का रचनात्मक प्रयास किया जाने लगा। इस स्थिति में साहित्यिक आंदोलनों को एक नया मोड़ मिला और सहज कविता, सहज कहानी जैसे आंदोलन प्रस्तावित हुए।

सन् १९८० के बाद भी यह स्थिति चलती रही। इस कालखण्ड में जिन साहित्यिक आंदोलनों की चर्चा उभरकर सामने आयी वे किसी एक विधा में प्रस्तावित होकर भी साहित्य की सभी विधाओं को दूर तक प्रभावित करते रहे। यहाँ पर इन सभी आंदोलनों की क्रमबद्ध और विस्तृत चर्चा करना न तो अपेक्षित है, और नहीं आवश्यक। इसलिए उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि की ओर सक्षिप्त संकेत ही हमारा अभीष्ट है ।

२.१.१ कहानी

"नदी जैसे जल स्त्रोत की धारा है मनुष्य की कहानी का प्रवाह ।"- रवीन्द्रनाथ टैगोर की इस परिभाषा के अनुसार यह जीवन और जगत स्वयं कहानी है। ऐसा कौन अभागा होगा जो कहानी सुनना और पढ़ना पसंद न करता हो ? सरल से लेकर गंभीर प्रवृत्तिवाले प्रायः सभी लोग कहानी द्वारा मन बहलावा करते

देखे गये हैं। सभी को कहानी प्रिय जान पड़ती है। ऐसा क्यों होता है ? इसका सीधा-सादा उत्तर यही है कि मानव-जीवन ही कुछ ऐसा है कि उसमें आगे क्या हुआ की प्रवृति न तो कभी लुप्त हुई और न हो सकती है। मनुष्य के हृदय में यह वृति संस्कार रूप से विद्यमान है, इसलिए उसकी पूर्ति के लिए वह सदैव कहानी का आश्रय लेता है। अतएव जब से मनुष्य इस सृष्टि में आया तभी से उसमें कहने और सुनने की प्रवृति भी आई। इसी के परिणाम स्वरूप हमारे प्राचीन साहित्य में ''वेद'', ''बाह्मण'', ''उपनिषद'', ''महाभारत'', ''रामायण'', ''बौद्ध जातक'' ''पंचतंत्र'', ''हितोपदेश'', ''दशकुमार चरित'' आदि सभी ग्रंथों में किसी न किसी प्रकार की कहानियाँ देखने को मिल जाती है। हिन्दी में भी आरंभ से ही कथा-साहित्य का उदभव पाया जाता है। ''रासोग्रंथ'' कथा-साहित्य का उत्तम उदाहरण है। इसके अनन्तर ब्रजभाषा में गद्य तथा पद्य में लिखी गई विविध कहानियाँ देखने को मिलती है। वर्तमान युग के प्रारंभ में मुंशी इंसा अल्लाखान की ''रानी केतकी की कहानी'' ललूमलाल की ''सिंहासन बत्तीसी'' तथा ''वैताल पच्चीसी'' आदि कहानियों ने भी वर्तमान हिन्दी गद्य की नींव डालने का कार्य किया था। भारतेन्दु-युग में भी ''राजा भोज का सपना'', ''यमलोक की यात्रा'' एक अद्‌भूत अपूर्व स्वप्नत्यादी कहानियाँ लिखी है, किन्तु वर्तमान हिन्दी कहानियों का आरंभ तो वीसवीं सदी से ही माना जाता है।

कहा जाता है कि ''प्रारंभिक हिन्दी उपन्यास की भांति ही प्रारंभिक कहानी पर भी बंगला और अंग्रेजी का प्रभाव विशेष रूप से रहा है, हिन्दी की सर्वप्रथम कहानी को प्रकाशित करने का एकमात्र श्रेय 'सरस्वती' पत्रिका को ही जाता है।''[२] सरस्वती के प्रथम अंक में ही किशोरीलाल गोस्वामी की ''इन्दुमती'' नामक कहानी प्रकाशित हुई थी। आचार्य शुकल ने इसे हिन्दी को पहली नई

कहानी कहा था । इस पर सेक्सपीयर के ''टेम्पेस्ट'' नाटक की कथावस्तु की छाया होने के कारण आलोचकों ने इसे पहली मौलिक कहानी के रूप में स्वीकार नहीं किया । सन् १९०७ में बंगमहिला नाम से एक महिला ने ''दुलाईवाली'' कहानी लिखी जिसे हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी होने का श्रेय दिया गया है । इसी समय शुकलजी की ''ग्यारह वर्ष का समय'' कहानी प्रकाशित हुई । ये तीनो ही कहानियाँ की प्रगति को हम निम्नलिखित चार भागों में विभक्त कर सकते है ।–

(१) प्रसाद युग, (२) प्रेमचन्द युग, (३) प्रगतिवदी युग, (४) आधुनिक युग ।

(१) प्रसाद युग :

सन् १९१० में प्रसाद ने 'इन्दु' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन आरंभ किया । उसी में इनकी प्रथम मौलिक कहानी ''ग्राम'' प्रकाशित हुई । इसके उपरांत इनके द्रारा लिखी गई ''छाया'', ''प्रतिध्वनि'', ''आकाशद्वीप'', ''आँधी'', ''इन्द्रजाल'', ''पुरस्कार'', ''स्वर्ग के खण्डहर'' आदि कहानियाँ हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधियाँ मानी गई है । इनकी अधिकांश कहानियाँ ऐतिहासिक है या सामाजिक होते हुए भी ऐतिहासिक श्रृंगार में डूबी हुई है । कौतुहल भावानुकूल प्रकृति–चित्रण तथा नाटकीय रमणीयता आदि इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं । इसी समय हिन्दी के हास्यरस के लेखक बी. पी. श्रीवास्तव ने अपनी पहली कहानी ''पिकनीक'' हिन्दी में ही प्रकाशित की थी । फिर तो इन्होंने अनेक कहानियाँ लिखी । विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने सन् १९१३ में अपनी पहली मौलिक कहानी ''रश्राबंधन'' सरस्वती में प्रकाशित करवाई । सन् १९१५ में गुलेरीजी की ''उसने कहा था'' कहानी सरस्वती में निकली, जो आज भी हिन्दी कहानी साहित्य में अपना स्थान बनाये हुए है ।

प्रसाद युग में मुख्य चार प्रकार की कहानियाँ हमारे सामने आई-

(१) आदर्शवादी भावुकतापूर्ण कहानियाँ

(२) पारिवारिक घटनापूर्ण कहानियाँ

(३) हास्यरसपूर्ण कहानियाँ

(४) ऐतिहासिक कहानियाँ

(२) प्रेमचंद युग :

प्रेमचंद युग के आगमन के साथ ही हिन्दी साहित्य में एक नये युग का प्रारंभ हुआ। उनसे पहले भावुकता, रहस्यवादिता, रोमांस, जासूसी आदि विषयों में कहानी-साहित्य उलझा हुआ था, किन्तु सर्वसामान्य जनता के साथ अभी तक इनका संबंध नहीं हो पाया था। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के द्वारा सैकड़ो-मूक और हीन किसानों तथा मजदूरों का प्रतिनिधित्त्व किया था जो की अब तक साहित्य में अछूते माने गये थे। प्रारंभ में प्रेमचंद ने घटनाप्रधान कहानियाँ लिखकर हमारी सामाजिक, राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं का सफल चित्रण किया । प्रेमचंद यथार्थवादी परंपरा के कर्णधार है । इनकी कहानी काल में शिल्पगत समस्त प्रवृतियाँ विद्यमान हैं। उनकी कहानियों में चरित्र-चित्रण, भाषा शैली, इन तीनों का आश्चर्यजनक सामंजस्य पाया जाता है।

प्रेमचंद के समय में ही उत्साही युवकों का एक दल इस क्षेत्र में विशेष प्रयासशील रहा है। इनमें से सुदर्शन तो एक प्रकार से प्रेमचंदजी के उत्तराधिकारी ही माने गये हैं। इस समय पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने कुछ भावात्मक कहानियाँ लिखी । इसके अतिरिक्त शिवपूजन, सहाय, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवती प्रसाद बाजपेयी, विनोदशंकर व्यास, जैनेन्द्रकुमार, निराला और इलाचंद्र जोशी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

(३) प्रगतिवादी युग :

प्रेमचंद युग में ही नयी पीढ़ी के कुछ कहानीकारों ने मनोविश्लेषण को अपनी कहानी का आधार बनाया था। इलाचंद्र जोशी ने इस प्रकार की कहानियों का प्रारंभ किया था। उनके पश्यात अज्ञेय ने इस धारा को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाया। उनकी ''पगोडा शत्रु'', ''रोज़'', ''शरणार्थी'' आदि इस शैली की उत्तम कहानियाँ है।

इसी समय अपने को प्रगतिवाद कहने वाला एक दूसरा वर्ग भी सामने आया। इन्होंने एक नवीन दृष्टिकोण से सामाजिक कहानियाँ लिखी, जिस पर रुस की माकर्सीय धारा का पूर्ण आधिपत्य प्रतीत होता है। इन कहानीकारों में यशपाल राहुल, कृष्णचंद्र, अमृतलाल नागर, अमृतराय आदि के नाम उल्लेखनीय है।

(४) आधुनिक युग :

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ती और सन् १९४७ के बटवारे ने तो साहित्य की दिशा ही मोड़ ली। इस काल बंगाल का अकाल, कलकत्ता तथा पंजाब के जनसंहार, मध्यवर्ती लोगों के आर्थिक और नैतिक संघर्ष तथा स्वतंत्रता आदि का चित्रण इन कहानियों का मुख्य ध्येय रहा है। समाज जीवन की व्याख्या ही बदल गई और नये मूल्यों के प्रति साहित्यकारों का विश्वास बढ़ गया। इस अवस्था में साहित्य की दिशा का बदलना अनिवार्य ही था। इसी लिए डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ''समकालीन कहानी को कल्पना प्रसूत सम्मोहनों सें मुक्ति की कहानी कहते है।''[३] ऐसे समय में इधर नये कहानीकारों की एक नयी पीढ़ी सामने आई जिनकी कहानियों में नवीन शैली, नई आशा, नये विषय और नयी संभावनाएँ दिखाई देती है। इनमें राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, आनंद प्रकाश जैन, कमलेश्वर रमेश बक्षी और शिवप्रसादसिंह आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। डॉ. पुष्पालसिंह

ने इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखा है – ''भाषा प्रयोग के प्रति आज का कथाकार अत्यंत सजग है। यह कहना अनुपयुक्त नहीं होगा की राष्ट्रभाषा के रूप समकालीन कहानी में ही हिन्दी गद्य की सर्वाधिक संभावनाएँ और क्षमताएँ उद्‌धाटित हो रही है।''[४]

२.१.२ उपन्यास

हिन्दी उपन्यास आधुनिक युग की देन है। जिस पर पाश्चात्य टेकनीक का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। उपन्यास परंपरा का प्रारंभ पश्चिम मे हिन्दी उपन्यासों से बहुत पहले हो चूका था। यही अठारवीं सदी के मध्य भाग में जहाँ पश्चिमी उपन्यास का स्वरूप स्थिर हो रहा था, वहाँ १९वीं सदी में हिन्दी उपन्यास का केवल प्रारंभ ही हो पाया था। फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उपन्यास का स्वरूप निर्माण एवम् विषय वैविध्य जितना गत्यात्मक रहा है। वैसा शायद ही कही हो पाया है। हिन्दी उपन्यास के उद्‌भव और विकास की संक्षिप्त रूपरेखा हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते है।

(१) पूर्व प्रेमचंद युग सन् १८८२ से १९१५ ई.

(२) प्रेमचंद युग सन् १९१६ से १९३५ ई.

(३) प्रेमचंदोत्तर युग सन् १९३६ से आज तक।

(१) पूर्व प्रेमचंद युग :

यद्यपि हिन्दी उपन्यास का सुत्रपाद भारतेन्द्रु के जमाने से ही होने लगा था, परंतु उनके समय में मौलिक उपन्यास लिखने की अपेक्षा अंग्रेजी और बंगला के उपन्यासों के अनुवाद धडाधड हो रहे थे। उस समय एक ओर बंगला से शरत बंकिम और रवीन्द्रबाबू के उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद हो रहा था तो दूसरी ओर अंग्रेजी से ''लंदन-रहस्य'', ''राम काका की कुटियाँ'' आदि उपन्यासों के

अनुवाद प्रस्तुत किये जा रहे थे। वास्तव में यह युग हिन्दी उपन्यासों का प्रथम चरण था जिसका उद्देश्य हिन्दी के पाठकों को तैयार करना था। यही कारण है कि इनमें वैचारिक गंभीरता का अभाव और मनोरंजन तथा चमत्कार आदि का प्राधान्य है। इस युग की प्रमुख विशेषताएँ निम्न लिखीत है।

(अ) तिलस्मी उपन्यास :- श्री देवकीनंदन खत्री इस धारा के प्रमुख उपन्यासकार थे, जिन्होंने ''चंद्रकांता'' और ''चंद्रकांता संतति'' लिखकर हिन्दी के हजारों पाठक तैयार किये।

(ब) जासूसी उपन्यास :- श्री गोपालराम गहमरी इस धारा के प्रमुख उपन्यासकार थे, जिन्होंने पद्धति की रचना कर उपन्यास के क्षेत्र में एक विशेष कौतुहल पैदा किया।

(क) सामाजिक उपन्यास :- श्री किशोरीलाल गोस्वामी इस धारा के प्रवर्तक थे, जिनके पात्र यद्यपि मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्त्व करते थे, परंतु उनका चित्रण सामाजिक यथार्थ की भूमि पर न होकर परंपरागत प्रेम-पद्धति पर हुआ है।

(ड) भावात्मक उपन्यास :- श्री व्रजनंदन सहाय इस धारा के प्रमुख उपन्यासकार माने जा सकते है। जिनकी शैली कादम्बरी की तरह दुरुह और किलष्ट है।

हिन्दी उपन्यास की इस प्रारंभिक विकास धारा में उपन्यास कला के दर्शन कम होते है। नीति-उपदेश और चमत्कार-प्रदर्शन की भरमार ज्यादा है। सामाजिक जीवन की यथार्थता भी इनसे कोसों दूर है। हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास श्री श्रीनिवास का ''परीक्षा गुरु'' माना जाता है, जो कलात्मकता की दृष्टि से बहुत सफल नहीं है। फिर भी ऐतिहासिक मूल्य की दृष्टि से इनका महत्त्व है।

(२) प्रेमचंद युग :-

मनोरंजन और जनरुची के नाम पर हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में जो अंधाधुंधी चल रही थी, वह प्रेमचंद के प्रवेश करते ही एकाएक रुक गयी और हिन्दी कथाशिल्प अपने सुनिश्वित स्वरूप की ओर अग्रसर होने लगा। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों के माध्यम से एक नया परिप्रेश्य खोला। उनके उपन्यासों में मानव-जीवन के रहस्यों का उद्‌धाटन और युगीन समस्याएँ प्रमुख हैं। जिनमें कल्पना की अपेक्षा वास्तविकता है। रोमांस की अपेक्षा दाम्पत्य-प्रेम हैं, राजा और रानी की अपेक्षा होरी किसान और सीलिया चमारिन है। महलों की अपेक्षा झोंपडियों की सिसकियाँ है। वस्तुत: राष्ट्र की जो सेवा बापू ने राजनीति में रहकर की, वही सेवा प्रेमचंदजी ने साहित्य के धरातल पर की। उन्होंने साहित्य के प्लेटफार्म से केवल राष्ट्र की सेवा ही नहीं की वरन् उनकी करुणाललित लेखनी से दीन-दु:खीओं की मर्म-वेदना को भी मुखरित किया। मुंशीजी ने निम्न कोटी के लोगों में मानवता के दर्शन कराये। वे बिगड़ों को सुधारने में विश्वास करते थे। उनके प्रमुख उपन्यासों में ''गोदान'',''गबन'', ''निर्मला'', ''सेवासदन'', ''कर्मभूमि'' और ''प्रेमाश्रम'' आदि है, जिनमें प्रेमचंद की औपन्यासिक विशेषताएँ मोटे तौर पर कुछ इस प्रकार मिलती है-

(१) आदर्शवादिता- आदर्शोन्मुख कलाकार के गुण।

(२) समस्या के साथ समस्या का हल भी।

(३) यथार्थ जीवन का व्यापक धरातल यथा गाँव से लेकर शहर तक, गरीब से लेकर अमीर तक, किसान और जमींदार तक, वकिल से लेकर प्रोफेसर तक सभी उनकी लेखनी के विषय बनें हैं।

(४) प्रत्येक पात्र किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्त्व अवश्य करता है।

(५) जन-जीवन के निकट की मुहावरेदार भाषा का प्रयोग ।

(६) मानवसमाज का तटस्थ और निष्पक्ष अंकन ।

(७) प्रगतिशील कलाकार के रूप में मानव धर्म ही उनका सबसे बड़ा धर्म है ।

जहाँ से भूत, वर्तमान और भविष्य का आचलन सहज बनता है । उन्होंने हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में युगांतर पैदा किया, विचार और शैली दोनों रूपों में । ''गोदान'' प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कृति है, जो गद्य-महाकाव्य का स्वरूप निर्धारित करती है । प्रेमचंदजी की परंपरा के उपन्यासकारों में सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ, कौशिक, भगवती प्रसाद बाजपेयी, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, चंडीप्रसाद हृदयेश आदि के नाम विशेष रूप से लिए जाते है ।

प्रेमचंदजी के ही युग में ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा भी चल पड़ी थी, जिसमे जयशंकर प्रसाद, वृंदावनलाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री आदि का समावेश किया जा सकता है ।

'प्रेमचंद' के पश्चात हिन्दी उपन्यास की गति बड़ी तीव्रगामी बनी, जिस पर पाश्चात्य प्रभाव और सामयिक बोध विशेष रूप से उभर कर आया है ।

(३) प्रेमचंदोंत्तर युग :

प्रेमचंदोंत्तर काल में उपन्यास क्षेत्र में नूतन प्रवृतियाँ अंकुरित होने लगीं । ''परख'', ''सुनीता'' और ''चित्रलेखा'' जैसी कृतियाँ प्रेमचंद परंपरा से नितांत नवीन दिशा का संकेत करने वाली कृतियाँ हैं । प्रेमचंदोंत्तर युग में यह प्रवृतियाँ प्रबल होती गई और इधर तीन दशकों की अवधी में निर्मित उपन्यासों में वर्ण्य विषय, कथा-शिल्प, चरित्रांकन, जीवनानुभूति आदि की दृष्टी से अभूतपूर्व विविधता आयी । इस युग के प्रत्येक उपन्यासकार की प्रेरणा, प्रवृति और कलासाधना पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से भिन्न थी ।

महात्मा गाँधी के रामराज्य की कल्पना मात्र कल्पना ही रह गयी। राजनीतिक दल स्वार्थ, षड्यंत्र के केन्द्र बनने लगे। इस स्थिति पर कुछ विध्वानों ने टिप्पणी करते हुए कहा है- ''भारत का राजनीतिक परिवेश विघटन और पतन की ओर तेजी से चलता गया। आपात काल के बाद की उथल-पुथल में किरण का एक कण जगा भी पर थोड़े ही दिन बाद देश ने तथाकथित कर्णधारों का नंगा नाच देखा। एक-एक करके सबके मुखौंटों को समय ने खोल दिया और उसके बाद मात्र आदमी को मालूम हुआ कि यहाँ तो भूखे भेड़ियों और बाघों का ही जमघट था।''[५]

इस युग के उपन्यासों को निम्न लिखित विभागों में बाँट सकते है।-

(१) व्यक्तिवादी उपन्यास- इस वर्ग के उपन्यासों मे घटना की अपेक्षा चरित्र की प्रधानता रहती है। जैनेन्द्रकुमार, अश्क और भगवतीचरण कहे जा सकतें हैं।

(२) मनोवैज्ञानिक उपन्यास- यों तो प्राय: आधुनिक युग के सभी उपन्यासों में यथोचित मनोवैज्ञानिकता के दर्शन होते ही हैं, फिर भी इस वर्ग का प्रतिनिधित्त्व करनेवाले कुछ विशिष्ट उपन्यास भी है। अज्ञेय का ''शेखर एक जीवनी'' और ''नदी के द्वीप'' तथा इलाचंद्र जोशी का ''सन्यासी'' इसी परंपरा के उपन्यास कहे जा सकते हैं।

(३) सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास- यह वह परंपरा थी, जो प्रेमचंद से विकसित होकर मोहन राकेश और नरेश महेता तक पहुँची है। धर्मवीर भारती का ''सूरज का सातवाँ घोडा'' और मोहन राकेश का ''अंधेरे बन्द कमरे'' इस धारा के विशिष्ट उपन्यास कहे जा सकते हैं।

(४) ऐतिहासिक एवम् पौराणिक उपन्यास- प्रसाद की ''इरावती'' से लेकर परंपरा हजारी प्रसाद के ''अनामदास के पोथा'' तक पहुँची है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री, सांकृत्यायन आदि इसी परंपरा के उपन्यासकार हैं।

(५) आंचलिक उपान्यास- फणीश्वरनाथ 'रेणु' के '' मेला आंचल'' से शुरु होकर आंचलिक उपन्यासों की यह परंपरा अधुनातन कथा-साहित्य में उत्पन्न लोकप्रिय और विशाल फलक पर अवतीर्ण हुई है। नागार्जुन का ''बाबा बटेसरनाथ'', रांगेयराघव का ''कब तक पुकारुँ'', उदय शंकर का ''सागर'', डॉ. रामदरश मिश्र का ''पानी के प्राचीर'' और ''जल टूटता हुआ'' आदि कुछ ऐसे उपन्यास हैं जिन्होंने हिन्दी कथा-साहित्य के क्षेत्र में विषय और शिल्प के नये आयाम प्रस्तुत किए।

उपयुक्त अध्ययन के परिणाम स्वरूप हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रेमचंदोंत्तर हिन्दी उपन्यासों की विविधयामी धारा है। इसमें कलागत उपलब्धि के बावजूद बहुत कुछ फैशनपरस्ती और सस्तापन भी आया है। इसका कारण आधुनिक उपन्यास का व्यवसाय की वास्तविक धरती पर उतरना ही है। व्यवसाय के चक्र में बहुत कुछ ऐसा होना संभव है। फिर भी, प्रेमचंद की धारा को विकसित करने में प्रेमचंदोंत्तर युग का बहुत बड़ा योगदान है।

२.२ भारतीय समाज में नारी का स्थान और स्थिति

वैदिक काल में भारतीय समाज के आचार-संहिताकार मनु महाराज ने कहा था-

"यत्र नार्यस्तु पूज्यते, रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्र नार्यमस्तु न पूज्यते, सर्वा तत्राफलाः क्रियाः ॥"

कितने बड़े सत्य का उद्‌घाटन किया था उस ऋषि श्रेष्ठ ने ! यह सत्य इस बात को भी प्रकट करता है कि वैदिक काल में भारतीय समाज में नारी का स्थान का प्रतिष्ठापूर्ण स्थान होता था । घर के विभिन्न कार्यो में उसको हस्तक्षेप का अधिकार था। विभिन्न सामाजिक तथा धार्मिक अनुष्ठानों में वह उच्च आसान की अधिकारिणी थी। कोई भी धार्मिक यज्ञ उसकी उपस्थिति के बिना पूर्ण नहीं हो सकता था । ऋषि-मुनि उसे मोक्ष-मार्ग में बाधक नहीं समझते थे अपितु उस अन्नपूर्णा के संग में रहकर अपनी तपस्या का मार्ग प्रशस्त करते थे । स्त्री को अपनी इच्छानुसार वर चुनने की स्वतंत्रता थी । इस काल की महान नारियों में अपाला, गार्गी, अनसुया, अरुंधती, सीता, सावित्री आदि के नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने अपने मेधा-बल, चरित्र-बल और धैर्यशीलता का लोहा मनवा लिया ।

मध्यकाल के साधु-संतों ने उसे मोक्ष मार्ग की बाधा माना। उसकी परछाई मात्र पड़ने से लोग अशुद्ध होने लगे । कबीर ने कहा-

"नारी की झांई परत अंधा होत भुजंग ।
कबिरा तिन कौ कौन गति जे नारी के संग ॥"

नारी की स्थिति का अधः पतन केवल यही तक न रुका वरन् बहरे, अंधे लंगड़े, रोगी, वृद्ध, क्रोधी, धनहीन पति की सेवा करना उसका धर्म बना दिया गया ।

पति–धर्म की यह व्यवस्था इतनी जड़, रुढ़ और हृदयहीन हो गई कि नारी को मृत पति की लाश के साथ जलाया जाने लगा। यदि कोई नारी मृत पति के साथ नहीं जल पाती थी, तो उसे नरकीय जीवन बिताने को बाध्य होना पड़ता था। उसे शिक्षा से भी वंचित कर दिया गया। वह घर की ऊँची दीवारों के भीतर कैद हो गई, उनसे बाहर यदि कभी निकलती थी तो भी अंग प्रत्यंग को इस प्रकार ढककर कि सूर्य की किरणें भी स्पर्श न कर सके– असूर्यपश्या। उसे जीवन की प्रत्येक अवस्था में किसी–न–किसी का आश्रित बना दिया गया। यथा–

"पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रश्च स्थविरे भारे, न स्त्री स्वातंत्रयमर्हति॥"

आधुनिक युग नारी–जागरण का युग है। इस युग में नारी अपने खोये हुए अधिकारों को प्राप्त करने के लिए उठ खड़ी हुई। अनेक समाज सुधारकों ने स्त्री की दशा में सुधार करने के लिए अथक परिश्रम किया जिनमें राजा राममोहन राय स्वामी दयानन्द तथा ईश्वरचंद्र विद्यासागर के नाम उल्लेखनीय हैं। राजा राममोहन राय के प्रयासों से अंग्रेजी शासन ने सती प्रथा पर रोक लगाई, स्वामी दयानन्द ने स्त्री–शिक्षा को आवश्यक बताया तथा स्त्री–शिक्षा का प्रचार–प्रसार किया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा–विवाह का जोरदार प्रचार किया, उन्होंने स्त्री–शिक्षा का भी घर–घर जाकर प्रचार किया।

आधुनिक युग में नारी को अपने सम्मान की पुनः प्राप्ति हुई है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसकी सभी समस्याओं का निवारण हो गया। आज उसके सामने अनेक नवीन समस्याएँ हैं। इन समस्याओं में अशिक्षा, असुरक्षा आर्थिक कठिनाइयाँ, दहेज–प्रथा तथा पुरुष हीन भावना प्रमुख हैं। अपनी संस्कारगत विशेषताओं के कारण वे पुरुषों में अत्याचार को सहते हुए भी उसके साथ बंधी

रहती है। आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने की बात भी उसके लिए अभी तक एक सुखद स्वप्न भर ही है। इस युग में भी वे पिता की संपत्ति में भाईओं की भाँति अधिकार की माँग नहीं सकती। उनका सामाजिक परिवेश, लोकापवाद का भय तथा संस्कार उन्हें ऐसा करने की अनुमति नहीं देते। हमारे समाज में दहेज-प्रथा विकराल रूप धारण कर चुकी है किन्तु स्त्रियों की ओर से इसका वैसा प्रबल विरोध नहीं हुआ है, जैसा कि होना चाहिए था। दिन-प्रति दिन दहेज की बलिवेदी पर स्त्रियाँ अपने प्राणों का मूक बलिदान करती रहती है। दुर्भाग्यवश दहेज हत्याओं के पीछे भी सास रूपी स्त्री का ही हाथ अधिक रहता है। स्त्रियों की समस्याओं का समाधान तभी संभव है जब उनमें साहस हो उन्हें उचित शिक्षा दी जाए तथा उन्हें अपने अधिकारों और कर्तव्यों का सम्यक् ज्ञान हो। स्त्रियों के लिए शिक्षा अत्यंत आवश्यक है। एक स्त्री के शिक्षित होने से पूरा परिवार शिक्षित होता है जबकि एक पुरुष की शिक्षा का अर्थ है केवल एक व्यक्ति को शिक्षा देना।

२.२.१. प्राचीनयुग

वैदिक साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि उस युग में नारी की बड़ी ही संमानित थी। आर्यो के सबसे पूराने ग्रंथ 'ऋग्वेद' में ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे उस युग के समाज में स्त्रीयों की उन्नत स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। वेद और शास्त्रों के अध्ययन के साथ ही वे ऋचाओं की रचना भी करती थीं। वेदों में अनेक जगह लोपमुद्रा, रोमसा, धोषा, सूर्या, अपाला, विलोमी सावित्री, यमी, विश्वंभरा, श्रद्धा, कामायनी, देवयानी, आदि नाम मिलते है, जिन्हें विद्धता के आधार पर ऋषिका और ब्राह्मणी कहा गया है। पुरुषों के समान ही उनका भी 'उपनयन' संस्कार होता है। १७-१८ वर्ष की आयु से पूर्व विवाह नहीं होते थे। गुरुओं के आश्रम में रहकर, ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई उच्चशिक्षा

प्राप्त का उन्हें अधिकार प्राप्त था। जीवन साथी चुनने की उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता थी। युवती को इच्छानुसार ज्ञान की प्राप्ति के लिए आजन्म कुमारी रहने की अनुमति थी। बाल-विवाह की प्रथा भी थी पर विधवाओं के पुनर्विवाह पर विधवाओं के पुनर्विवाह पर प्रतिबंध नहीं था। विवाह का उद्देश्य पत्नी के साथ मिलकर गृहस्थधर्म का पालन, धर्मानुष्ठान, यज्ञ-सम्पादन तथा श्रेष्ठ संतान की प्राप्ति था। स्त्री के बिना कोई धार्मिक कृत्य, अनुष्ठान सम्पन्न नहीं हो सकता था। कन्या का पिता उपयुक्त वर खोजकर सप्तपदी विधि से उसका विवाह संस्कार कराता था। इस अवसर पर दामाद को पिता की ओर से कुछ वस्तुएँ उपहास रूप में दी जाती थी। आजीवन कुमारी रहने की इच्छा रखने पर पुत्री को पिता की संपत्ति में उतराधीकार दिया जाता था। वे वेदअध्ययन के साथ अध्यापन भी करती थी। पुरुषों की तरह शस्त्रविद्या सिखकर युद्धों में भाग लेती थी।

आज हमारे घरों में भी पत्नी, बहन, माता इन शब्दों के ऊपर 'लक्ष्मी' और 'देवी' अधिक श्रद्धा से व्यक्त किया जाता है। धन की देवी लक्ष्मी, ज्ञान की देवी सरस्वती और शक्ति की देवी दूर्गा। अर्थात प्राचीन भारतीय नारी इन सब शक्तियों की अधिकारिणी थी तभी देवी के रूप में पूजी जाती थी। ऋग्वेद में सरस्वती को 'वाक्शक्ति कहा गया है जो उस समय की नारी की वकृत्वकला और विद्यता की परिचायक है। लक्ष्मी और दूर्गा के रूप में अर्थसत्ता और शक्ति की भी वह स्वामिनी थी और 'अर्द्धनारीश्वर' की कल्पना तो उसके समानाधिकार की भी पुष्ठि करती है।

द्रविडों की हार के साथ युद्ध-क्षेत्र में पकड़ी जाने वाली वीर लड़ाकू द्राविड नारियाँ जब आर्य-परिवार में दासियों के रूप में शामिल हुई तो इनमें से योग्य, गुणी, बहादुर स्त्रियों ने आर्यो के दिल जीत लिए, यही से आर्यो में बहु

विवाह प्रथा का प्रचलन हुआ, दासी प्रथा भी सामने आयी यही से वेदकालीन सभ्यता का द्वितीय चरण आरंभ होता है। इस काल में भी ऊँची जाति में पुरुषों के समान ही स्त्रियों का 'उपनयन' संस्कार होता था। आध्यात्मिक ज्ञान और दर्शनशास्त्र की शिक्षा उनके लिए अनिवार्य थी। परंतु यहाँ शिक्षा का स्थान गुरुकुल न होकर परिवार या समाज तक ही सीमित था। शिक्षीत स्त्रियाँ की केवल धार्मिक कार्य करने योग्य समझीं जाती थीं। धर्म तथा समाज के क्षेत्र में दर्शन आध्यात्म की चर्चा में इतना ही नहीं उच्चस्तरीय विवादों में भी स्त्रियाँ सहभागी होती थी। उददालिका, अंतर्भागा, विदग्धा, गार्गी, अश्वस्ता, मैत्रेयी आदि विदुषियों का उल्लेख उपनिषद काल में मिलता है। सामान्य स्त्रियाँ खेती का काम देखने कपड़े बुनने, तीर कमान बनाने आदि कामों के साथ घर-गृहस्थी की देखभाल करती थी। धीरे-धीरे वर्णव्यवस्था के कारण, बहुपत्नी प्रथा के कारण स्त्रियों की स्थिति में ह्रास होने लगा अर्थात उत्तर वैदिक काल से ही भारतीय नारी की स्थिति में गिरावट प्रारंभ हो गयी।

२.२.२ मध्ययुग

मध्यगुग में विशेष रूप से भारत पर मुसलमानों के आक्रमणों और मुगलों के राज्य के बाद भारत में स्त्रियों की स्थिति में और गिरावट आई। चौदहवीं पंद्रहवीं शताब्दियों में हिन्दु-मुसलमानों में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदान-प्रदान हुआ। जाति-पाति के बंधन कठोर होने से स्त्रियों को सामाजिक बंधनों में जकड़ दिया गया। विलासी मुस्लिम अधिकारियों की लोलुप रसिकता से रक्षा पाने के लिए हिन्दू समाज में पर्दे का तथा बालविवाह का प्रचलन हुआ। लड़कियों की शिक्षा एकदम समाप्त हो गई। सती प्रथा चरम सीमा तक पहुँच गई। विधवा विवाह नीची जातियों के अतिरिक्त सभी मध्य व ऊँचे वर्गो में बुरा

माना जाने लगा। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ ही केवल नौकरी करती थी। स्त्रियों के समस्त अधिकार छीन लिए गये उनकी स्वतंत्रता नाममात्र को रह गई। शासक वर्ग लूटे हुए अपार धन से ऐश्वर्य और विलास में उन्मत्त था। परिणामतः समाज भी पतनोन्मुख हो गया। नारी को केवल मनोरंजन और विलासिता की सामग्री मात्र समझा गया। सामंतीय युग की दृष्टि का प्रसार स्त्री के शारीरिक लावण्य एवम् कोमलता तक ही सीमित रहा, उसकी अनुपम शक्ति संपन्न अंतरात्मा तक वह नहीं गयी। नारी के अनेक रूपों- गृहिणी, जननी, देवी, भगिनी आदि को भूलकर समाज नारी शरीर के सौंदर्य सरोवर में, सतह पर ही गोते खाता रह गया। विदेशी आक्रमणों के कारण हमारी सारी प्राचीन व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। मध्यकालीन सीमाओं में बंधी नारी पर अशिक्षा, बालविवाह, पर्दाप्रथा, सतीप्रथा जैसे बंधन उत्तर व मध्य भारत में विदेशी आक्रमण के बाद स्त्री सुरक्षा की दृष्टि से ही लगाए गये थे। शासन के क्षेत्र में रजिया बेगम, चांद बीबी, ताराबाई, अहिल्याबाई होलकर के नाम भी इसी बीच चमके हैं। पर जहाँ तक सामान्य नारी का प्रश्न है उसकी स्थिति प्रायः पुरुष की अधीनता की ही रही है।

भारत में ब्रिटिश राज्य के प्रभाव से तथा विदेशी भाषा, शिक्षा का माध्यम बनने से भारतीय जीवन पद्धति और राष्ट्रीय चरित्रों में नए परिवर्तन प्रारंभ हुए। शिक्षा तथा औधोगिकता से जो विकास हुआ वह नगरों तक ही सीमित रहा। ग्रामीणों के बीच गरीबी और अज्ञानता का राज्य हो गया। भारतीय समाज एक नये प्रकार के शोषण का शिकार हुआ। पहले से ही शोषित नारी-समाज पर इसका और कुप्रभाव पड़ा। वह पददलित और पीड़ीत हुआ। इसलिए समाज-सुधारकों का ध्यान पिछड़े वर्गो के साथ नारी की ओर भी केन्द्रित हुआ। स्त्रियों की सभी समस्याओं के मूल में अंधविश्वास, निरक्षरता और अज्ञानता ही केन्द्रित

थे । इसलिए राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी दयानंद, रमाबाई, महर्षि कर्वे, महात्मा गांधी जैसे सुधारकों ने बालविवाह पर प्रतिबंध, विधवा पुनर्विवाह की स्वीकृति, स्त्रियों के संपत्ति अधिकार जैसे कानून बनाकर उन्हें सामाजिक न्याय देने का प्रयत्न किया तो दूसरी ओर उन्हें शिक्षित करने के प्रबंध भी किए । परंतु २०वीं शताब्दी के प्रारंभ में स्त्रियों ने स्वयं इस ओर रुचि प्रदर्शित की और महिला संगठनों ने स्वयं इस कार्य को हाय में लिया तभी स्त्रियों की उन्नति का मार्ग विकसित हुआ ।

२.२.३ अर्वाचीन युग

बीसवीं सदी को 'महिला-जागरण का युग' कहा जाता है । भारत में सामाजिक पुनर्जागरण और राजनीतिक चेतना का विकास साथ-साथ हुआ है । इस काल में समाज को गरीबी, अज्ञानता, शोषण, दासता, और अपनी प्राचीन रुढ़ियों से एक साथ संघर्ष करना पड़ा । भारतीय नारी जो सदियों से पुरुष प्रधान समाज की दी हुई व्यवस्थाओं और पतनोन्मुख समाज की स्थितियों में रहने के कारण पिछड़े वर्गो में गिनी जाती थी । इसलिए प्रायः प्रत्येक सुधार आंदोलन का आधार बनीं । भारतीय नारी का यह संघर्ष १६वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही शुरु हो गया था । बंगाल में ब्रह्मसमाज, बंबई में प्रार्थना समाज व उत्तर भारत और पंजाब में आर्य समाज की स्थापना हुई । इन तीनों संस्थाओं ने समाज-सुधार कार्यक्रमों के अन्तर्गत नारी उत्थान को प्रमुख स्थान दिया । कोई समाज अपने गौरवशाली अतीत को भूलकर अज्ञान, अंधविश्वास, रुढिवादिता, अकर्मण्यता के गर्त में डूब जाता है तब समाज की नारियों को ही सर्वाधिक कष्ट झेलने पड़ते हैं । मध्यकालीन पतनोन्मुख भारतीय समाज में पंडितों ने स्त्रियों के लिए निर्धारित आचार-संहिताओं में बाल-विवाह, सती-प्रथा, बहु-पत्नी प्रथा को अच्छी व्यवस्थाएँ माना और

पर्दे को दैहिक पवित्रता या कौमार्य की रक्षा के लिए उचित मानकर स्त्री शिक्षा को पाप की संज्ञा दी क्योंकि तत्कालीन व्यवस्था में स्त्री को कोई महत्त्व नहीं था। अर्थात नारी शोषण का यह इतिहास मध्यकालीन विदेशी आक्रमणों की देन है। भारत में नारी तभी परतंत्र हुई जब हमारा सारा जातीय व सामाजिक संतुलन बिगड़ा। हमारे समाज में जो भी बंधन नारी पर लगे, वे उन नियमों की देन थे, जो भारतीय मनीषियों ने नारी के दमन के लिए नहीं बल्कि उसकी तत्कालीन सुरक्षा के लिए बनाए थे। जिम्मेदारी की भावना उनमें निहित थी। कालान्तर में वे नियम शक्तिशाली पुरुषों के हाथ में असीमित अधिकार केन्द्रित करते चले गए और घरों में बंद अशिक्षित नारी उसे ही अपनी-नियति मान स्वीकारती चली गयी।

भारत का इतिहास बताता है कि प्राचीन काल में स्त्रियों की स्वतंत्रता और गरिमा को पूरी मान्यता दी गई थी। हिन्दू विवाह-पद्धति में पाणिग्रहण संस्कार के समय पति अपनी पत्नी का हाथ पकड़कर कहता है, ''मेरे गृह की साम्राज्ञी बनो।'' कोई भी धार्मिक या सामाजिक अनुष्ठान पत्नी के सहयोग बिना पूर्ण नहीं माना जाता। यज्ञ हो या अनुष्ठान, तीर्थयात्रा व पर्व-स्नान हो अथवा कोई पारिवारिक या सामाजिक उत्सव, अर्धांगिनी पत्नी का साथ रहना अनिवार्य माना गया है। रामायण में अश्वमेघ यज्ञ के समय सीता वनवास में थी तो सीता की सोनेकी मूर्ति बनवाकर यज्ञ हेतु राम की बगल में बिठाई गयी थी। राजनीतिक परिवेश के कारण स्त्रियों की जो पतनावस्था हुई वह बाद में कितने की दशकों तक उसी प्रकार बनी रही। इसे परिवर्तित करने का कार्य स्वामी दयानंद, राजा राममोहन राय, महादेव गोविंद रानडे जैसे सुधारक नेताओं ने किया। अपने सुधार आंदोलनों में नारी शिक्षा को प्रमुख स्थान दिया और महिला कल्याण को अपने कार्यक्रमों का प्रमुख आधार बनाया। समय-समय पर पारित सुधार-कानूनों का प्रभाव भी

स्त्री शिक्षा पर अनुकूल पड़ा। परंतु नारी शिक्षा में उल्लेखनीय प्रगति स्वतंत्र भारत का संविधान लागू होने के बाद ही हुई, जिसमें समान अधिकारों के समान अवसरों की गारंटी दी गई है। श्री नहेरु स्त्री शिक्षा के बड़े समर्थकों में से एक थे। प्रमुख शिक्षा-शास्त्री श्री ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने इस कमी को दूर करने के लिए अथक प्रयत्न किए। महिला शिक्षा की अनेक संस्थाएँ देश में खुल गई। श्रीमती रमाबाई रानडे तथा डॉ. कर्वे द्वारा स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया गया। आर्यसमाज, ब्रह्म-समाज, सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसायटी, भारतीय राष्ट्रिय कांग्रेस के साथ ही भारत में थियोसोफिकल सोसायटी का कार्य करने वाली श्रीमती एनी बेसेंट ने भी नारी जागृति तथा प्रगति को आगे बढ़ाकर देश के राजनीतिक जीवन में महिलाओं का स्थान निर्धारित किया। हजारों महिलाएँ सामूहिक रूप से स्वतंत्रता संग्राम में उत्तरी स्वतंत्र भारत के संविधान-निर्माण में भी महिलाओं ने भाग लिया और अनेक सुधार कानून पारित किए। हिन्दूविवाह अधिनियम, वेश्यावृत्ति-उन्मूलन अधिनियम, महिला तथा बाल संस्था अधिनियम दहेज निषेध अधिनियम और चिकित्सा द्वारा गर्भपात की कानूनी मान्यता जैसे प्रमुख सुधारों से महिलाओं की सामाजिक स्थिति में पर्याप्त अंतर आया है।

व्यक्ति के सर्वांगीण विकास और मन की संस्कारिता के लिए उपयुक्त शिक्षा की आवश्यकता तो होती ही है पर समाज में मानवीय मूल्यों की स्थापना की जिम्मेदारी माँ के नाते स्त्रियों पर ही अधिक होती है। एक संस्कारी माँ ही अपने बच्चों को सही संस्कार दे सकती है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा जानकारी या डीग्री के लिए नहीं, जीवन निर्माण के लिए जरुरी है। इससे व्यक्ति के भीतर के सर्वोत्तम का विकास होता है। स्वतंत्र भारत की नारी शिक्षित हो गई। वैधानिक, प्रशासनिक, राजनैतिक, शैक्षणिक क्षेत्रों में तथा आर्थिक क्षेत्रों में

भी स्वयं में गर्व करने लायक स्थिति, समान अवसर, समान वेतन तथा समान अधिकार के कारण हो गई है। राज्यपाल, राजदूत, प्रशासक, पहूँचने में सफल हुई है । व्यापार, व्यवसाय, विज्ञान, अनुसंधान, आयोग, समितियाँ, कला, साहित्य सभी जगह पुरुषों के साथ चल रही है। परंतु क्या नारी की शिक्षा में संस्कारिता का, अपनी सस्मिता की पहचान का समावेश है ? इस शिक्षा को पाकर स्त्री-पुरुष की निर्देशिक प्रेरणा व सहयोगिनी के रूप में नही तो उसकी प्रतियोगी के रूप में सामने आई। भले ही वैधानिक दृष्टि से नारी का स्थान काफी ऊँचा कर दिया हो, पर क्या आज भी अधिकार संपन्न शिक्षित, योग्य नारी की स्थिति परिवार व समाज में अच्छी है ? अनेक समस्याओं के लिए नारी को जिम्मेदार ठहराया जा रहा है। समाज में जो विकृतियाँ बढ़ रही है, वह नारी के ही अपने दृष्टिकोण तथा आचरण के कारण अधिकारों व दायित्वों का संतुलन बिगड़ गया है। पति अब भी पति है, पर कही दबा, सिकुड़ा, व्यक्तित्वहीन, कही कुंठित, हताशा, तो कही बदले पर उतारु पहले से भी अधिक और अच्छृंखल। प्यार ढोंग का रूप ले रहा है और कर्तव्य औपचारिकता का। आज वैज्ञानिक औद्योगिक प्रगति ने उसका घर का काम हल्का कर दिया है । पर अधिकारों की होड़ ने और जिम्मेदारियों ने उसे पहले से अधिक बोझिल बना दिया है। वह स्वतंत्र है तो घर-बाहर के सभी कार्यो के लिए स्वतंत्र है। वह नौकरी करती है तब भी बच्चों के स्कूल, बैंक, डाकखाने, बाजार सभी जगह उसे ही जाना होता है। पत्नी के स्वतंत्र होते ही पति घर-बाहर की जिम्मेदारी से मुक्त हो गए और कथित स्वतंत्र पत्नी और बंध गयी। सुविधाओं से रहित निम्न मध्यवर्ग की कामकाजी पत्नियाँ इसलिए आज दोहरी नहीं तिहरी जिम्मेदारी की चक्की में बूरी तरह धिस रही है, जिससे उनका शारीरिक व मानसिक स्वास्थय गिर रहा है । कामकाजी रूप में भी आर्थिक दृष्टि से भले ही वह

आत्मनिर्भर व संतुष्ठ हों पर सामाजिक वातावरण को अनुकूल न पाने के कारण कुंठित भी हैं । मानसिक तनावों से धिरी है । घर, बाहर, दफतर सभी जगह शंकाओं, कुदृष्टियों, कुचर्चाओं की शिकार है । केवल नारी के माँ, पत्नी, गृहिणी और कामकाजी रूपों की ये स्थिति है, सामाजिक स्थिति तो इससे भी अलग रूप में हमारे सामने आती है । उसका सामाजिक व्यक्तित्व अब भी संतोषजनक नहीं है ।

२.३ कथा-साहित्य में नारी के विविध रूप

समाज के परिवर्तन से केवल साहित्य और नारी की मनः स्थिति में ही बदलाव नहीं आया अपितु कहानीकारों की नारी संबंधी दृष्टि में बदलाव आया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्यात नये कहानीकारों की दृष्टि के माध्यम से यह बदलाव देखा जा सकता है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद नारी संबंधी दृष्टि में जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ वह यह था कि नारी मात्र नारी है, देवी, श्रद्धा, त्याग की प्रतिमूर्ति नहीं। अगर ऐसा होता तो उसके रूपों में वैविध्य एवम् भिन्नता न होती अपितु उसमें अभिन्नता का समावेश होता अर्थात वह सब जगह देवी होती। जब कि जीवन में सामान्य धरातल पर एसा नहीं होता। जीवन का यथार्थ यह है कि नारी पहले माता है बाद में कुछ और जब कि स्वतंत्रता-पूर्व का सामाजिक यथार्थ, जो कि कहानी के माध्यम से व्यक्त हुआ, वह बतलाता है कि नारी पहले कुछ और है- वह माता और सती धर्म के नियमों का पालन करने वाली आदि- और बाद में माता। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात का कहानीकार नारी को नारी के रूप में स्वीकार करता है और उसे स्वतंत्र व्यक्तित्त्व और इकाई के रूप में अभिव्यक्ति देता है।

नारी के पूर्ण स्वाधीन न होने के पीछे कारण उसका त्रिकोणात्मक स्वरूप है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्यात नारी के व्यक्तित्त्व ने त्रिकोण में अपनी भूमिका निभायी। एक ओर उसके समक्ष घर की जिम्मेदारियाँ आयीं, दूसरी ओर बाह्य परिवेश से उत्पन्न नवीन स्थितियाँ और तीसरी ओर वैयक्तिक चेतना के परिणाम स्वरूप अस्मिता की तलाश की समस्या उठी इस से नारी का व्यक्तित्त्व घर समाज और स्वयं-तीनों धरातलों पर जुड़ा। दूसरी तरफ हमारा पारिवारिक ढांचा भी पूरी तरह नहीं बदला है। इसलिए परिवारिक समस्याओं से भी उसे जुझना

पड़ता है। साथ ही सामाजिक-आर्थिक समस्याओं से भी। अतः यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक और वैयक्तिक कारणों के परिणाम स्वरूप नारी का स्वरूप बदला है। उसे एक ओर भारत के प्राचीन संस्कारों एवम् मानसिकता से जुझना पड़ा है और दूसरी ओर नवीन परिस्थितियों से। अतः इस प्रकार नारी में रूपों का एक त्रिकोण उभर कर आता है। जिस में एक ओर भारतीय परंपरा है, दूसरी ओर नवीन व्यवस्था और तीसरी ओर वह स्वयं जिसमें वैयक्तिक चेतना ने जन्म ले लिया है।

साहित्य में प्रमुखतया उन्हीं संबंधों की अभिव्यक्ति होती हैं जिनका नर-नारी दोनों को आवश्यक रूप से निर्वाह करना पड़ता है। परिवार में नारी का कन्या, पत्नी, माँ, बहन रूप से स्वतः संबंध जुड़ जाता है क्योंकि उसके व्यक्तित्त्व के विकास से इनका गहरा संबंध है।

२.३.१ माता

नारी का महत्त्वपूर्ण रूप माता है। नारी में ममता या वात्सल्य की भावना सहज, स्वाभाविक और प्राकृतिक है। वह ममता की भावना से अलग नहीं हो सकती।

नारी के जननी रूप का समय और परिस्थिति से अधिक संबंध न होकर स्वयं अपने रक्त से संबंध है। साहित्य में माता रूप विभिन्नता के साथ उभरा है। माँ का वात्सल्यमय रूप, विवश तथा उपेक्षित माँ, प्राचीन मूल्यों के प्रति संघर्षरत माँ यौन संबंधों की स्वच्छन्दता के कारण ममत्त्व के अभाव वाली नारी।

माँ के वात्सल्य रूप को लेकर कई कहानियों को लिया जा सकता है उदाहरण के लिए मन्नू मण्डारी की ''संख्या के पार'' मोहन राकेश की ''आर्दा''

उषा प्रियंवदा की ''पैरम्बुलेटर'' शैलेष भटियानी की ''माता'' आदि ।

जब नारी कि अपेक्षायें पूरी नहीं होती तब उसकी भावनाओं को चोट पहुँचती हैं । उदाहरण के लिए मन्नू मण्डारी की ''मजबूरी'', भीष्म साहनी की ''चीफ की दावत'', दुधनाथसिंह की ''रक्तपात'', रविन्द्र कालिया की ''त्रास'' निरुपमा सोबती की ''खामोसी को पीते हुए'' आदि ।

नारी का किसी पर-पुरुष से संबंध है । इसलिए वह अपने बच्चों के प्रति पूर्ण रूप से जिम्मेदारियों को नहीं निभा पायी । जिसमें उसके ममत्त्व भाव का अभाव झलकता है । उसके मन में ममता का भाव कम, स्वच्छ होकर जीने की लालसा अधिक है । कमलेश्वर की ''तलाश'', निर्मल वर्मा की ''अंधेरे'' में गंगाप्रसाद विमल की ''दूसरे का भोग'' जैसी कहानियों में नारी के इस तरह के रूपों का चित्रण हुआ हैं ।

नारी माँ के वात्सल्य रूप में ही अधिक चित्रित हुई है । नारी को पुत्र के आगे विवश भी होना पड़ा है । प्राचीन मूल्यों की रक्षा भी करती है । यौन संबंधों एवम् आर्थिक स्वावलम्बन के कारण बच्चें के प्रति ममत्त्व के भाव में मात्रा का अन्तर भी आया है । यह स्थिति समसामयिक परिस्थितियों की उपज हैं ।

मोहन राकेश की कहानी ''आर्दा'' में माँ अपने बेटों के साथ रहती है । उसके दोनों बेटें अलग-अलग रहते हैं । एक विवाहित है और दूसरा अविवाहित हैं । वह दोनों को प्यार करती है । जब वह अपने अविवाहित बेटे बचन के साथ होती है तब उसे अपने दूसरे बेटे की याद सताती है । वह अपने बेटे की आदतों व्यवहारों, रुचियों से दु:खी है फिर भी वह इसलिए साथ रहती है कि वह अकेला कैसे रहेगा ? जब अपने विवाहित बेटे की बीमारी की सूचना मिलती है तब वह उसे छोड़कर वहाँ चली जाती है । वहाँ कुछ दिन रहती है । वहाँ वह बेटे और बहुँ

की व्यस्तता को देखती है। वहाँ वह सब सुविधाएँ देते हैं पर प्यार नहीं दे पाते। उसे बिशन की याद आती है। वह उसके पास आ जाती है। ममता उसे दोनों तरफ खींचती है और वह अपने क्षितीज को देख नहीं पाती इसलिए कुछ देर खड़ी होकर वह सुनहरे रंग को देखती है। ''क्षितीज के एक कोने से दूसरे कोने तक झिलमिलाती नयी धुप धीरे-धीरे निखार पर आती रही थी। लगता था जैसे बंध उजाला फूटकर बाहर आने को संघर्ष कर रहा था।''[६] यह भाव तब उत्पन्न होता है जब वह अपने विवाहित बेटे को छोड़ बिशन के पास जा रही होती है। वह चाहती है कि जितना प्यार वह बेटों को करती है वे भी उसे उतना ही करे किन्तु व्यस्तता के कारण वे अधिक ध्यान नहीं दे पाते। वह अंदर ही अंदर महसूस करती है कि उसे अपना फर्ज तो निभाना ही है। बेटे माँ की ममता को समझें या न समझे किन्तु वह अपनी ममता नहीं छोड़ पाती।

उषा प्रियंवदा की कहानी ''पैरम्बुलेटर'' में वात्सल्य भाव की प्रक्रिया का चित्रण किया है। नारी जब पत्नी बनती है तब उसकी कल्पना, इच्छा, स्वप्न भावनाएँ पुरुष से संबंध होती है। यह उसके व्यक्तित्त्व का प्राथमिक पहलू है। दूसरा पहलू तब आरंभ होता है जब वह माँ बनती है या माँ बनने की प्रक्रिया में होती है। ऐसी स्थिति में नारी की कल्पना बच्चें एवम् उसके भविष्य पर केन्द्रित होती है और पति के प्रति रुझान कम हो जाता है। नारी के जीवन का यह स्वभाविक विकास है। ''पैरम्बुलेटर'' कहानी में कालिन्दी के इसी रूप को उजागर किया गया है। वह बच्चे के आगमन से पूर्व ही बच्चे के लिए सामान जुटाना आरंभ कर देती है।

उसे अपने से ज्यादा आनेवाले बच्चे की ज्यादा चिंता रहती है। वह कानों की बालियाँ न खरीदकर एक पैरम्बुलेटर खरीदती है। ''पैरम्बुलेटर खरीदने पर

उसके मन में आगे की कल्पना जन्म लेती है, इसलिए गाडी का हैण्डिल पकडे कालिन्दी सोच रही थी, अब मैं उसके नाप की गुड्डियाँ सीऊँगी, छोट-छोटे तकीयों पर रंग-बिरंगी फूल बिछाऊँगी।''[७] दुर्भाग्यवश कालिन्दी की लड़की मरी हुई पैदा होती है और वह उस सदमें को सह नहीं पाती। उसके सारे सपनें टुट जाते हैं। वह उदास रहने लगती है। उसके सामने पैरम्बुलेटर से जुडे सारे सपने कौंधते है। धीरे-धीरे समय गुजरता रहता है। कालिन्दी की ननद का बच्चा पैरम्बुलेटर में खेलता है, बैठता है। वह बार-बार सोचती है कि अगर मेरा बच्चा जीवित होता तो वह भी पैरम्बुलेटर में खेलता। इस तरह सात साल बीत जाते हैं। कालिन्दी शहर से आकर गाँव में रहने लगती है। उसके पति की नौकरी छूट जाती है। ''पैरम्बुलेटर को बेचने की बात बार-बार उठती है, किन्तु वह चिल्लाकर कह देती है नहीं नहीं, में गाडी नहीं बेचुँगी।''[८] आठवे साल वह पूनः शिशु को जन्म देती है।

''जब माँ ने उसके पास नवजात शिशु को कालिन्दी के पास लेटाया तो कालिन्दी सब कुछ भुल गई, सारी पीड़ा, सारी चिंतायें दिल के उपर जमी हुई गहरी काली काई, उसके एक कोमल स्पर्श से न जाने कहाँ तिरोहित हो गई।''[९] इस तरह बच्चे को पाने से उसे राहत मिलती है। वह बच्चे को शहर ले जाती है। वहाँ जाकर बच्चे की तबियत खराब हो जाती है। दवाई के लिये पैसे नहीं होते। वह सामने पडे पैरम्बुलेटर की और संकेत करते हुये अपने पति से बेचने के लिये कहती है। बच्चे की जान पैरम्बुलेटर से ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो उठती है। पहले पैरम्बुलेटर से इसलिए प्यार था क्योंकि उसके साथ बच्चे की स्मृतियाँ जुडी थी, किन्तु अब तो बच्चा था जो उसे पैरम्बुलेटर से अधिक प्रिय था।

शैलेष भटियानी की ''माता'' में भगवती माता-पिता के परित्याग करने

पर सन्यासिनी का वेष धारण करके अपना जीवन व्यतित करती है, ममत्त्व भाव से वंचीत रह जाती है। ''भगवती को ममतामयी जीवन जीने के लिए मोहमाया बार-बार प्रेरित करती है। वह शिवभक्त है, इसलिए वह शिवलींग की उपासक बन जाती है। वह शिवभक्ति में लीन हो जाती है और सन्यासी भगवती माता बन जाती है । अब तो भगवती माता यही सोचने लगी थी कि आखिर शिवलींग और मेरे चित्त में कोई विशेष अंतर नहीं रह गया है।''[१०] किन्तु कुछ सालों बाद उसका मन उगमगाने लगता है। ओढा हुआ जीवन घुटने लगता है। वह अपने मन को बाँधने की कोशिश करती है। वह घर-घर जाकर भिक्षा माँगने का काम करती है। उसकी सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि वह काफी सालों के बाद अपने मायके की घरती पर भिक्षा मागने पहुँच जाती है। जिसके पीछे उसकी लालसा, अपनी घरती देखने की भी होती है। वह गोपीका पंतानी के यहाँ भिक्षा माँगने जाती है। ''गोपीका पंतानी बच्चे को दुध पिला रही होती है, वह कहती है, भाई लाभो, थोडी देर में विलमा दूंगी, बालक को दिया।''[११] बच्चे को देकर गोपीका पंतानी अंदर चली जाती है। बच्चे को देखकर भगवती माता के मुँह से निकल पड़ा था और भभूत की परतों से ढापी हुई आत्मसंताप से कसमसा उठी थी कि ''हे प्रभो संन्यासीनी को बाल-गोपालो से बचना चाहिए, ममता से मोह उपजता है।''[१२]

लेकिन बच्चे को लेते ही जैसे ही गीले गुड की भेली से चिपकी हुई शहद की मक्खी का डंक कभी-कभी गुड से चिपक कर टूट जाता है, ठीक वैसे ही छौना छाती से चिपक गया, तो जैसे उसके पतले-पतले अधर भगवती माता के अधर से चिपके रह गये थे। ''दूध की बान ढला हुआ बालक ठहरा। कब गेरुआ कुरती उडाकर छाती से दुध पीने के लिये होंठ और जीभ की संगति से उसे

मिठियाता चपाचप पीता चला गया, भगवती माता को इस बात की सुध ही नहीं रही।''[१३] भगवती माता अपनी ममता पर काबु नहीं पा पाती। इसलिए कुछ समय बाद सन्यासिनी का रूप त्याग कर दूसरी शादी कर लेती है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पत्नी के बाद सही अर्थो में नारी का वात्सल्यमयी रूप ही उभरता है, जिसके अभाव में उसका जीवन कष्टकर हो जाता है।

नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी का सदेव संघर्ष चलता है। पुराने मूल्य बदलतें हैं, नये मूल्यों का निर्माण होता है। नयी पीढ़ी प्राचीन मूल्यों का विरोध करती है, और पुरानी पीढ़ी उन्हीं मूल्यों की मर्यादाओं को स्थापित करने की कोशशि करती है। माता-पिता का पुत्र-पत्नी या बहू की इच्छाओं के बीच बाधा बनना इसी रूप को उभारता है। जब पुत्र या पुत्री दोनों में से कोई भी उस लीक से हटना नहीं चाहते तब माता-पिता दोनों ही नयी पीढ़ी से जुझते है। भीष्म सहानी की ''चीफ की दावत'' में माँ-बेटे के संघर्ष का धरातल यही है। बेटा अच्छे पद पर कार्य करता है। वह आधुनिक विचारों का है। उसके घर में साहब को आना है। वह अपनी माँ को पुराने विचारों की समझता है। इसलिए चाहता है की माँ साहब को दिखाई न दे। वह माँ से कहता है :

''माँ, आज तुम खाना जल्दी खा लेना। मेहमान लोग साडे सात बजे आ जायेंगें।''

माँ ने धीरे-से मुँह पर से दूपट्टा हटाया और बेटे को देखते हुए कहा- आज मुझे खाना नहीं खाना है बेटा, तुम जानते तो हो, मांस-मछली बने, मैं तो कुछ नहीं खाती। जैसे भी हो, अपने काम से जल्दी निपट लेना। अच्छा बेटा। और माँ, हम लोग बैठक में होंगे। उतनी देर तुम यहाँ-यहाँ बरामदे में बैठना। फिर जब हम

यहाँ आ जायें तो तुम गुसलखाने के रास्ते बैठक में चली जाना। माँ अवाक से बेटे का चेहरा देखने लगी। फिर धीरे-धीरे बोली - अच्छा - और माँ, आज जल्दी सो नहीं जाना। तुम्हारे खराटें की आवाज दूर तक जाती है। माँ, लज्जित-सी आवाज में बोली - ''क्या करुँ, बेटा मेरे बस की बात नहीं है। जब से बीमारी से उठी हूँ नाक से साँस नहीं ले सकती।''[१४] ''बेटे के सचेत करने पर भी जब चीफ आए तब बरामदे में ऐन कोठरी के बाहर माँ अपनी कुर्सी पर ज्यों-की-त्यौं बैठी थी मगर दोनों पांव कुर्सी की सीट पर रखे हुए, और सिर दाये से बाये, और बाये से दाये झूल रहा था और मुँह में से लगातार खराटों की आवाज आ रही थी।''[१५]

माँ अपनी प्राचीन रुढियों, विचारों, लोक-गीतों के कारण चीफ का दिल जीत लेती है। जिससे उसका बेटा डर रहा था वही उसकी ऊची नौकरी का माध्यम बनता है और बेटे की नजर में माँ का मूल्य बढ़ जाता है और माँ प्राचीन मूल्यों से संघर्ष में जीत जाती है। जो संघर्ष मौन स्वीकृत्ति में ही होता है विरोध करके नहीं।

अमरकांत की ''असमर्थ हिलता हाथ'' की लक्ष्मी जहाँ प्राचीन मूल्यों की निमित्त अपनी बेटी का विवाह दूसरी जाती के लड़के से नहीं होने देती वहीं यह भी चाहती है की वह भी आने वाली पीढ़ीयों पर उसी तरह प्रतिबंध लगाये जिस तरह से उस पर लगाये गये थे और उसकी इच्छाओं का दमन किया गया था। अचला शर्मा की ''अजन्मा'' की माँ अपनी बेटी द्वारा किसी और से शादी कर लेने पर दु:खी होती है। वह सारी यातना को प्राचीन मूल्यों की स्थापना के लिये झेलती है। वह उन मूल्यों की मर्यादा के लिए बेटी को अपने लिए मरा हुआ मानकर अपने को सांत्वना देती है और अंत तक प्राचीन मूल्यों से जूझती है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में संघर्ष का यह धरातल उभरा है जिसे माँ के रूप में

चित्रित किया है ।

२.३.२ पत्नी

नारी का पत्नी रूप निष्ठामय है । भारतीय परंपरा में पत्नी का पति के प्रति निष्ठावान रहना पहला धर्म है । जीवन के व्यावहारिक धरातल पर अध्यकांश पत्नियाँ निष्ठावान हैं । उसकी निष्ठा का प्रमाण यहाँ तक मिलता है कि वे पति की कृरता, यातना, आक्रोष व्यवहार एवम् विचार की भिन्नता के बावजूद भी समर्पणशील और अंत तक पति के संबंधों को ही सर्वस्व माना है । हिन्दी कहानी में पत्नी के निष्ठामय रूप का पर्याप्त चित्रण हुआ है । कमलेश्वर की ''राजा-निरबंसिया'' धर्मवीर भारती की ''गुल की बन्नो'', शैलेष भटियानी की ''कठफोडवा'', अमरकांत की ''दो पहर का भोजन'', रविन्द्र कालिया की ''तफरीह'', कृष्ण बलदेव की ''भूत'', काशीनाथसिंह की ''संकट'', मंजुल भगत की ''नालायक बहू'' आदि कहानियों में नारी पत्नी के रूप में निष्ठावान है ।

मंजुल भगत की ''नालायक बहू'' की कामिनी पति की नौकरी छूट जाने पर स्वयं नौकरी करती है । वह एक ओर पति और दूसरी ओर सास के तानों के बीच जीवन जीती है । उसे उसकी सास कोसती है । जब उससे नही सहा जाता तब वह कह देती है ''तुम माँ हो ना इसी से एक बेटे की शेखी न बधार पाने पर दूसरे की बखान जरुर सहती हो । मैं पत्नी हूँ न और पति तो चार होते नहीं इसी से इकलौते पति की कमियों को लेकर भी जीने का प्रयत्न कर रही हूँ ।''[१६] शेष-निर्णय कि पत्नी पति के परित्याग करने पर पति को ही सर्वस्व मानती है । वह पति के परित्याग करने पर पति को ही खोजना चाहती है । वह कहती है : ''व्यक्तित्त्व क्या होता है मुझे क्या पता ? पति होता है यही पता है मुझे, और वह खो गया है । उसे मैं ढूंढ नहीं सकती, यह भी पता है मुझे, वह पति की यातना का

शिकार होने पर विद्रोह नहीं करती अपितु निष्ठावान रहती है ।''[१७]

नारी का परंपरागत एवम् स्वाभाविक ईर्ष्यालु रूप भी हिन्दी कहानी में मिलता है । पति को किसी पर-स्त्री के साथ अनुरक्त देखकर आक्रोश व्यक्त करना या विद्रोह कर उठना या आक्रमक हो जाना नारी के ईर्षालु रूप की स्वाभाविक स्थितियाँ है । इसमें मानसिक द्वन्द्व, तनाव, घूटन, पीड़ा, अलगाव जैसी सभी स्थितियाँ पनप जाती है। इनको नारी चाहते हुये भी जब नहीं दबा पाती तब अपने आप व्यक्त हो जाती है। नारी की ईर्षालु मनः स्थिति को उभारने वाली कहानियाँ है - राजेन्द यादव की ''पुराने नाल पर फ्लेट'', ''तनाव'', दुधनाथसिंह की ''रीछ'', काशीनाथसिंह की ''कस्बा'', ''जंगल और साहब की पत्नी'' ममता कालिया की ''अपत्नी'', महेरु निसा परवेज की ''अपने-अपने दायरे'' सोमावीरा की ''नौका दौड'', आदि। इनमें नारी के पत्नी रूप में ईर्षा भाव की विभिन्न मनः स्थितियों एवम् पीड़ाओं को चित्रित किया गया है। इनमें ''पुराने नाले पर नया फ्लेट'' और ''रीछ'' कहानी को उदाहरण रूप में देखा जा सकता है।

राजेन्द्र यादव की ''पुराने नाले पर नया फ्लेट'' की नीरु अपने पति से इसिलिये ईर्षा करती है, क्योंकि उनका संबंध अपनी पूर्व प्रेमिका से रहता है। वह पति को बार-बार समझाती है। अपना रोष भी व्यक्त करती है, रोती-बिखलाती भी है किन्तु, उसका पति बार-बार यह कहता है की शादी का मतलब यह नहीं की वह उसके बाद अपने पूर्व के सभी संबंधो को तिलांजली दे दे। वह कभी-कभी मन ही मन और कभी-कभी खुले रूप से पति की पूर्व प्रेमिका दीप्ति से भी ईर्षा करने लगती है। वह दीप्ति को अपनी 'सौत' समझती है। वह अपनी व्यथा को ईर्षा भाव से प्रेरित हो कर अपने प्रिय लेखक के पास लिखती है। वह

पति के संबंध में लेखक को लिखती है- ''अगर उन्हें उसी से प्यार था, तो मुझे लाने की जरुरत ही क्या थी ? माँ-बाप से मना नहीं कर सकते थे ?''[१८] वह अपने पति को साफ कह देती है- ''देखो मुझे बनाओ मत ! एसा ही है तो तुम अपनी दीप्ति को यहाँ लेआओं। जहाँ मेरा मन हो, मुझे जाने दो ! कम से कम इस सबसे पीछा छुटेगा कि तुम मुझे धोखा दो, अपने को धोखा दो, और फिर उसे झूठ-मूठ लिखा।''[१९] जब वह पति को समझाने में असमर्थ हो जाती है तब वह मन-ही-मन सोचती है 'मेरी जिन्दगी का अर्थ क्या है ? क्यों जीऊँ ? कभी मैं देखती हूँ वह आयी है। ये लोग मुझे छोड़कर सिनेमा देखने चले जाते हैं। मैं यहाँ अकेली पड़ी कुट रही हूँ, रो रही हूँ या देखती हूँ कि- ''ये लोग भीतर के कमरे में हैं, अंदर से किवाड बंद कर लिये जाते हैं, हँसने-खिलने-खिलाने की आवाजें आ रही हैं और बाहर खुरदरी चारपाई पर लेटी मैं या तो पल्ला मूँह में लीये रो रही हूँ या चौके में उनके लिये रोटियाँ सेक रही हूँ ..... टपाटप आँसु गालों से लुढक जाते हैं .....।''[२०] वह अधिक यातना सहन नहीं कर पाती और पति को दोष न देकर स्वयं को दोष देती हुई कहती हैं ''वो मेरा हिस्सा नहीं, मैं ही उसका हिस्सा खा रही हूँ, अपराधिनी वह नहीं, मैं हूँ। ये जो पराया-पराया-सा महसूस करते हैं उसके पीछे मैं हूँ..... अगर 'वह' होती तो सभी कुछ कितना साफ सुथरा होता। तब 'हम लोग' यों एकदम बैगाना और अपरिचीतों की तरह थोडे ही रहते....।''[२१] इस तरह बीरु की ईर्षा आत्मग्लानी का रूप ले लेती है।

दुधनाथसिंह की ''रीछ'' में भी पत्नी-पति के पर-स्त्री से संबंध होने के कारण आक्रमक हो जाती है। वह बीरु की तरह अपने को दोषी नहीं मानती और न ही अपने पति की प्रेमिका से ईर्ष्या करती है, अपितु पति को प्रताडित करती है। उसका पति घर पर प्रेमिका को न लाकर बाहर ही संबंध रखता है। इसलिए

पत्नी को संदेह के लिए प्रमाण की आवश्यक्ता पड़ती है। वह अपने पति से साफ-साफ कह देती है ''अगर मैंने जान लिया की ऐसा कुछ भी तुमने किया था तो मैं तुम्हें दिखा दूँगी, तुम कल्पना भी नहीं कर सकते... हाँ, मैं क्या कर सकती हूँ.... मैं क्षण भर में तुम्हारी यह सारी 'पवित्रता-पवित्रता' की रट तोड़ दूँगी। ''मैं कसी कुहड नाकारा आदमी के साथ.....। तुम जलकर राख हो जाओगें..... वह अंदर की मूर्ति चुर-चुर कर दूँगी....। कुछ नहीं मैं समझ गई तुम्हें क्या पसंद है....। भारी-भारी नितम्व- हुँह। कितने गंदे हो तुम....। पता चलने दो। तुम नहीं बताओंगे तो क्या पता नहीं चलेगा। मैं इतनी कच्ची नहीं हूँ। मैं तुम्हारा चेहरा सूंध कर बता दूँगी। वक्त आने दो।''[२२] जब उसे पता चलता है कि पति के किसी के साथ संबंध है तब वे चीख-चीख कर कहती है- ''छी !..... हाँ-हाँ मेरे तो छोटे-छोटे हैं....। उसके कितने बड़े थे। बीच में जगह थीं की दोनों मील गये थे। इसलिए यहाँ नहीं चुकते दोनों हाथो में क्या एक ही आता था....।''[२३]

इस तरह वह पति को प्रताडित करती है। पति कुछ नहीं मानता तब वह स्थिति को समझने की कोशिश करती है और पति को कहती है- ''तुमने मुझे.... तुमने मेरा..... सब कुछ..... मैं जानती हूँ.....। अब मुझमें क्या आकर्षण होगा। एक ही चीज.... हंमेशा वही.... वही.... लेकीन तुम लोग हंमेशा नयी-नयी चीज के पीछे ही भागते फिरते हो जी.....। स्त्री हंमेशा अधिक नैतिक होती है उसका अपना पुरुष उसे रोज नया लगता है....।''[२४]

वह अपनी स्थिति को समझाते हुए पति से कहती है- ''तुम सोचते होगे मैं कितनी गन्दी हूँ। कितनी ग्लिज बाते मुँह से निकालती हूँ। हर औरत ऐसे ही सोचती है....। अगर उसे मालूम हो जाये तो वह तुम्हें कभी क्षमा नहीं करेगी... मैं जूठन अपने अंदर नहीं ले सकती।..... लेकिन अगर ऐसा है या हुआ तो .....

मैं ..... तो मैं पता नहीं.... ओफ ! .... ! तुमने मुझे कितना छोटा और अपाहिज कर दिया है....।''[२५] इस तरह ईर्षा पून: आत्मग्लानी का रूप ले लेती है।

इस तरह अन्य कहानियों में भी नारी के पत्नी रूप में ईर्षा झलकी है, जो बहुत ही स्वभावीक और परंपरागत है और उनका स्वरूप भी भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु अंत पश्चाताप या आत्मग्लानी के रूप में ही होता है।

बदलती परिस्थितियों में पत्नी का परंपरागत स्वरूप भी बदला है। पत्नी ने जीवन में स्वच्छन्द दृष्टिकोण को अपनाया है, पति की व्यक्तित्त्व के साथ स्पर्धा भी की है और पति की उपेक्षा भी, इस के साथ ही कहीं-कहीं उसकी वृत्ति स्वच्छन्द रूप से भोगवादी भी रही है। मोहन राकेश की ''सेफ्टिपीन'', निर्मल वर्मा की ''डेढ इंच उपर'', उषा प्रियंवदा की ''कितना बड़ा झूठ'', ''ट्रिप'' ''संबंध'', दुधनाथसिंह की ''रक्त पात'', कृष्ण बलदेव वैद की ''त्रिकोण'' शैलेष भटियानी की ''दो सुखों का एक दु:ख'', महिपसिंह की ''झूठ'', मृदुला गर्ग की ''हरी बिन्दी'', सोमावीरा की ''डायना की परछाई'' आदि कहानियों में पत्नी की विभिन्न स्थितियों को देखा जा सकता है।

मोहन राकेश की ''सेफ्टिपीन'' में पत्नी अपना जीवन स्वच्छन्द रूप में जीती है। निर्मल वर्मा की ''डेढ इंच उपर'' में पत्नी राजनीति में भाग लेती है। वह अपनी निजी जिन्दगी के बारे में पति को कुछ नहीं बताती जिस के परिणाम स्वरूप पति को यातना का शिकार होना पड़ता है। पत्नी को फाँसी की सजा हो जाती है। पुलिस उसके पति से पूछताछ करती है, जब कि पति कहता है कि मुझे इसके संबंध में कुछ पता नहीं है और पुलिस उस पर विश्वास नहीं करती और उसे मारती है। उषा प्रियंवदा की ''कितना बडा झूठ'' की किरण अपने पति से झूठ बोलती है और पति की उपेक्षा करती हुई स्वतंत्र रूप से संबंधो का निर्वाह करती

है। ''ट्रीप'' में पत्नी स्वच्छन्द वर्तन करती है। वह अपने पति से साफ-साफ कह देती है कि वह अपने अफेचर अपने आप कण्डक्ट करेगी, दूसरे वह इस आयु में बच्चे की जिम्मेदारी नहीं लेगी। 'संबंध' की श्यामल अपने पति के साथ नि:संग जीवन जीती है। वह पति की जिम्मेदारीयों को नहीं निभाना चाहती और गैर-जिम्मेदारी से जीवन जीती है। वह अपने पति सजन से कहती है- ''क्या हम ऐसे ही नहीं रह सकते, प्रेमी, मित्र, बंधू। क्या यह सब छोड़ना जरुरी हैं ? मैं तो कुछ नहीं माँगती.....।''[२६]

दुधनाथसिंह की ''रक्तपात'' की पत्नी परिवार में पति की अंधी माँ के सामने स्वच्छन्द रूप से भोग करना चाहती है जब कि पति मना कर देता है और वह कहती है कि उसे (माँ को) दिखाता थोडे ही है। वैद की ''त्रिकोण'' की पत्नी पर-पुरुष से संबंध रखती है वह अपने पति के दोस्त से भी शारीरिक संबंध रखती है। वह पर-पुरुषों एवम् पति के दोस्त से संबंध इसलिए नहीं रखती की वह अतृप्त या पति पर उसे विश्वास नहीं है या पति उसे प्यार नहीं करता बल्कि उस की धारणा है 'हर पत्नी कहीं-न-कहीं अपने पति को गहरी चोट पहुँचाने की ख्वाहिश दबोच रहती हैं....।' इसलिए वह सोचती है कि उसका पति उस समय आ जाये जब वह दोस्त के शरीर से बुरी तरह लिपटी हो और वह उन्हें (पति को) देखकर हँस दे इस तरह वह मन-ही-मन अपने पति से स्पर्धा करने के कारण स्वच्छन्द और भोगवादी बनती है।

पत्नी का स्वच्छन्द स्पर्धामय और भोगवादी रूप उपयुक्त उल्लेख की गई अन्य कहानियों में भी मिलता है। हिन्दी साहित्य में नारी के तलाक के बाद जीवन को रेखांकित किया गया है या तलाक लेने के छटपटाहट की। तलाक के बाद की जिन्दगी एवम् अतीत की स्मृतियाँ दोनों पक्षों का संबंध उससे जुड़ जाता है। नारी

के जीवन के इस पक्ष को उद्‌घाटित करने वाली प्रमुख कहानियाँ है : मोहन राकेश की ''एक और जिन्दगी'' राजेन्द्र यादव की ''लौटते हुए'' कमलेश्वर की ''देव की माँ'', ''दु:खो के रास्ते'', उषा प्रियंवदा की 'प्रतिध्वनियाँ', निरूपमा सोबती की ''सुनहरे देवदास'' आदि।

मोहन राकेश की ''एक और जिन्दगी'' की बीना पति से अलग हो बच्चे के साथ रहती है। उन दोनों के मिलन का संबंध सूत्र बच्चा है। पति-पत्नी परस्पर नहीं बोलते और पति केवल बच्चे से मिलता है। वे दोनों अलग-अलग जिन्दगी जीते हैं। बीना कमाती है और बच्चे को पास रखती है। उनके बीच तलाक का कारण बीना का स्वच्छद रूप है। जिसके संबंध में उसका पति तलाक के बाद सोचता है- ''बीना में बहुत अहंकार था, वह उसके बराबर पढ़ी-लिखी थी, उससे ज्यादा कमाती थी। उसे अपनी स्वतंत्रता का बहुत मान था और वह समझती थी कि किसी भी परिस्थिति का वह अकेली रहकर मुकाबला कर सकती है।''[२७] वह तलाक के बाद न तो दूसरा ही विवाह करती है और न पति की स्मृतियों में जीवन जीती है, अपितु परिस्थितियों का हिम्मत के साथ सामना करती है। राजेन्द्र यादव की ''लौटते हुए'' की मृदुला का पति से वैचारिक मतभेद के कारण तलाक हो जाता है। वह स्वयं कमाती है किन्तु वह साथ ही अपनी जिन्दगी के अकेलेपन को भी महसुस करती है। वह सोचती है- ''वही अकेली तपस्या क्यों करें!..... सुनते हैं, उस उम्र में अकेलापन बहुत-बहुत भारी हो जाता है.....कभी-कभी तो मन होता है फिर दोबारा गृहस्थी के झंझट में न पड़े और यों ही कोई सहारा खोज ले.....।''[२८]

कमलेश्वर की ''दु:खों के रास्ते'' की ललिता तलाक के बाद पुन: विवाह करती है। किन्तु वह अपने को न तो पति विरेन्द्र (वर्तमान) को पुरी तरह समर्पित

कर पाती है, और न ही अतीत की स्मृतियों को भुल पाती है। उसका पूर्व प्रेमी सोचता है कि- ''ललिता का संकट यही है कि वह शायद हम दोनों में से किसी को भी संपूर्णत: नहीं चाहती।''[२९] देवी की माँ तलाक के बाद अपने बेटे के साथ रहती है और बेटे के सहारे अपना जीवन जीती है।

उषा प्रियंवदा की ''प्रतिध्वनियाँ'' की बसु अपने पति और बच्चे को छोड़कर बाहर विदेश में पढ़ने जाती है। वहाँ उसका कई पुरुषों से संबंध होता है। ऐसी स्थिति में वह चाहती है कि वह पति को तलाक दे-दे। वह सोचती है कि उसका जीवन दूसरों द्वारा चुना हुआ है। उसका विवाह माँ-बाप की मर्जी से हुआ था। बसु में तलाक लेने की छटपटाहट है। ''सुनहरे देवदास'' की रश्मि अपने पति से तलाक लेने के बाद अपनी बच्ची को लेकर विवाह कर लेती है। कुछ समय बाद जब उसका पति अचानक उसे मिलता है तब उसे अपने घर ले जाती है। उसके साथ धुमती है। जब पति को यह पता चलता है कि उसने दूसरा विवाह कर लिया है तब वह चौंक उठता है। पत्नी के मन में तलाक के बाद न कोई शिकायत और न ही कोई दु:ख। वह पति के चौंकने पर केवल इतना ही कहती है : ''तुम फिर मुझे गलत समज रहे हो। ठीक है हम अलग हुए। मैं अभाव में नहीं जी सकती। लेकिन अब तुम मुझे कमीनी औरत समझ रहे हो ? आखिर मैं तुम्हारी पत्नी रह चुकी हूँ।''[३०] पति वापिस चला जाता है किन्तु उसके बाद भी उसे कोई दु:ख नहीं होता।

नारी को जीवन में जहाँ पारिवारीक समस्याओं से जूझना पड़ता है वहाँ पति के साथ अच्छे संबंध न होने पर यातनाओं का शिकार भी होना पड़ता है। ऐसी स्थिति में जब वे निष्ठावान नहीं रहती तो वे या तो मानसिक आक्रोश व्यक्त करती है, या अंदर ही अंदर घूटती रहती है या विद्रोह कर उठती है। मोहन राकेश

की ''खाली'', कमलेश्वर की ''एक अश्लील कहानी'', मोहन राकेश की ''उसकी रोटी'', ''आखरी सामान'', रविन्द्र कालिया की ''सन्दल और सिन्थाल'', ज्ञानरंजन की ''दाम्पत्य'', ''हास्यरस'', मंजुल भगत की ''नागपाश'' आदि कहानियों में पति की क्रुरता और यातना को देखा जा सकता है। उदाहरण के लिये कमलेश्वर की ''एक अश्लील कहानी'' में पति व्यस्त रहता है और अपनी पत्नी की तरफ अधिक ध्यान नहीं देता। पत्नी घर में सारा दिन अकेली रहती है। वह यौन-संबंधों से असन्तुष्ठ रहने के कारण घर में कभी शीशे के सामने नंगी होकर अपने अंगो को देखती है, कभी घर में घुमती है, कभी अँगडाइयाँ लेती है। पत्नी की इन क्रियाओं को उनका एक पडोसी खिडकी से प्रतिदिन देखता है और उसके प्रति उसके मन में सहानुभूति जगती है। वह कहता कुछ नहीं है। उसे तरह-तरह के कष्ट देता है और उसे नंगी करके घर से बाहर निकाल देता है। वह पति को प्रताडित करके नंगी ही बाहर चली जाती है। मोहन राकेश की ''उसकी रोटी'' में भी पत्नी पति के क्रोधी स्वभाव के कारण कष्टों को झेलती है। ''खाली'' की तीषी पति की व्यस्तताओं के कारण कठिनाइयों को झेलती है क्योंकि इसके साथ ही उसके पति जुगल को उसके मायके के लोंगों से चिढ थी, अपने घर के लोगों से चीढ थी, हर आने-जाने वाले से चीढ थी। कभी-कभी तो लगता था कि उस आदमी को सिवाय अपने हर एक से चीढ़ है, बल्कि अपने आप से भी चीढ है।

''वह सुबह दफतर जाता था, तो दफतर के लोगों से बडबडाता था। जिन्दगी की हर चीज उसकी नजर में किसी वजह से गलत थी।''[३१] ''किन्तु अन्त तक वह केवल अपने मानसिक आक्रोश को ही व्यक्त करके रह जाती है। वह सोचती है जिन्दगी के इस 'लगातार' को अब अपने से झटक देगी।''[३२] किन्तु वह अन्त तक झटक नहीं पाती। मंजुल भगत की ''नागपाश'' कहानी में वह

अपने पति से काफी दु:खी है। उसके पति की आदतें अच्छी नहीं है। वह एक बच्चे की माँ बनने से पूर्व ही बच्चे को गिरवा देती है, क्योंकि वह नहीं चाहती कि उसका भविष्य खराब हो। इस तरह नारी पति की यातनाओं की शिकार होती है।

२.३.३ प्रेयसी

प्यार का चरम उत्कर्ष आस्था और विश्वास में है। जब आस्था और विश्वास की प्रबल अनुभूति होती है, तब मनुष्य सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार हो जाता है। एक निष्ठप्रेम में ही जिन्दगी न्यौछावर संभव हो जाती है। कभी-कभी दूसरे पक्ष के बिछड़ जाने के बाद भी व्यक्ति अपना सारा जीवन व्यतीत कर देता है। इसके मूल में मनुष्य की अपनी आंतरिक विवशता ही निहित रहती है। नर-नारी के जीवन में प्रेम का यह रूप समय और परिस्थितियों की सीमा में नहीं बँधता। नर-नारी के प्रेम का यह रूप पहले भी था, अब भी है और आगे भी रहेगा- इसको समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि यह सामाजिक विवशता नहीं अपितु वैयक्तिक विवशता होती है। यह विवशता मोह और आशक्ति के परिश्रम स्वरूप ही संभव हो पाती है। नर-नारी के बीच आकर्षण शाश्वत है इसलिए यह प्रेम की यह स्थिति किसी में भी पनप सकती है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी के विवाह-पूर्व प्रेम के ऐसे रूप भी है, जिसमें उसने त्याग एवम् बलिदान करके अपनी जिन्दगी अतीत की स्मृतियों में ही व्यतीत की है और वह अपनी जिन्दगी में किसी दूसरे व्यक्ति से नहीं जुड़ पायी है। हिन्दी कहानी में कृष्णा सोबती की ''बादलों के घेरे'', भीष्म साहनी की ''डोरे'', शैलेष भटियानी की ''शीशे के पार उगी हरियाली'' आदि कहानियों मे नारी का रूप उभारा है।

''कृष्णा सोबती की कहानी ''बादलों के घेरे'' की मन्नो अपने प्रेमी रवि

का दूसरी जगह विवाह होने पर भी स्वयं सारी जिन्दगी विवाह नहीं करती। जब उसे पता चलता है कि रवि दूसरी जगह विवाह कर रहा है तब वह उसको अपना र्स्पश भी नहीं करने देती अपितु साफ कह देती है 'रवि' जिसे तुम झेल नहीं सकते उसके लिये हाथ न बढाओ.....।''[३३]

रवि मन्नो से बिछड़ने के समय पूछता है कि अगर कभी दर्शन की ईच्छा हो तो किसी से पूजारी का स्थान पूछुँ ? इसके प्रत्युत्तर में वह कहती है– ''नहीं रवि ऐसा कुछ नहीं। मुझे कौन वरदान माँगने हैं। अपने लिए तो कपाट बन्द हो गये हैं। बस इतना ही चाहती हूँ, यह कपाट उनके लिए खुले रहे, जिनसे बिछड़कर मैं अलग आ पड़ी हूँ....।''[३४] मानों उसे उस प्रेमी की लिए जीना है जिसको उसने चाहा था यानि विवाह से पूर्व का रवि। वह अपनी व्यथा को चुपचाप सहन करती है, रवि से अधिक बात इसलिये नहीं करती ताकि मन का बाँध टूट न जाये। रवी के विवाह हो जाने के बाद वह उससे बहुत कम बोलती है, बाद में जाकर बीमार पड़ जाती है और उसकी मृत्यु हो जाती है। भीष्म साहनी की कहानी ''डोर'' की अर्चना मन्नो से भिन्न है। वह प्रेमी के विवाह के उपरान्त विवाह नहीं करती और नौकरी करके जीवन व्यतीत करती है। वह अपने प्रेमी को विवाह के बाद अपने प्रेम में बाँधे रहती है। उसे अपने पर गर्व है कि वह अपने प्रेमी को विवाह के बाद भी बाँधने में समर्थ है। वह अपने दफतर में काम करने वाली सहेलियों से कहती है ''मर्द को काबू में रखने का ढंग आना चाहीये.....।''[३५] उसे इस बात की कोई चिंता नहीं है कि प्रेमी की अपनी विवाहीत जिन्दगी कैसे बीत रही है। वह जानती है कि जब वह अपने प्रेमी से मिलती है तब उसकी पत्नी घर पर उसका इंतजार कर रही होती है किन्तु वह सोचती है कि जिसके लिये मैनें उम्र भर शादी न करने की ठान ली, उसे कैसे छोड़ दे ? वह प्रेमी से स्पष्ट रूप से कह देती है

कि यह उसकी पत्नी की कमज़ोरी है कि वह अपने पति को बाँधने में असमर्थ है। वह अपने प्रेमी को बाँधने में इतनी समर्थ है, कि उसका प्रेमी उसे बार-बार कहता है कि उसे आज घर जल्दी जाना है क्योंकि उसके बच्चे का जन्मदिन है और वह स्वयं जानती भी है उसके बच्चे का जन्मदिन है और उसे जल्दी जाना है फिर भी वह धीरे-धीरे बातों में अपने घर पर प्रेमी को ले जाती है, वहाँ जाकर उसके साथ प्रेमालाप करती है। अर्चना अपने आफिस में भी दबंग औरत के रूप में मानी जाती है। उसके संबंध में तरह-तरह की चर्चायें चलती है किन्तु वह किसी की परवा नहीं करती। वह अपनी सारी जिन्दगी अतीत की स्मृतियों के सहारे काटती है केवल कुछ क्षण ही प्रेमी के साथ भागीदार होते हैं शेष वह जिन्दगी वह अकेले ही काटतीं है।, शैलेष भटियानी की कहानी ''शीशे के पार उगी हरियाली'' की मिस उपाघ्याय भी अपने प्रेमी से बिछड़ जाने पर उम्र भर विवाह नहीं करती। उसकी जिन्दगी व्यथा में बितती है। वह सोचती हैं कि- ''उसमें तो सिर्फ शीशे ही शीशे हैं और अलग-अलग शीशो में अपनी विवशता के बेशुमार प्रतिबिम्बीत देखते रहने और थकने बाद, माथा टिकाए रो देने के अलावा और कोई शेष स्थिति नहीं है।''[३६] इस प्रकार विवाह-पूर्व नारी प्रेम के लिए एवम् बलिदान करती है।

आज की नारी सामाजिक क्षेत्र में आगे बढ़ रही है। इससे उसका अनेक पुरुषों के साथ संपर्क बढ़ा है। उसे विवाह-पूर्व ही अनेक पुरुषो के संपर्क मे आना पड़ता है। मनुष्य की अपेक्षायें कभी एक जैसी नहीं होतीं और न ही सबसे एक-जैसी अपेक्षायें की जा सकती है। जिन्दगी में एक से प्रेम स्थापित कर लेने के बाद भी कई मोड़ो पर ऐसी स्थितियाँ आ जाती है, जहाँ उसका आकर्षण किसी दूसरे के प्रति बढ़ जाता है और उसमे वह खुबी दिखाई देने लगती

है, जो पहले में नहीं है। नर-नारी दोनों को इस स्थिति का शिकार होना पड़ता हैं और दूसरी ओर वर्तमान स्वतंत्रोयत्तर हिन्दी कहानी में नारी विवाह-पूर्व की इस मनः स्थिति को निम्नलिखित कहानियों में चित्रित किया गया है- निर्मल वर्मा की ''परिन्दे'', मन्नु भण्डारी की ''यही सच है'', ''एक बार और'',उषा प्रियंवदा की ''मछलियाँ'' आदि।

निर्मल वर्मा की कहानी ''परिन्दे'' की लतिका अतीत और वर्तमान के प्रेम के द्वन्द्व का शिकार है। एक ओर उसका अपना अतीत है जिसमें उसने केप्टन गिरीश नेगी के साथ अपनी जिन्दगी के स्वप्न संजोए थे, उसके अतीत का साथी अब नहीं है। जहाँ वह नौकरी करती है वहाँ पर उसे मि. ह्यूबर्ट और डॉक्टर की नजरों का सामना करना पड़ता है। मि. ह्यूबर्ट उसे चाहता है। वह मना कर देती है। किन्तु मन ही मन सोचती है ''ह्यूबर्ट ही क्यों, वह किसी को भी चाह सकेगी उस अनुभूति के संग, जो अब नहीं रही, जो उस पर छाया-सी मंडराती रहती है न स्वयं मिटती है, न उसे मुक्ति दे पाती है।''[३७] वह उन क्षणों को भी नहीं भूल पाती जो उसने गिरीश नेगी के साथ बिताए थे। उसे याद है जब गिरीश ने कहा था, ''लतिका..सुनो..ना मैं कुछ भी नहीं सुन रही। लतिका, मैं कुछ महिनों में वापिस लौट आऊँगा .. ना.. मैं कुछ भी नहीं सुन रही..।''

''किन्तु वह सुन रही है.. वह नही जो गिरीश कह रहा है, किन्तु वह जो नहीं कहा जा रहा है, जो उसके बाद कभी नहीं कहा गया..।''[३८]

लतिका चाहकर भी अतीत को नहीं छोड़ पाती। मि. ह्यूबर्ट के साथ-साथ रहकर लतिका को लगा कि- ''वह जो याद करना चाहती है वहीं भूलना भी चाहती है। लेकिन वह सचमुच भूलने लगती है, तब उसे भय लगता है कि जैसे कोई उसकी चीज को उसके हाथों से छीने लिये जा रहा है, ऐसा कुछ जो सदा के

लिए खो जायेगा..।''[३९] इस तरह लतिका न अतित को छोड़ पाती है और न ही वर्तमान की भागीदार बन पाती है।

''उषा प्रियंवदा की ''मछलियाँ'' कहानी में भी अतित और वर्तमान के प्रेम में प्रबंधात्मक स्थिति को भी उभारा गया है। इसमें दो पुरुषों और दो स्त्रियों के बीच द्वन्द्व को उभारा गया है, जिसमे परस्पर ईर्षाभाव ही निहित है।''[४०] ''मछलियाँ'' की विजी और मुकी दोनों सहेलियाँ हैं। विजी मनिष को चाहती है किन्तु मनिष का उससे विवाह नहीं हो पाता। विजी का अतित मनिष है। वर्तमान समय में नटराजन उसका दोस्त है। मुकी नटराजन को चाहती है और उसके साथ उसकी सगाई हो जाती है। विजी नटराजन को बाहर से दोस्त मानते हुए वह उसे चाहती है। वह नटराजन की मुकी से सगाई होने पर उसे मिलती है। वह मुकी से ईर्षा करने लगती है। वह समय-समय पर नटराजन को ताने देती है। विजी का मुकी से ईर्षाभाव इतना बढ़ जाता है कि विजी की इच्छा अब मुकी की गर्दन पकड़कर मचोड़ने की होती है। मन होता है उसकी कॉफी में जहर डालकर उसे पीला दें, अपार्टमेंट में आग लगा दे। उसका नटराजन के प्रति प्यार इसलिए बढ़ता हैं क्योंकि नटराजन सबकी बातें सुनता है।

२.३.४ बहन

नारी के परंपरागत पारिवारिक रूप स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद बहन का रूप भी चित्रण हुआ है। बहन-भाई का संबंध पवित्र संबंध होता है, जिसमें सेक्स की भावना नहीं होती। रक्त से इतर बहन-भाई के संबंध में अपवित्रता की भावना पैदा हो सकती है, उनमें भी प्यार संभव हो सकता है। यह धारणा स्वतंत्रता-पूर्व मनोविज्ञान के प्रभाव स्वरूप पनप चुकी थी। यह धारणा वहाँ अधिक बदली जहाँ उनके बीच रक्त-संबंध नहीं है, अपितु पारिवारिक संबंधों में बहन-भाई का

संबंध है। आज बहन-भाई के इस तरह के संबंधों का उपयोग नाममात्र और सामाजिक सुरक्षा के लिये भी होने लगा है। समाज आज भी बहन-भाई के संबंध को पवित्र मानता है। रक्त संबंध से इत्तर भी बहन-भाई के संबंध को पवित्र मान लिया जाता है जबकि रक्त से इत्तर संबंध में पवित्रता समाप्त होती जा रही है। पुरानी और नयी दोनों ही मानसिकताओं का चित्रण हिन्दी कहानी में किया गया है। राजेन्द्र यादव की ''खुले पंखः टूटे डैने'' और निर्मल वर्मा की कहानी ''खोज'' तथा शैलेष भटियानी की ''काला कौवा'' में बहन रूप की बदली हुई मनः स्थितियों एवम् जटिलताओं को देखा जा सकता है।

राजेन्द्र यादव की ''खुले पंखः टूटे डैने'' की मीनाली विपिन को भाई मानती है। वह उसकी उम्र से भी छोटा होता है। विपिन छोटा होने पर भी उसे चाहता है। वह उसे बहन न मानकर प्रेमिका मानना चाहता है। वह अपनी-स्थिति बार-बार व्यक्त करता है। वह मीनाली को कहता है, 'पता नहीं मीनल दीदी मुझे क्या हो गया है। न नींद आती है, न किसी काम में मन लगता है। दिमाग की नसें ऐसी तमी रहती है जैसे अब तड़की-अब तड़की, हंमेशा सिर से पहिया-सा घूमता रहता हो।' इस प्रकार मीनल को अपने छोटें भाई की इस मनः स्थिति का सामना करना पड़ता है। इससे वह विवश और निसहाय-सी हो जाती है।

इस तरह मीनल कई तरह से उसे टालने की कोशिश करती है। विपिन मान जाता है किन्तु मीनल के प्रति दृष्टि नहीं बदलता और न ही शादी की बात सोचता है। मीनल के मस्तिष्क में विपिन की बाते बार-बार कौंधती है। विपिन का थोड़ी देर के लिए चुप होकर चले जाना मीनल को परेशान कर देता है। वह सोचती है परीचिकाओं के पीछे भागते-भागते उसने कभी ध्यान ही नहीं दिया कि वह स्वयं क्या होती जा रही है। शरीर! शरीर भी कुछ माँगता है, इस बात को वह गुस्से से

भूल गई है.....अब इस स्थिति पर दुबारा जीवन भी तो शुरु नहीं कर सकती। आखिर किस बूते, किस संबल पर वह जिन्दगी की राहों में कमर कस कर चल पड़े..? रूप..धन..?.. निष्ठा..? ..प्यार..?..प्रतिष्ठा..? ..और..? ..और ..चरित्र..? क्योंकि एक ओर उसका वह अतीत है जिसमें काफी टूट चुकी होती है और दूसरी ओर जहाँ वर्तमान में वह रहती है और विपिन के साथ रहना पड़ता है। विपिन की माँ के घर में वह आश्रय लेती है। विपिन को वह भाई मानती है किन्तु जब विपिन इस संबंध को स्वीकार नहीं करता, वह तब परेशान हो उठती है।

''निर्मल वर्मा की ''खोज''में बिन्नो का अपने भाई से संबंध होता है। बिन्नो का अपने भाई से प्यार होता है जिसे वह अपने अतित के माध्यम से खोजती है। उनके प्यार में वासना नहीं प्रेम है जिसमें उदात्तता है। मनुष्य के मन में दु:ख केवल सेक्समूलक संबंधों को लेकर नहीं उपजता अपितु अन्य संबंधों से भी पनपता है।''[४१] बन्नो बहुत दिनों बाद घर आयी है। घर आने पर उसे भाई नहीं मिलता तब वह अपने के साथ गुजारे गये प्यार के क्षणों के बारे में सोचती है। वह भाई के साथ कुछ ऐसे क्षण बिताती है, जिन को वह भूल नहीं पाती। शैलेष भटियानी की ''काला कौवा'' मे भी बहन के पवित्र प्यार को चित्रित किया गया है। ''काला कौवा'' मे कुन्ती अपने छोटे भाई के साथ रहती है, उसके माँ-बाप नहीं है। उस पर भाई की भी जिम्मेदारी होती है। उनके बीच गहरा संबंध होता है। वे बचपन से साथ-साथ रह रहे है और कुन्ती उसकी देखभाल करती है। कुन्ती जब स्वयं बड़ी होती है तब शादी हो जाती है। शादी के समय कुन्ती चाहती है की वह अपने भाई को भी साथ ले जाये।

कुन्ती हर समय यही सोचती है की भाई का क्या होगा ? वह अपने काका से इजाजत लेकर उसे अपने ससुराल ले जाती है। ससुराल में उसे सास के ताने

झेलने पड़ते है। वह कुन्ती को कहती हैं 'अरे-मेरी दैया ! इन पहाड़न ससुरियों को कुछ लाज-शरम तो होती ही नहीं । चोट्टीले मेरे यार पुतरियों की तरह तो मुँह उघाडे चलती है । अत्पुतेरे की जवान-जवान भाईयों की देह से लगते भी इन बेशर्मो को कसक नहीं लगती है ।' उसके ससुराल में उसके भाई के प्यार पर संदेह उत्पन्न हो जाता है और भाई चुप-चाप घर से भाग जाता है। उसका भाई उसके लिये ''काला कौवा'' बन जाता है । रक्त संबंध में अतिशयता होने पर समाज संदेह करने लगता है ।

मोहन राकेश की ''रोजगार'' में भी बहन-भाई के संबंधों का समाज संदेह की दृष्टि से देखता है ।

''रोजगार'' में बहन कमाती है और भाई की जिम्मेदारियों को निभाती है। वह स्वच्छन्द रूप से यौन-संबंध भी रखती है पर भाई के प्रति वह ईमानदार भी है, और उसका सारा खर्चा भी उठाती है । समाज उन दोनों के संबंधों पर लांछन लगाता है ।

इस तरह कभी समाज की ओर से और कभी स्वयं बहन-भाई की ओर से संबंधों पर प्रश्न चिह्न-लगजाता है और उनके संबंधों को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। स्वतंत्रता-प्राप्ती के बाद यह स्थिति अधिक उभरी है। बहन-रूप का स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्यात की हिन्दी कहानी में अधिक चित्रण नहीं हुआ है । क्योंकि कहानीकारों की दृष्टि-विवाह पूर्व नारी और पत्नी एवम् माँ रूप में नारी का ही चित्रण अधिक किया है ।

२.३.५ विधवा

हिन्दी साहित्य में नारी के विधवा के रूप की कहानियाँ अधिक नहीं लिखी गई हैं। विधवाओं की समस्याओं एवम् रूपों को कम ही चित्रित किया

गया है।

समाज में विधवा की समस्या आज उतनी भयावह नहीं है जितनी स्वतंत्रता पूर्व थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्यात जीवन तेज गती से बदला है और विधवाओं से जुडी प्राचीन मान्यताओं के प्रति आस्था कम हुई है। विधवा के लिए आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबन आवश्यक हो जाता है। नौकरी-पेशा होने के कारण उनकी यौन-संबंधों के प्रति दृष्टि बदली है और स्वच्छन्द रूप से जीवन जीने के प्रति जहाँ वह स्वच्छन्द हुई है, वहाँ उसने यौन-संबंधों के प्रति स्वच्छन्द दृष्टिकोण अपनाया है। यौन-संबंधों के प्रति स्वच्छन्द दृष्टिकोण अपनाने के बावजूद भी विधवा अपने पति को नहीं भूल पायी है।

गिरिराज किशोर की ''रिश्ता'' की मनकी भी यौन-संबंधों की दृष्टि से स्वच्छन्द रहती है। उसके साथ उसका बेटा गिरधारी रहता है। मनकी गिरधारी के प्रति इतनी लापरवाह नहीं है जितनी ''तलाश'' की माँ अपनी बेटी के प्रति। मनकी कहती है कि उसके बेटे की नौकरी लगे। वह स्वयं नौकरी करती है किन्तु आर्थिक अभाव अधिक होने के कारण तथा गिरधारी की नौकरी के लिए दूसरों से शारिरीक संबंध रखती है। उसे एक से अधिक पुरुषों के साथ संबंध रखने में कोई हिचक नहीं होती है। जो अधिक पैसा देता है उससे संबंध स्थापित करती है। वह शारीरिक संबंध स्थापित करने से पहले ही साफ-साफ कह देती है पहले बात तय करो मूझे दूसरा आदमी मिल रहा है। डेढ़ सेर तगड़ी देगा। तेरे से प्यार मोहब्बत है इसलिए सेर की मांग कर रही हूँ। हँसकर बोली, ''मेरी बकरी को तो खून चाहिए। तू नहीं तेरा भाई-बन्द सही। मैं डोकटराइन नहीं दवा कर रखूँ।''[४२]

वह यह भी नहीं चाहती कि उसके बेटे को यह पता चले कि उसकी माँ ऐसी है। इस लिए वह नंगे लेट-लेटे ही कहती है ''जल्दी बोल गिरधारी आता

होगा। मैं कपड़े पहनूँ।''[४३] किन्तु गिरधारी को पता चल जाता है और वह अपनी माँ को ऐसे कार्य करने के लिये मना करता है। वह कहती है की मुझे चिंता अपनी नहीं, तुम्हारी नौकरी की है। मनकी बेटे की नौकरी का रामतीरथ से आश्वासन पाकर उसके साथ रहने लगती है और गिरधारी को भी साथ ले जाती है। यौन-संबंधों में मनकी को अपने पति का तनिक भी एहसास नहीं हैं, जैसे वह अपने अतित को पूरी तरह भूल चुकी है। उसने वर्तमान स्थिति को हीं सभी-कुछ मानकर अतित को अपने से झटक दिया है।

कमलेश्वर की ''तलाश'' कहानी में विधवा आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी है और अपनी बेटी सुमी के साथ रहती है। सुमी भी नौकरी करती है। सुमी की माँ अपनी बेटी की परवाह नहीं करती और पर-पुरुषो से अपने घर पर संबंध रखती है। उसे समाज क्या कहेगा उसका दु:ख या परवाह नहीं। वह बिना किसी प्रकार के द्वन्द्व के जीवन बिताती है। जब उसके लिए संबंधों के बीच बेटी बाधा बनती है तो उसे वह होस्टेल रहने के लिये भेज देती है। ''माँ-बेटी के बीच आत्मीयता नहीं है इसलिये दोनों कमरें दो अलग-अलग दुनियाओं में बदल गये थे..। उन दोनों के बीच पानी का एक रेला आ गया था। वे सिर्फ किनारों की तरह समानांतर खड़ी रह गई थी।''[४४]

वह अपनी बेटी से कभी-कभी मिलती है। सुमी माँ से जब भी मिलती है तो वह फुल ले जाती है जो उसके पापा लेकर आते थे, फुलों को देखकर वह कहती है- ''तेरे पापा भी यही फुल लाते थे .. नहीं मम्मी-बस कभी-कभी बहुत सन्नाटा-सा लगता है ..। यहाँ भी बहुत लगता है..।''[४५] इस तरह वह पति की अनुपस्थिति का एहसास तो करती है किन्तु अधिक नहीं।

शैलेष भटियानी की ''कुसुमी'' की कुसुमी अपने पति की मृत्यु के बाद

सोचती है- ''काश, कि कोई उसका भी घर लौटने वाला होता-दूर बहूत दूर की मुसाफरी से-जो उसके हाथों से ही भोजन करता और उसके आंचल से ही सिर टिकाये सो जाता। एक लौटने वाला था, मगर वह लौटा नहीं..।''[४६] कुसुमी यौन-संबंधों के प्रति स्वच्छन्द दृष्टि अवश्य रखती है किन्तु अनेक पुरुषों से नहीं। वह अपने देवर के साथ ही विवाह के प्रस्ताव पर सोचती है- ''जिसे वह छोटा-छोटा कहकर चिढ़ाती थी, अपने आने वाले दिनों में उसी के नाम मंगलसूत्र गले में पहनना पडेगा..।''[४७] कुसुमी पुर्नविवाह कर लेती है।

विधवा का परंपरागत रूप यही है कि वह अपने पति की स्मृतियों के सहारे जीवन व्यतीत करे। समाज में विधवा के पुर्नविवाह की अनुमति है किन्तु विधवा का पुर्नविवाह परिवार के लिए एक बहुत बड़ी समस्या बन जाती है। बिना किसी विवशता या आर्थिक कारणों से विधवा को विवाह करना कठिन हो जाता है। फिर भी नारी के लिए व्यक्तिगत घरातल पर यह महत्त्वपूर्ण समस्या है। जिसे एक बार सर्वस्थ अर्पण किया और जिसके साथ जीवन जिया उसे वह सहजता से कैसे झटक दे ? या भूल जायें। अतित सदैव हमारे मानसिक जीवन में निहित रहता है। अतित हमारे पीछले जीवन की तस्वीर है। विधवा के ऐसे रूप स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में उभरे हैं जहाँ वह अपनी सारी जिन्दगी पति की स्मृतियों में अपना जीवन व्यतित कर देती है।

मंजुल भगत की कहानी ''विधवा का श्रृंगार'' में भी मधुरिमा और शामी दो विधवाओं के रूपों को उभारा गया है। एक व्यक्ति की मृत्यु के कारण दो विधवायें हैं। एक जो सुहागिन होने के बाद जो विधवा हुई और दूसरी जो बिन सुहागिन ही विधवा हो गई। मधुरिमा के पति की आकस्मिक मृत्य हो जाती है। शामी मधुरिमा के पति से प्यार करती थी जिसका किसी को पता नहीं होता। यहाँ

तक कि मधुरिमा को भी नहीं । जिन एकांत क्षणों में शामी का मधुरिमा के पति कपिल से शारिरीक संबंध हुआ था, उसे शामी और कपिल ही जानते थे । कपिल की मृत्यु के बाद मधुरिमा पुर्नविवाह के लिए राजी हो जाती है, किन्तु शामी नहीं होती । शामी ने मधुरिमा का कभी बुरा नहीं चाहा था, केवल उसके जीवन में से कपिल के जीवन के अंश चुराये थे । उसकी यह विडम्बना है कि वह कपिल की मृत्यु पर जी भर कर रो भी नहीं सकी । अगर रोती तो लोग न जाने कया कह बैठते ।''शायद किसी ने सच-सच जान लिया होता, तो वह अनाम, प्यार-सा रिश्ता धूल में लौटने लगता, कीचड़ में सड़ जाता और उस संबंध को एक बहुत ही सरल और सामान्य-सा नाम दे डालता...।''[४८] इसलिये वह किसी से कुछ नहीं कहती । एक दिन जब मधुरिमा घर की सफाई करती है तब उसे अपने पति की डायरी मिलती है । जिसमें उसके नाम एक पत्र होता है और शामी के संबंधों का जिक्र तथा क्षमा-याचना भी । यह देखकर मधुरिमा का शामी के प्रति प्यार बढ़ जाता है, और अपना अतित सारा साकार हो उठता है । एक दिन अचानक मधुरिमा शामी को वैसा ही श्रृंगार किया हुआ देखती है जैसा की विधवायें करती है । वह चौंक उठती है । मधुरिमा शामी को अपने घर लाती है । काफी अर्से के बाद शामी उस घर में आती है । वह मधुरिमा के सामने रोने लगती है- ''जिस मूक क्रन्दन को सारी दुनिया से छिपाये थी, वह आज मधुरिमा के सामने टूट ही पड़ा, मधुरिमा उसके अतीत और उसके कपिल का अंश, उसके एकांत का प्रहरी ! और शामी कुछ और खुलकर रोने लगती है..।''[४९] इस तरह शामी अपने अनाम पति की स्मृतियों में जीवन जीती है ।

शैलेष भटियानी की ''दिक्षा'' की सावित्री अपना धर्म परिवर्तन करके दूसरे के साथ विवाह करने को सोचती है किन्तु पति की स्मृतियों के प्रभाव

स्वरूप वह विवाह नहीं करती और अपने अतीत में खोई रहती है। मंजुल भगत की ''रसप्रिया'' एक ऐसी विधवा की कहानी है जो छोटी उम्र में ही विधवा हो जाने से वह अपने बच्चों की बहूओं को अधिक प्यार करती है। ''वह हर बार बेटे की बहू, यहाँ तक कि पोते की बहू का सिंगार खुद करती है। वह स्वयं जीवन की खुशियाँ नहीं देख पाती। इसलिए वह अपने बेटों की बहूओं में ही अपनी खुशी खोजती है, चूँकि अब वय में नयी बहू के अभिसार में उन्हे अपना यौवन अँगड़ाई लेता प्रतित हुआ..।''[५०] ''जब वह अपनी बहूओं को सजा हुआ देखती है और बड़ी नौकरानी से बातें करती जब रसप्रियां सास का मन फिर सोलह वर्ष का हो जाता है और तकिए पर धरी हथेली पर पति का बीस बरस का सलोना चेहरा एक बार फिर जी उठता (और) उनके (रसप्रिया के) दलके कपालों पर बीस बरस का तरुण चहेरा जुक जाता। गौने के बाद का एक बरस लम्बा मधुमास, सुहाग की गिनीचुनी रातें सदा के लिए बीस वर्षीय मुख को उनके चित्त पर अंकित कर गई..। (वह सोचती है) क्या वह चेहरा कभी बुढ़ा होगा ? ..।''[५१]

पति की मृत्यु के पश्यात नारी का संघर्ष एक और पारिवारिक और दूसरी ओर आर्थिक समस्याओं से होता है। भीष्म सहानी की ''तस्वीर'' की विधवा अपने पति की मृत्यु के पश्यात अपने दो बच्चों को लेकर ससुर के साथ रहती है। नारी के जीवन में पति और पुत्र का बहुत अधिक सहारा रहता है। जब विवाह हो जाये और पति की आकस्मिक मृत्यु हो जाये तथा बच्चें भी छोटे हों तब उसके संघर्ष की प्रक्रिया अधिक तीव्र होती है। वह अपने ससुर के साथ रहती है जो उसके जीवन का संचालन बनता है और यातनायें देता है। वह कहती है- ''मेरी जिन्दगी की बागडोर जो पहले मेरे पति के हाथ में थी, अब मेरा ससुर मुझे हाँकने लगा था। जिस भांती उसके जीते जी मैं उसका मुँह ताका करती थी, उसके चले

जाने के बाद अपने ससुर का मुँह ताकने लगी थी..।''[५२]

उसे अपने पति का एहसास इसलिये अधिक होता है की उसके पति की मुस्कुराहट भरे चेहरे की तस्वीर घर में टँगी होती है। वह अपने पति की स्मृतियों में भी खोई रहती है। वह स्वयं पति की उपस्थिति का एहसास करती ही है, उसके बच्चे भी पापा की अनुपस्थिति का एहसास तब करते है। जब माँ अल्लाहर में आकर थप्पड मारती है। वे कहते हैं- ''आज माँ ने मुझे थप्पड मारा था। मुझसे दूध गिर गया तो माँ ने मुझे थप्पड मारा..।''[५३]

वह बच्चों की परेशानी, ससुर की यातना, आर्थिक अभाव सभी से जुझती है और सोचती हैं- ''उधर ससुर की फटकार, इधर बच्चों की। वह चला गया तो इसमें मेरा क्या दोष है। उसकी जगह मैं चली जाती तो अच्छा था..।''[५४] जब उसकी नजर तस्वीर पर पड़ती है तब उसे लगता है, ''वह तस्वीर में उसी तरह मुस्कुरा रहा था, जैसे जिन्दगी में मेरे किसी काम से असंतुष्ट होकर मुस्कुराया था। तीखी व्यंग्य भरी मुस्कान, मेरी त्रुटियों में हँसती हुई। यह क्यों लौट आया है ? यह क्या चाहता है ? यह मुझे मेरे हाल पर क्यों नहीं छोड़ देता ? वह मरकर भी बलवान है। मैं जिन्दा भी मरी हुई के बराबर हूँ..।''[५५] इस तरह वह पारिवारिक कठिनाइयों से जुझती हुई अपने पति की स्मृतियों का बराबर एहसास करती है हताश नहीं होती।

मुक्तिबोध की कहानी ''प्रश्न'' की ''सुशीला विधवा हो जाने के बाद किसी से संबंध हो जाने पर पवित्रता-अपवित्रता संबंधी प्रश्नों से जुझती है। ये प्रश्न स्वयं उसका बेटा बार-बार करता है। वह कहता है तुम पवित्र हो ? तुम पवित्र हो न ?....।''[५६] पति की मृत्यु के पश्यात काका उसे सहारा देता है। पति ने और काका ने उसको सहारा दिया। लोगों ने उसे अपवित्र कहा और उसके बच्चे

से कहने लगे कि उसकी माँ अपवित्र है। किन्तु उसे अपने जीवन में कही भी विसंगति मालूम नहीं हो रही है। फिर उसके पति को भी विसंगति कैसे मालूम होती। एक सिरा पति है दूसरा सिरा काका। पर इन दोनों सिरों में खोजते हुये भी विरोध नहीं मिल रहा है। वह इस सिरे से उस सिरे तक दौड़ती है–इन सब पर दूर एक स्वभाविक चिकनाहट। ''फिर वह किस तरह अपवित्र हुई। फिर यह कैसे प्रश्न ? कैसी महान विडम्बना, और मेरे प्रश्न का उत्तर कौन दे सकता है। है किसी में हिम्मत ?..।''[५७] बच्चा भी माँ की कहानी सुनकर उसे कहता है कि माँ तुम पवित्र हो, सुशीला के सामने समस्या अपने इस अस्तित्त्व की है पवित्रता की है। वह समाज से उत्तर चाहती है किन्तु उत्तर नहीं मिलता और वह इस पारिवारिक–सामाजिक समस्याओं से जूझती रहती है और अंत में मर जाती है।

२.३.६ वेश्या

स्वतंत्रता–पूर्व भारत में वेश्यावृत्ति की समस्या अधिक भयावह रूप में थी। स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद कानून के माध्यम से वेश्यावृत्ति को काफी हद तक समाप्त करने की कोशिश की गई है। स्वतंत्रता–पूर्व समाज में वेश्या–सुधार की बात उठी थी किन्तु उसके लिए कानूनी आधार नहीं था, समाज–सुधारकों ने अपनी मेहनत और परिश्रम से दूर करने का प्रयास किया था। इस के साथ ही साहित्यकारों की भी वेश्यावृत्ति उन्मूलन के प्रति दृष्टि गई। इसीलिए उनके साहित्य में वेश्या की समस्याओं का चित्रण मिलता भी था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्यात जहाँ वेश्यावृत्ति उन्मूलन को कानूनी आधार मिला वहाँ दूसरी और वेश्यावृत्ति कम होने का कारण नारी का घर से बाहर आना भी है। अब पुरुष के लिए नारी सहज–प्राप्य हो गई है और वेश्याओं के पास अधिक नहीं जाना पड़ता। अब वेश्यावृत्ति का भारत में भयावह रूप नहीं रहा है अपितु उसने अपना दूसरा रूप

धारण कर लिया है। अब क्लबों, होटलों आदि में नारी का पैसा कमाना प्रारंभ हो गया है, अब उन्हें वेश्यालयों में जाने की आवश्यकता नहीं है। कहानीकारों की दृष्टि भी स्त्री-पुरुष के संबंधों पर ही अधिक गई है, वेश्याओं पर नहीं। वेश्याओं के पीछे अधिकाशतः पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक कारण ही प्रमुख रूप से रहते हैं, किन्तु आज कई नारीयाँ अपनी स्वेच्छा से भी होटलों, क्लबों में जाना स्वीकार कर लेती है। नारी का यह पेशा वेश्यावृत्ति का सभ्य रूप है। वेश्यावृत्ति पूर्वातया समाप्त नहीं है। वेश्याओं से संबंधित कम कहानियाँ ही लिखी गई है। उसका कारण यह है कि आज लेखक अपने आस-पास के परिवेश और भोगे हुए यथार्थ का ही चित्रण करता है। उस परिवेश में उसके लिए यह समस्या नहीं है कि उसे समाज सुधार के वेश्याओं पर कहानियाँ लिखनी है। कहानीकारों की दृष्टि अधिक न जाने पर भी कुछ ऐसी कहानियाँ लिखी गई है, जिनमें वेश्याओं के जीवन को उभारा गया है। उनमें से प्रमुख है- कमलेश्वर की ''मांस का दरिया'' राकेश की ''गुनाहे-बेल्लजत'', ''रोजगार'', मन्नू भण्डारी की ''तीन निगाहों की एक तस्वीर'', भीष्म साहनी की ''अभी तो मैं जवान हूँ'', फणीश्वरनाथ 'रेणु' की ''तीसरी कसम'', कमलेश्वर की ''रातें'' आदि।

कमलेश्वर की ''मांस का दरिया'' की जुगनू वेश्यालय में अन्य वेश्याओं से अपना भिन्न रूप रखती है। वेश्या का पुरुष से ग्राहक का संबंध होता है। ग्राहक जिससे संबंध रखेगा, उसका आधार आर्थिक होगा। वस्तु के आधार पर कींमत आंकी जायेगी जैसी वस्तु होगी वैसी कींमत वेश्यालयों में नारी वस्तु का रूप धारण कर लेती है या यह कहा जा सकता है कि ग्राहक की दृष्टि में वह वस्तु है और ग्राहक वस्तु समझकर ही उसका उपयोग करता है। वहाँ ग्रहक का दृष्टिकोण भोगपरक ही रहता है, भावात्मक, रागात्मक, मानसिक, बौद्धिक नहीं।

नारी के शरीर को उपयोग किया और उसके बाद घर आ गये। उनकी वेश्याओं के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं रहती किन्तु वेश्या की यह जिम्मेदारी होती है की वह ग्राहक को खुश करे। उसके पीछे वेश्याओं की दृष्टि रागात्मक नहीं होती। अगर कोई पुरुष उसे दल-दल से बाहर निकालना चाहता है या वह किसी पुरुष के प्रति आकर्षित होती है तो स्थिति दूसरी हो जाती है। वहाँ संबंधों के बीच अर्थ प्रधान न होकर राग प्रधान हो जाता है। ''मांस का दरिया'' की जुगनू और बिलकीस दो विभिन्न आयामों को हमारे सामने रखती है। जुगनू की स्थिति और बिलकीस की स्थिति में बहुत अंतर है। जुगनू राग बनाए रखना चाहती है, वह चाहती है कि- ''ग्राहक बनाए रखने के लिए राग का रहना आवश्यक है। उसकी कामना रहती है सब के ग्राहक जीते जागते रहें। खुदा मंदों को रोजी दे... जांघ में जोर दे...।''[५८] उसे अपने पेशे से शिकायत नहीं है। उसे शिकायत यह है की वह तपोदिक रोग से ग्रस्त है और उसके पास इलाज करवाने के लिए पैसा नहीं है। जहाँ वह रहती है, वहाँ उसे कोई भी पैसा नहीं देता। इसलिए उसे अपने ग्राहकों से ही कर्ज लेना पड़ता है। यह रोग उसे वेश्या के पेशे के कारण ही हुआ है। जुगनू के कई पूराने ग्राहक हैं, जिन्हें वह अच्छी तरह जानती है। मदनलाल से उसके अच्छे संबंध है क्योंकि वह उसकी इच्छा के विरुद्ध कभी भी काम नहीं करता। भले ही वह जानती है कि- ''उसने किरमिच के जूते उतारे थे तो बदबू का एक भभका उठा था ....।''[५९] वह कर्ज लेती है और अपना इलाज करवाती है। ''एक ओर उसका कर्ज बढ़ता जाता है और दूसरी ओर वह ठीक भी नहीं हो पाती। ग्राहक उससे पैसा माँगते हैं किन्तु वह साफ-साफ कह देती है कुब्बत हो तो वसूल कर जाओ.....।''[६०] किन्तु अपनी ही बात पर उसे शरम आयी थी....फिर लगा था ''ठीक ही तो कहा उसने....खामख्वाह की इज्जत से क्या मतलब....?''[६१] ''कोई

कोई रात तो खाली चली जाती थी, और अपनी कोठरी पर लेटे हुये वह बहुत घबराती थी । यह पहाड़-सी जिन्दगी .....दिन - दिन टुटता हुआ शरीर.....।''[६२] उसके सामने सबसे बड़ी कठिनाई तब आती है, जब वह कर्ज भी नहीं उतार पाती ओर उसकी जांध पर फोड़ा भी निकल आता है । ग्राहक कर्ज का तकाजा करते हैं । वे कहते हैं कर्ज नहीं तो भोग करने दो । एक और वह दर्द से कराह रही होती है और दूसरी और ग्राहक नहीं मानते । कुछ ग्राहक तो मान जाते हैं किन्तु कंवरजीत नहीं मानता और जबरदस्ती संभोग कर लेता है । संभोग के दौरान फोड़ा फूट जाता है और सारा मवाद बाहर निकल आता है । जुगनू चीख पड़ती है । वह थोडी देर बाद मवाद को साफ करती है । जुगनू की चीख के बाद भी कंवरजीत जाते-जाते कहता है- ''ध्यान रखना, चौथी बार हुई ।''[६३] उसके साथ निर्भयता के साथ पेश आता है । इस प्रकार जुगनू को अनेक यातनाओ का शिकार होना पड़ता है । वह चुपचाप सब दु:खों को सहन करती चलती है ।

दूसरी और बिलकीस का रूप ही कुछ और है । उसके संबंध में चकले की अम्मा की धारणा होती है कि यह चुडैल बिना लड़े लगाम नहीं डालने देती... किसी दिन इस कोठरी में कतल होगा....। बिलकीस को इसमें मजा आता है ।

वह आदमी को छोड़ने ही दरवाजे पर आकर खड़ी हो जाती है और उसे हारकर जाते हुए देखकर तालियाँ चटकाकर बड़ी ऊँची हँसी में हँसती थी ''अरि,ओं मरी जुबदा ! जरा देख रुसतम जा रिया है । बड़ा आया था पैलवान का बच्चा । ये मरदुआ सोएगा औरत के साथ....।''[६४] कोई ग्राहक कुछ बोलता है तो वह जवाब देती हुई कहती है- ''अरे जा-जा भिश्ती की औलाद... ले, ये चवन्नी ले जा छटांक भर मलाई खा लीजे...। वह हाथ नचा-नचा कर बड़े कुख से हंमेशा कहती थी... अपने तो बरम्मचारी की औरत है....।''[६५] जुगनू अपनी यातना को अकेले

भोगती हैं बिना किसी बात के विरोध किये हुए। वह आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन होने पर भी स्वतंत्र नहीं रह पाती जबकि बिलकीस अपनी जिन्दगी को बहुत मजे से और स्वाधीन होकर जीती है।

राकेश की ''गुनाहे-बेल्लजत'' की वेश्या अपने ग्राहकों को पुलिस के हवाले करवा देती है जब वह स्वयं पकड़ी जाती है। ''रोजगार'' में वह स्वच्छन्द होकर पैसा कमाती है और अपने भाई का भी ख्याल रखती है, उसे खर्चा देती है। मन्नू भण्डारी की ''तीन निगाहों की एक तस्वीर'' में दर्शना को पारिवारिक कारणों के वशीभूत होकर वेश्या का पेशा स्वीकार करना पड़ता है। उसका पति उसे बदचलन समझकर घर से बाहर निकाल देता है। उसके बदचलन होने का प्रमाण उसका हरीश से प्रेम संबंध होता है। वह एक ओर मायके से, दुसरी ओर पति से और तीसरी ओर प्रेमी से तिरस्कृत हो जाती है और वेश्यालय में पहुँच जाती है। वेश्या जीवन जीने के बाद भी उसके मन में सभी रिश्तेदारों के प्रति लगाव बना रहता है और विशेष कर अपनी बहन की लड़की नैना से। वह घर पर नैना से मिलने के लिये कई बार पत्र भी लिखती है। उसकी बहन नैना को वहाँ नहीं भेजती। नैना बहुत जिद करती है और घर वालो से झगड़ा करके मौसी से मिलने जाती है। किन्तु वह उसे वहाँ पहचानने से इंकार कर देती है। बीमार अधिक होने के कारण मौसी मर जाती है। इस तरह दर्शना रागात्मक-भावात्मक तथा आर्थिक संबंधों के बीच लटकती हुई जिन्दगी जीती है।

भीष्म साहनी की ''अभी तो मैं जवान हूँ'' में वेश्याओं की जीवनचर्या उतनी समस्याओं व्यवहार, स्वभाव, कामकाज की प्रक्रिया, वेश्याओं की स्थिति का यथार्थ चित्रण किया गया है। वेश्या के जिन्दगी का अपना एक अलग संसार होता है जहाँ नारी प्रतिदिन अपने लिए ग्राहक ढूँढती है। वहाँ शरीर की सुंदरता

गठन, सुडौलता, कोमलता आदि के आधारपर व्यवहार अच्छा और बुरा चलता है। चकलों में भी जीवन जीती हुई नारियाँ परस्पर मिलजुल कर रहती है। उनके बीच भी ईर्षा, द्रेष, स्नेह आदि भावों की स्थिति रहती है लेकिन वह जिन्दगी कितनी ऊबाउ और सामाजिक जीवन से कटी हुई जिन्दगी होती है। वहाँ की जिन्दगी का एक चित्र खींचते हुये लेखक ने लिखा है ''गली में चमाशबीनों की संख्या अधिक थी, ग्राहकों की कम। आये झयादात्तर लोग मन बहलाव करने आवाजे करने के लिये थे। रंडियाँ एक-एक ग्राहक से जैसे जूझ रही थी, इस सारी बेपर्दगी और झुंझलाहर के बावजूद उनकी आँखे संभवित आँखों को खोजती रहीं कोई नजर आता तो झट से चेहरे पर मुस्कान ओढ लेती, लुभावने इशारे करने लगती, उनके चेहरे से लगता जैसे ग्राहकों से भी अधिक ये वासना में अधिर हुई जा रही है। ग्राहक उपेक्षा से आगे बढ़ जाता तो इनके चेहरे पर से मुखौटा उतर जाता। चेहरे पर पितृष्णा, थकान उभर आती, आँखों की चमक बुझ जाती, होठ सिकड़ जाते और रंडी मुंह में से पान की पीक थुक देती .....।''[६६] इसमें वेश्याओं के जीवन की यथार्थ झांकी है।

रेणु की ''तीसरी कसम'' की हीराबाई वेश्या नहीं अपितु नर्तकी है। हीराबाई और हीरामन के स्वच्छ, निर्मल और स्वाभाविक प्रेम का चित्रण ''तीसरी कसम'' में किया गया है। हीराबाई अंत में चाहकर भी हीरामन के साथ नहीं जा पाती और हीरामन अकेला रह जाता है। कमलेश्वर की 'राते' कहानी में वेश्याओं का प्रमुख उदेश्य पैसा कमाना है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला आ रहा है।

हिन्दी कहानी में वेश्याओं के यही मुख्य रूप हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में परिवार एवम् परिवारेत्तर संबंधों की दृष्टि से नारी के विभिन्न रूपों के विश्लेषण से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्यात नवीन मनः

स्थितियों और परिस्थितियों से नारी का व्यक्तित्त्व प्रभावित हुआ है, जिसमे उसने एक और प्राचीन मूल्यों एवम् मान्यताओं का विरोध किया है, दूसरी ओर पुरुष की परंपरागत दृष्टि को तोड़ने का प्रयास किया है और तीसरी ओर स्वयं उसने परिवेश में अपने व्यक्तित्त्व की खोज की है और उसके विकास के संबंध में अधिक आत्मसजग हुई है। कहानी-विद्या के माध्यम से उभरे विभिन्न रूपों से यह स्पष्ट होता है कि नारी के रूपो में उभरे तनाव, द्वन्द्व, कुंठा, आक्रोश, विद्रोह विघटन, स्वच्छदता आदि का कारण पारिवारिक एवम् सामाजिक न होकर वैयक्तिक है। आज वैयक्तिक का राग ही अधिक बाधक बने हैं। कहानीकारों ने नारी को इकाई मानकर उसके वैयक्तिक एवम् परिवेशगत संदर्भो में ही अधिक चित्रित किया है। किसी सिद्धांत या आदर्श का अधिक आग्रह न होने के कारण ही नारी अपने वास्तविक रूप में चित्रित हो पायी है, जिससे उसके व्यक्तित्त्व का आंतरिक पक्ष गहराई के साथ उभर कर आया है।

२.४ निष्कर्ष

साहित्य की विभीन्न विधायें व्यक्ति और समाज के जीवन को अलग-अलग ढंग से अभिव्यंजित करती है। कविता कथा-साहित्य, नाटक तीनों का अपना पृथक् महत्त्व है। तीनों विधायें अपने-अपने ढंग से सामाजिक यथार्थ का संस्पर्श करती है। उन्नसवीं शताब्दी से पूर्व साहित्य में नारी को कविता के माध्यम से जानते रहें है। कहानी-विद्या आधुनिक युग की देन है। कविता और कहानी की भाषा की प्रकृति में अंतर है। जिस तरह कविता सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति देती है उस तरह कहानी नहीं। इसलिए कविता और कहानी में पात्रों के चित्रण में अंतर आ जाता है। नारी के विविध रूपों के वर्गीकरण के आधारों का विश्लेषण करते समय विद्यागत अंतर को केन्द्र में रखा है।

उन्नीसवीं शताबदी से पूर्व समाज में नारी सेक्स, प्रेम और विवाह तक सीमित रही है। इसीलिए साहित्य में भी श्रृंगार रस की प्रधानता रही है। साहित्य में नायक-नायिका का भेद चित्रण इसका प्रमाण है। उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व साहित्य में नायिका भेद के चित्रण से नारी के विविध रूप सामने आये हैं। प्राचीन आचार्य ने नायिकाओं के भेद किये है जो मुख्यत: नारी की प्रकृति, स्वभाव अवस्था, स्थिति-शारिरिक-मानसिक-सामाजिक तथा अपने युग की चेतना के अनुरूप किया है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्यात कहानी का विकास एवम् उसमें बदलाव आंदोलनों के माध्यम से भी हुआ है। नयी कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी आन्दोलन इसके प्रमाण हैं। इन आंदोलनों के पीछे जहाँ कहानीकारों की दृष्टि काम कर रही है, वही सन् साठ के बाद की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियाँ भी महत्त्वपूर्ण कारण रही है, जिनसे नयी कहानी के पश्यात के नये

कहानीकारों की मानसिकता का निर्माण हुआ। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूपों को आंदोलनों के परिप्रेश्य में नहीं देखा गया है, क्योंकि स्वतंत्रत्ता-प्राप्ति के पश्यात नारी की स्थिति में कोई महत्त्वपूर्ण बदलाव नहीं आया है। उनमें स्थितियाँ वही है किन्तु जीवन के प्रति नये कहानीकारों की केवल 'एप्रोच' बदली है। नयी कहानी में मूल्यों के द्वन्द्व संक्रमण एवम् निर्माण की समस्यायें, अकहानी में मूल्यों के निषेध और सचेतन कहानी में मूल्यों की यथा स्थिति कारण सहित चित्रण हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूपों की परंपरागत और परिवर्तीत दोनों तरह की प्रवृतियाँ उभरी हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में परिवार एवम् परिवारेत्तर संबंधों की दृष्टि से नारी के रूपों की अनेक प्रवृत्तियाँ उभरकर सामने आयी हैं। भारत में विवाह-पूर्व नारी को अनेक स्थितियों के मध्य गुजरना पड़ता है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मुख्यत: नारी के विवाह-पूर्व जहाँ पारिवारिक जिम्मेदारियों के विरुद्ध संधर्ष किया है। (कमलेश्वर की ''तलाश'', मोहन राकेश की ''वासना की छाया में'' मन्नू भण्डारी की ''सच'', निरूपमा सोबती की ''ठहरी हुई खरोंच'' आदि) वहाँ विवाह-पूर्व प्रेम-संबंधों के कारण पारिवारिक यातनाओं को झला भी हैं। (मोहन राकेश की ''उसकी रोटी'', अमर कांत की ''असमर्थ हिलता हाथ'' अचला शर्मा की ''धुंधले अंधेरे में'' आदि) वहाँ वह स्वच्छन्द रूप से प्रेम-संबंध रख पायी है या नहीं रख पायी है वहाँ वह कुंठा, द्वन्द्व , तनाव, भटकाव एवम् शोषण का शिकार भी हुई है। (मोहन राकेश की ''सीमायें'', कमलेश्वर की ''मेरी प्रेमिका'', मन्नू भण्डारी की ''घूटन'', भीष्म साहनी की ''रास्ता'', महिपसिंह की ''ब्लाटिंग पेपर'' आदि) कहीं-कहीं वह यौन संबंधों के प्रति स्वच्छन्द भी हुई है (निर्मल वर्मा की ''अमालिया'', श्री कान्त वर्मा की ''खेल का मेदान'', ''लड़की''

शैलष भटियानी की ''निर्णय'' आदि) और विवाह-पूर्व प्रेम-संबंधों के निमित त्याग एवम् बलिदान भी किया है। (कृष्णा सोबती की ''बादलों के घेरे'', शैलेष भटियानी की ''शीशे के पार उगी हरियाली'' आदि) जहाँ एसा नहीं कर पायी है वहाँ वह प्रेम-संबंधों के अतीत और वर्तमान के द्वन्द्व में ही झूलती रही है। निर्मल वर्मा की ''परिन्द'', मन्नू भण्डारी की ''यही सच हैं'' , ''एक बार और'', उषा प्रियंवदा की ''मछलियाँ'' आदि) या अपने-अपने पारिवारिक संबंधों (पिता और बेटी के विशेष रूप से) एवम् प्रेम-संबंधों में अपनी अस्मिता की तलाश की हैं। (महिपसिंह की ''कील'', सिम्मी हर्षिता की ''चक्रभोग'', निर्मल वर्मा की ''लवर्स'', महिपसिंह की ''उजाले के उल्लू'', सोमावीरा की ''दो आँखों वाले चेहरें'', सिम्मी हर्षिता की ''उसका मन'' आदि) विवाह-पूर्व नारी की इन-स्थितियों, मन:स्थितियों, आयामों एवम् संदर्भो से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय नारी भी अभी पारिवारिक रुढियों, मान्यताओं, परंपराओं एकम् प्रेम संबंधों के मध्य आनेवाली निषेधात्मक बातों से मुक्त नहीं हो पायी है। कहानीकारों ने उसे स्वतंत्र इकाई के रूप में बिना किसी सिद्धांत या आदर्श का आधार लिये तो चित्रित किया है किन्तु परंपरा और समकालीन बोध से वे भी अलग नहीं हो पाये हैं।

हिन्दी कहानी पर्यावरण की दृष्टि में नारी के रूपों के उभरने से यह स्पष्ट होता है कि कहानीकार केवल संबंध, अर्थ, विचार के धरातल पर ही नारी का चित्रण नहीं कर रहा है अपितु नारी की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के आधार का भी चित्रण कर रहा है। कहानीकारों ने उच्चवर्गीय नारी, मध्यमवर्गीय नारी एवम् निम्नवर्गीय नारी मानसिकता एवम् उसके संस्कारों को भी उभारा है। (गिरिराज किशोर की ''गाउन'', भीष्म साहनी की ''पिकनीक'', ''राधा-अनुराधा'', मंजुल

भगत की ''बीबी और बांदी'' आदि) समाज परिस्थितियों के अनुरूप भी मनुष्य का व्यक्तित्त्व विशिष्ट रूप धारण करता है। कभी इसमें आर्थिक कारण रहे हैं कभी सामाजिक, कभी वैयक्तिक और कभी पुरुष की परंपरा भोगवादी दृष्टि। (मोहन राकेश की ''उर्मील जीवन'', प्रियंवदा की ''चांद चला रहा'', शिवप्रसादसिंह की ''नन्हा'', महिपसिंह की ''मैडम'', मृदुला गर्ग की ''कितनी कैदे'' आदि) इसके अतिरिक्त नारी के कतिपय ऐसे रूप भी उभरे हैं, जो अपनी विशिष्टतायें रचते हैं। जब व्यक्ति का विकास व्यवस्था के अनुरूप होता रहता है, तब वह सामान्य ही रहता है। जब उसके अनुरूप नहीं हो पाता, तब वह असामान्य रूप धारण कर लेता है या कभी-कभी व्यक्तिगत रुचियाँ या व्यक्तिगत कारण भी विशिष्टता प्रदान करते हैं। मोहन राकेश की ''मिस पाल'' की मिस पाल वैयक्तिक अंत विरोधों और विसंगतियों की शिकार है तो नरेश महेता की ''एक समर्पित महिला'' की श्रीमती शैला कला के लिए अपना जीवन न्यौछावर कर देती है। धर्मवीर भारती की ''सावित्री नंबर दों'' की सावित्री असाध्य रोग एवम् उपेक्षित जीवन के कारण विशिष्ट बनती है तो शैलेष भटियानी की ''सुहागिनी'' कुरूपता, अंधविश्वास, आर्थिक अभाव के कारण अविवाहित जीवन व्यतित करती है और तांबे के कलश को अपना पति मानती है। उसे ही भावनाओं का केन्द्र बनाती है। इससे स्पष्ट है कि पर्यावरण की दृष्टि से नारी के रूप नवीनतायें लेकर सामने आये हैं। स्वतंत्रता-पूर्व की तरह राष्ट्र-सेविका से समाज-सेविका जैसे रूप नहीं मिलते क्योंकि कहानीकार की दृष्टि राष्ट्र पर न होकर भोगे हुये यथार्थ और अपने परिवेश पर हैं।

हिन्दी कहानी में संबंध, अर्थ, विचार, पर्यावरण की दृष्टि से नारी के विविध रूपों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि जीवन भी विविध आयामों में

जिया जाता है। जीवन और साहित्य के बीच की दूरी स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्यात आकर खत्म हो गई हैं । अब साहित्यकार जीवन से सीधे साक्षतकार करके यथावत रूप में अभिव्यक्ति दे देता है। नारी भी अपना जीवन यथार्थ धरातल पर केवल सौंदर्य के आधार पर नहीं जीती। नर-नारी के प्रेम संबंधों में ही सौंदर्य का अधिक महत्त्व हैं। इसके अतिरिक्त यह तथ्य भी महत्त्वपूर्ण है कि संबंध, अर्थ विचार और पर्यावरण का स्वरूप सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ सदैव बदलता रहता है। भारत की सामाजिक व्यवस्था में आये परिवर्तन में नारी के व्यक्तित्त्व के विकास के आधार तो बदले हैं किन्तु पारिवारिक दृष्टि से आज भी नारी परिवार का केन्द्र बिन्दु हैं।

प्रकरण : २ संदर्भ सूचि

(१) मोहन राकेश : रोयें रेशे । पृ. : २३

(२) उषा प्रियम्वदा : जिन्दगी और गुलाब के फूल । पृ. : ३

(३) उषा प्रियम्वदा : जिन्दगी और गुलाब के फूल । पृ. : ९

(४) उषा प्रियम्बदा : जिन्दगी और गुलाब के फूल । पृ : १०

(५) शैलेष भटियानी : मेरी प्रिय कहानियाँ । पृ : ४६

(६) शैलेष भटियानी : मेरी प्रिय कहानियाँ । पृ : ४७

(७) शैलेष भटियानी : मेरी प्रिय कहानियाँ । पृ : ४७

(८) शैलेष भटियानी : मेरिप्रिय महानियाँ । पृ : ४७

(९) राजेन्द्र यादव : एक दुनिया समानान्तर । पृ : २२४

(१०) राजेन्द्र यादव : एक दुनिया समानान्तर । पृ : २२६

(११) मंजुल भगत : गुल मोहर के गुच्छे ।पृ. : ३१

(१२) सिम्मी हर्षिता : कमरे में बन्द आभास । पृ. : ११९

(१३) राजेन्द्र यादव : मेरी कहानिया । पृ. : २५

(१४) राजेन्द्र यादव : मेरी प्रिय कहानियाँ । पृ. : २६

(१५) राजेन्द्र यादव : मेरी प्रिय कहानियाँ । पृ. : २६

(१६) राजेन्द्र यादव : मेरी प्रिय कहानियाँ । पृ. : २६

(१७) दुधनाथसिंह : पहला कदम । पृ. : १९८

(१८) दुधनाथसिंह : पहला कदम । पृ. : १४८-१४९

(१९) दुधनाथसिंह : पहला कदम । पृ. : १५३

(२०) दुधनाथसिंह : पहला कदम । पृ. : १५५

(२१) उषा प्रियंवदा : कितना बडा झूठ । पृ. : १५

(२२) मोहन राकेश : रोंदे रेशे । पृ. : ६९

(२३) राजेन्द्र यादव : मेरी प्रिय कहानियाँ । पृ. : १३३-१३४

(२४) कमलेश्वर : दु:खों के रास्ते । पृ. : ३१

(२५) उषा प्रियम्वदा : प्रतिध्वनियाँ । पृ. : ४८

(२६) मोहन राकेश : एक-एक दुनिया । पृ. : १२९

(२७) मोहन राकेश : एक-एक दुनिया । पृ. : १२९

(२८) राजेन्द्र यादव : एक दुनियां समानान्तर । पृ. : १३६

(२९) राजेन्द्र यादव - एक दुनियां समानान्तर - पृ. : १३५

(३०) राजेन्द्र यादव - एक दुनियां समानान्तर - पृ. : १४५

(३१) शैलेश भटियानी : पाप मुक्ति तथा अन्य कहानियाँ । पृ. : ८७

(३२) निर्मल वर्मा : परिन्दे । पृ. : १३९

(३३) निर्मल वर्मा : परिन्दें । पृ. : १५०-१५१

(३४) निर्मल वर्मा : परिन्दें । पृ. : १६५

(३५) उषा प्रियम्वदा : कितना बडा झूठ । पृ. : ११७

(३६) निर्मल वर्मा : खोज पृ. : १६८

(३७) गिरिराज किशोर : रिश्ता । पृ. : १५०

(३८) गिरिराज किशोर : रिश्ता । पृ. : १५१

(३९) कमलेश्वर : मांस का दरिया । पृ. : १८

(४०) कमलेश्वर : मास का दरिया । पृ. : १४-१७

(४१) शैलेष भटियानी : पाप - मुक्ति तथा अन्य कहानियाँ । पृ. : ७५

(४२) शैलेष भटियानी : पाप - मुक्ति तथा अन्य कहानियाँ । पृ. : ८१

(४३) मंजुल भगत : गुलमहोर के गुच्छे । पृ. : १२३

(४४) मंजुल भगत : गुलमहोर के गुच्छे। पृ. : १२६

(४५) मंजुल भगत : गुलमहोर के गुच्छे। पृ. : १५

(४६) मंजुल भगत : गुलमहोर के गुच्छे। पृ. : १६

(४७) भीष्म साहनी : पटरियाँ। पृ. : ५४

(४८) भीष्म साहनी : पटरियाँ। पृ. : ५५

(४९) भीष्म साहनी : पटरियाँ। पृ. : ६०

(५०) भीष्म साहनी : पटरियाँ। पृ. : ६०

(५१) मुक्तिबोध : काढ का सपना। पृ. : १०१

(५२) मुक्तिबोध : काढ का सपना। पृ. : १०६

(५३) कमलेश्वर : मांस का दरिया। पृ. : २०

(५४) कमलेश्वर : मांस का दरिया। पृ. : २१

(५५) कमलेश्वर : मांस का दरिया। पृ. : ३०

(५६) कमलेश्वर : मांस का दरिया। पृ. : ३१

(५७) कमलेश्वर : मांस का दरिया। पृ. : ३०

(५८) कमलेश्वर : मांस का दरिया। पृ. : ३१

(५९) कमलेश्वर : मांस का दरिया। पृ. : ३५

(६०) कमलेश्वर : मांस का दरिया। पृ. : ३७

(६१) भीष्म साहनी : पटरियाँ। पृ. : १०१

प्रकरण-३

३. मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी के शाश्वत रूप

३.१ प्रस्तावना

३.२ माता

३.३ पत्नी

३.४ प्रेयसी

३.५ बहन

३.६ विधवा

३.७ निष्कर्ष

प्रकरण : ३. मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी के शाश्वत रूप

३.१ प्रस्तावना

साहित्य व्यक्ति और समाज पर अवलम्बित होते हुए समाज के तत्त्व मिलते हैं, समाज-विशेष में व्यक्ति का स्वरूप मिलता है उसी प्रकार साहित्य में व्यक्ति और समाज दोनों के आंतरिक और बाह्य तत्त्व मिलते हैं। प्रत्येक युग के साहित्य पर अपने युग की छाप होती है। इसलिए हम साहित्य के माध्यम से व्यक्ति और समाज दोनों की तस्वीर पाते है। साहित्य के माध्यम से युग-विशेष की भाषा का पता चलता है। व्यक्ति और समाज के साथ जो मूल्य व्यवस्था जुड़ी रहती है उसका चित्रण भी हमे साहित्य में मिलता है। साहित्य के महत्त्व के साथ-साथ उसका प्रभाव भी व्यक्ति और समाज पर पड़ता है। अतः कहा जा सकता है कि व्यक्ति, समाज और साहित्य का परस्पर घनिष्ठ और अन्योन्याश्रित संबंध है।

नारी के विविध रूपों को जान ने के लिए व्यक्ति-समाज और साहित्य के परस्पर संबंध को जानना अति आवश्यक है क्योंकि नारी के विविध रूपों का व्यक्ति, समाज और साहित्य से गहरा और सश्लिष्ट संबंध होता है। मानव जीवन एक ओर प्रकृति-प्रदत्त शारिरीक-मानसिक संरचना से प्रत्यक्ष रूप से संबंध रहता है, और दूसरी ओर बाह्य परिवेश से भी जो प्रकृति-प्रदत्त संरचना से भिन्न धरातल पर अवलम्बित रहता है जिसको मनुष्य प्रकृति-प्रदत्त संरचना से अनुरूप महत्त्व नहीं देना चाहता। मानव की इस स्थिति को उसके क्रिया-कलापों के माध्यम से देखा जा सकता है। मनुष्य के क्रियाकलापों को तीन विभागों में विभाजीत किया गया है। ''जिसमें पहले के अन्तर्गत वे क्रियाएँ आती है, जो मनुष्य के जीवन-निर्वाह तथा तत्संबंधी उसकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक

हैं । दूसरा भाग उन कार्यो से संबंध रखता है, जो मानव-जाति की परंपरा को बनाये रखते के लिए आवश्यक है अर्थात प्रजनन, विवाह और परिवार से संबंधित बातें । तीसरा भाग उन कार्यो का है, जिनके द्वारा मनुष्य अपने पारस्परिक संबंधों से आपसी संबंधों को नियंत्रित करता है ।''[१]

मन्नूजी की कहानियों का मूल विषय नारी है । अत: इनकी कहानियों को मात्र 'स्त्रेण' कहकर आलोचकों में उपेक्षीत कर दिया है- ''मन्नूजी कुल मिलाकर स्त्रेण कहानियाँ ही लिखती हैं ।''[२]

लेखक का यह कथन कितना बचकाना लगता है । नारी तो आदिकाल से सौंदर्य और कला का केन्द्र रही है । फिर आधुनिक युग में आत्म निर्भर, पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर जीवन पथ पर जूझने की क्षमता रखने वाली नारी मात्र मन्नूजी के लिए नहीं साहित्य मात्र के लिए चर्चा-विचारणा का विषय रही है । नए-पुराने सभी कथाकारों की कृतियों के लिए प्रेरणा व मूल विषय के रूप में नारी को देखा जा सकता है । ''नई कहानी'' में तो नारी के इस स्वतंत्र, आत्म निर्भर व समर्थ रूप के अनेकानेक चित्र प्रस्तुत हुए हैं । सच पुछा जाए तो नई-कथा चेतना नारी-पुरुष के आपसी संबंधों के परिवर्तीत होते हुए रूप को ही मुख्यत: लेकर चली है । इस परिवर्तन का मुख्य कारण भी नारी की सजगता व अपने व्यक्तित्त्व और अस्तित्त्व के लिए संघर्ष की प्रवृति रही है । इससे पुरुष वर्ग में अपने अधिकारों व प्रभुता को लेकर उत्पन्न आक्रोश किया ही है ।

नारी को भी अत्यधिक जटिल मानसिकता प्रदान की है । अपनी-अपनी मानसिकता के प्रकाश में पुरुष और नारी दोनों कथाकार इस नारी के व्यक्तित्त्व की खोजमें रत हैं, और जितना इसके निकट जाते हैं उतना ही जटील पाते हैं । क्योंकि वहाँ उसकी कृंठा अनेक स्तरीय और अनेक मुखी इसलिये और भी

अधिक है कि ''उसकी ''घूटन'' (मन्नू भण्डारी) पुरुष की तरह केवल प्रतिभा तथा शक्तिओं के दूरपयोग अनुयोग या यौनमुक्ति की ही नहीं– माँ बनकर व्यक्तित्त्व का विकास न कर पाने की भी हैं।''[३]

यह सत्य है कि मन्नूजी की अनेक कहानियाँ नारी को केन्द्र में रखकर लिखी गई है। किन्तु नारी समाज का एक विशिष्ट अंग है। फिर भी समाज में उसकी स्थिति अत्यंत विषम है । अत: नारी को उसके यथार्थ रूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत करके उसको समाज में योग्य स्थान दिलवाने का प्रयास निश्चय ही प्रशंसनीय कहा जाएगा। नारी जागृति, उसके संघर्ष और समाज में उसकी स्थिति के माध्यम से व्यक्ति, मन, समाज, परिवार तथा इनके संबंधित अन्य अनेक समस्याओं को मन्नू भण्डारी ने अपनी कथाओं में स्थान दिया है। समस्या अथवा विषय वस्तु के आधार पर उनकी कहानियाँ को निम्नवर्गो में विभाजीत किया जा सकता है।

(१) वैयक्तिक (२) पारिवारिक (३) सामाजिक तथा (४) प्रणय संबंधी।

३.२ माता

नारी की सबसे महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी माँ के रूप में होती है। नारी की जिस प्रकार की प्रवृती होगी उसी प्रकार का प्रभाव बच्चे के मन पर भी होता है। क्योंकि बाल्यकाल में अधिक से अधिक समय वह माँ के पास ही रहता है। वह बच्चे को संस्कारित करती है। वही उसका भविष्यकाल होता है। साहित्यकारों ने माँ की महत्ता को साहित्य के माध्यम से अपर किया है।

मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में ''आपका बंटी'' उपन्यास में वात्सल्यमय रूप से लिखा गया है। मन्नूजी के कहानी साहित्य में ''जीति बाजी की हार'', ''मैं हार गई'', रानी माँ का चबुतरा, त्रिशंकु, संख्या के पारकहानी में माता का वातसल्यमय रूप है।

''आपका बंटी उपन्यास में बंटी के पिता अजय की दूसरी शादी करलेने पर मिरा भी उसकी माँ है तथा बंटी की माता शकुन के दूसरे विवाह करलेने पर डॉ. जोशी भी उसके पिता है। नारी के ऐसे रूप भी सामने आये है जिसमें नारी के पर-पुरुष से संबंध है। जिसके कारण वह अपने बच्चों की परवाह न करके अपनी जिन्दगी की परवाह करती है।''[४]

मन्नू भण्डारी की कहानी ''संख्या के पार'' में वात्सल्य भाव के उमड़ने की स्थिति दूसरी हैं। ''संख्या के पार'' की नायिका वैधव्य जीवन जीती है। वह परिस्थितियों के कारण व्याभिचारिणी बन जाती है। वह एक बच्चे की माँ होती है। विधवा होने के बाद उसका किसी से प्रेम संबंध स्थापित हो जाता है और वह घर से भाग जाती है। अपनी छोटी बच्ची को अपने मायके छोड़ जाती है। उससे माता-पिता की इज्जत खराब हो जाती है। उसके माँ-बाप ही बच्ची को प्यार देते हैं, पालते है, पोषते है। काफी वर्षो बाद वह जब बड़ी होती है, तब एक दिन कोई

स्त्री उससे मिलने आयी है जो उसकी माँ है। उसके नाना–नानी उसकी माँ को घर में नहीं आने देते। वह फिर भी घर में आती है। माँ के अपनी बेटी से मिलते ही आँसू बहने लगते हैं। वात्सल्य की वर्षा से दबी हुई भावना फूट पड़ती है। थोड़ी देर मिलने के बाद यह सोचकर कि उसकी बच्ची की जिन्दगी खराब न हो, पाँच का नोट देकर चली जाती है। वह माँ दुनियाँ की नजरों में व्याभिचारिणी होने के बावजूद भी वात्सल्य की भावना को वर्षो दबाकर रखती है। जब ममत्व उसके वश से बाहर हो जाता है, तब वह अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करके माता–पिता से जूझकर बच्ची को देखती है, गले मिलती है।

''जीति बाजी की हार'' कहानी में एकाकीपन मानव स्वभाव के विरुद्ध है तथा नारी में मातृत्त्व की चाह कितनी सहज और स्वाभाविक है इसे अत्यंत रोचक ढंग से लेखिका ने अभिव्यक्त किया है।

आशा, नलिनी और मुरला तीनों कॉलेज के समय की सखियाँ है। तीनों सखियाँ विवाह को बंधन और व्यक्तित्त्व के विकास में बाधक और बच्चों को प्रगती के मार्ग की रुकावट समझती है। पुस्तकें ही उनका सर्वस्व हैं। नलिनी अपने माता–पिता के आग्रह को टाल नहीं पाती और एक प्रोफेसर से विवाह की स्वीकृती दे देती है। विवाह के पश्यात वह अत्यंत प्रसन्न है। एम.ए. के द्वितीय वर्ष में मामा के घर पर आशा का परिचय एक कवि से हुआ। पुस्तकों से अधिक वह कवि में रुचि लेती है और विवाह की स्वीकृति दे देती है। एम.ए. की परीक्षा समाप्त होते ही आशा भी विवाह करके चली जाती है। आशा भी विवाह के बाद प्रसन्न है। आशा को पूर्ण विश्वास है कि मुरला भी उन्हीं का अनुकरण करके शादी कर लेगी। दोनों में शर्त लगती है । आशा के हार जाने पर मुरला को मुँहमाँगी वस्तु देने का वादा किया।

मुरला एक सभा का समापतित्त्व करने इलाहाबाद गयी तो उसकी भेंट आशा से हो गई। दो दिन मुरला उसके यहाँ रही। उसे भरा-पुरा घर बहुत ही अच्छा लगा। आशा की पाँच वर्षीय छोटी लड़की मुरला से खुब हिलमील गई।

आशा के याद दिलाने पर और यह कहने पर कि वह शर्त जीत गई है इसलिए जो माँगना चाहे माँग ले, मुरला आशा की छोटी-बेटी को ही माँग बैठती है।

इस तरह आशा शर्त जीत कर भी अब हार गई।

''रानी माँ का चबुतरा'' कहानी नगरीय परिवेश में आर्थिक दबाव की यंत्रणा को सहन करती, टूटती नारी की है।

नगर शेठ के बेटे पर शीतला माई का प्रकोप हुआ। माँ ने पुत्र की रक्षा के लिए सात दिन तक अन्न-जल ग्रहण नहीं किया। बच्चा बच गया किन्तु रानी माँ की मृत्यु हो गई। नगर शेठ ने अपने बगीचें में रानी माँ का चबुतरा बनवाया। हर पुनम को नगर की औंरते वहाँ दीया जलाती है, और बच्चों के लिए मन्नते मानती है। किन्तु गुलाबी सबके कहने पर भी नहीं जाती।

गुलाबी मेहनत-मजूरी करके अपने बच्चों का पालन कर रही है। पति उसके पसीने की कमाई को शराब में बहा देता। तंग आकर वह उसे घर से निकाल देती है। परिस्थितियों ने उसे चिड़चिड़ा बना दिया है।

गुलाबी पहले कोठरी खोल कर काम पर जाती थी। एक दिन उसका लड़का सरकते-सरकते मोरी में गिर गया किसी ने उसे उठाया तक नहीं। तबसे वह कोठरी में बच्चों को बन्द करके जाती है। लोग उसे कसाइन कहते है तो वह झिझक पड़ती है। उसे कसाइन कहने वालो की दया से वह खूब परिचित है। उनकी सहानुभूती केवल मौखिक है। तमाम विवशताओं, अभावों के होते हुए भी

वह टूटना स्वीकार करती है। झुकना नहीं।

एक दिन गुलाबी भुख और कठोर परिश्रम के कारण बेहोश हो जाती है। दो आदमी उसे उठाकर घर लाते हैं। काफि भीड़ उसके घर पर इकठ्ठी हो जाती हैं। उसकी काकी हवा छटकाने के लिए उसकी चोली ढीली करती है तो एक पुड़िया जमीन पर गिरती है। गुलाबी के काका ने पुड़िया उठाकर देखा तो उस पुड़िया में काँच की दो छोटी-छोटी हरि चूडियाँ और 'शिशु सुरक्षा केन्द्र' की पाँच रुपिये की रसीद थीं। गुलाबी के चरित्र पर कीचड़ उछालने वालों पर क्या बीती होगी ? क्या गुलाबी करुणामयी माँ नहीं थीं ?

रानी माँ और गुलाबी दोनों ही माँ है। गुलाबी के लिए भूख एक बहुत बड़ी सच्चाई है। लेखिकाने इस कहानी में सामाजिक जीवन के आर्थिक पक्ष की एक स्थिति के संदर्भ में यथार्थ का चित्रण किया है, साथ ही नगरजनों के अंधविश्वास को भी उजागर किया है।

३.३. पत्नी

नारी का पत्नी रूप भारतीय परंपरा में निष्ठामय रूप है। हिन्दी साहित्य का मूल केन्द्र स्त्री और पुरुष का पारस्परिक संबंधों का चित्रण रहा है। कहानीकारों की दृष्टि नारी के पत्नी रूप को उजागर करने में अधिक रही है। क्योंकि सबसे अधिक परिवर्तन और नए संदर्भ पत्नी के रूप में अभिव्यक्त हुए है।

मन्नू भण्डारी ''नशा'', ''घूटन'' कहानियाँ में नारी के निष्ठामय रूप का पर्याप्त चित्रण हुआ है। ''बाहों का घेरा'' कहानी में नारी की पत्नी और प्रेमिका की भूमिका में द्वन्द्व एवम् तनाव की स्थिति देखी जा सकती है। ''ऊँचाई'' ''तीसरा आदमी'' कहानियाँ में नारी के ऐसे रूप भी उभरे है जहाँ उसने पत्नी और प्रेमिका दोनों की भूमिकाओं को निद्वन्द भाव से निभाया है।

मन्नू भण्डारी की ''नशा'' की आनन्दी का पति शराबी है। वह स्वयँ नहीं कमाता, अपितु आनन्दी जो कुछ कमाकर लाती है, वह उससे छीन लेता है और शराब पीता है। पति की बुरी आदतों के कारण उसका बेटा घर से भाग जाता है। बेटा बारह वर्षो के बाद माँ-बाप की सुध लेता है। शंकर बेटे के आने की खबर आनन्दी को देता है और उससे पैसा लेकर शराब पीने चला जाता है। आनन्दी सोचती है- ''शंकर आज के दिन भी शराब पीने गया। क्यों नहीं वह सारे मुहल्ले में दौड़ता फिरा ? क्यों नहीं उसने घर-घर जाकर खबर दी कि किशनू आ रहा है ? क्यों नहीं उसके पास बैठकर बात की कि किशनू के आने की तैयारी में क्या-क्या किया जाये ?''[५] किशनू आता है। वह देखता है कि उसका पिता अब भी शराब पीता है। वह माँ को अपने साथ ले जाता है। आनन्दी वहाँ जाकर पति के लिये बेटे और बहू से छिपाकर पैसे कमाती है और अपने पति के पास पैसा भेजती है। पति की आदतें और व्यवहार खराब होने के बावजूद भी पति को छोड़

नहीं पाती ।

''घूटन की प्रतिमा पति की इच्छाओं के आगे अपनी इच्छायें त्याग देती है और घूटन में जीवन जीती हुई वह चाहती है पति के अनुकूल बने, पर उसे जरा भी अच्छा नहीं लगता जो उसके पति को अच्छा लगता है।''[६] पति की अनुपस्थिति में वह अपनी उब और घूटन को दूर करने के लिए माध्यम खोजती है । अंतत: वह चाहते हुए भी अपनी घूटन को दूर नहीं कर पाती । उसका पति साल में एक बार आता है, शराब पीता है । पति के जाने के बाद बाकी सारा समय अकेले बिताती है । वह विरोध इसलिए नहीं करती क्योंकि वह सोचती है- ''यह सामने बैठकर जो पी रहा है, उससे वह नफरत नहीं कर सकती वह उसका पति है उसका वह सर्वस्व है ।''[७]

मन्नू भण्डारी की ''बाहों का घेरा'' में कम्मो अतीत और वर्तमान के प्रेम में मानसिक दृष्टि से द्वन्द्व एवम् तनाव को झेलती है । पति अधिक व्यस्त रहता है इसलिए पति का उसे पूरा प्यार नहीं मिल पाता । पति की अनुपस्थिति में उसे अपने पूर्व प्रेमी का ध्यान आता है, जिसने एक बार उससे कहा था- ''कम्मो तुम्हारे बिना मैं कितना अकेला हूँ, असहाय हूँ। हरक्षण उस दिन की प्रतीक्षा करता हूँ, जब तुम्हारी बाहों के घेरे में बंधकर मेरे सारे संताप दूर हो जायेगे ।''[८] कम्मो अपने पति से ऐसा कुछ नहीं कह पाती और रात को केवल बिस्तर का भागीदार बनकर रह जाती है । वह सारा दिन उदास और खिन्न-सी रहने लगती है ।

बच्चें के साथ दिल तो बहलाया जा सकता है, किन्तु बच्चा पुरुष जैसी अनुभूती तो नहीं दे सकता । उसके जीवन की एकरसता तब टूटती है जब उसे एक दिन शम्मी का पत्र मिलता है, जिसे वह पहले से जानती है, और उसकी रिश्तेदारी भी है । शम्मी के आने पर कुछ दिन अच्छे कट जाते हैं, किन्तु उसके बाद फिर

वही मानसिक अन्तर्द्वन्द्व। वह अपेक्षा करती है कि– ''जब रात को पति के पास जाये तो वह उससे कहे कहाँ इतनी देर कर देती हो ? यहाँ राह देखते–देखते मर गये ? क्या काम रहता है ऐसा भीतर ? पर ऐसा कुछ नहीं होता।''[९] यही कारण है कि उसकी असंतुष्टता इतनी बढ़ जाती है कि वह सोचती है कि आज उसके सामने न माँ का चहेरा उभरता है, न शौलेन का (प्रेमी) ? न मित्तल का (पति) सब चहेरे मिट गये, रह गई सिर्फ एक चाह दर्दनीयताह, एक ललक कि कोई हो, ''कोई भी जो उसे कसकर अपने में समेट ले, जिसकी आँखों में प्यार हो, अपूर्णता हो कम्मो को पाने की पियासा हो, और वह अपने को पूर्ण बनाने के लिये वह कम्मो को इतना मीचे, इतना मींचे कि उसकी हड्डियाँ तक चरमश जाये। उसका दम घूट जाये।''[१०] कम्मो का द्वन्द्व एवम् तनाव इस सीमा तक बढ़ जाता है कि वह न प्रेमी की बन पाती है और न ही पति की अपितु अपने बच्चे में आश्रय ढूँढने लगती है।

३.४ प्रेयसी

नारी का मनभावन रूप प्रेमिका का है। प्यार का चरम उत्कर्ष विश्वास में है। विश्वास की प्रबल अनुभूति होती है तब मनुष्य सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार हो जाता है। सामान्यतः नारी विवाह से पूर्व पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाती है। जिसमें कभी स्वच्छन्दता, कभी प्रतिबंध और कभी अनिवार्यता के भाव निहित रहते हैं।

मन्नू भण्डारी की ''क्षय'' कहानी में नारी को पारिवारिक जिम्मेदारियों के प्रति संघर्ष करते हुए देखा जा सकता है। ''घूटन'' कहानी की मोना चाहकर भी अपने प्रेमी को नहीं पा सकती। वह अपने परिवार के बंधनों के कारण अपनी भावनाओं का दमन करती है। एक घूटन उसके सारे जेहन में व्याप्त हो जाती है। ''वह तनाव और द्वन्द्व की इस स्थिति तक पहुँच जाती है कि जिस के अलसाये अंग तड़प रहे थे, कसकमसा रहे थे किसी की बाहों में जकड़ जाने के लिए।''[११] मन्नू भण्डारी की ''यही सच है'' की दीपा अतीत और वर्तमान के प्रेम-संबंध के द्वन्द्व में जीवन जीती है। लतिका के अतीत का साथी मर चुका है, किन्तु दीपा का अतीत साथी भी और वर्तमान। उसके सामने एक ओर अपने वर्तमान प्रेमी संजय का प्रेम है और दूसरी ओर अतीत के प्रेमी निशीथ का। कभी वह अपने अतीत के प्रेम को लेकर सोचती है। ''अठारह वर्ष की आयु में किया हुवा प्यार भी कोई प्यार होता है भला !.....उसमें आवेश रहता है पर स्थायित्व नहीं गती रहती है पर गहराई नहीं। जिस वेग से आरंभ होता है जरा-सा झटका लगने पर उसी वेग से दूर भी जाता है।''[१२] जब उसका निशीथ से सामना होता है तब उसे लगता है यही प्रेम सच्चा प्रेम है और वह निशीथ के बारे में सोचती है।

''तुम कह क्यों नहीं देते निशीथ, कि तुम आजभी मुझे प्यार करते हो, तुम

मुझे सदा अपने पास रखना चाहते हो, जो कुछ हो गया हो, उसे भूलकर तुम मुझसे विवाह करना चाहते हो। कह दो निशीथ, कह दो।.... यह सुनने के लिए मेरा मन अकुला रहा है, छटपटा रहा है। मैं बुरा नही मानूँगी यह सुनने के लिए मेरा मन अकुला रहा है, छटपटा रहा हैं। मैं बुरा नहीं मानूँगी, जरा भी बुरा नहीं मानूँगी।''[१३] उसे लगता है कि ''प्रथम प्रेम ही सच्चा प्रेम होता है, बाद में किया गया प्रेम तो अपने को भुलाने-भरमाने का प्रयास मात्र होता है.....।''[१४] जब वह संजय के पास होती है तो उसे लगता है, ''यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सत्य है, वह सब झूठ था, मिथ्या था, भ्रम था .....।''[१५] इस प्रकार वह अतीत और वह वर्तमान के प्रेम में लटकी रहती है। मन्नू भण्डारी की ही कहानी ''एक बार और'' की बिन्नी अतीत और वर्तमान के प्रेम में द्वन्द्व का सामना करती है। बिन्नी कुंज से प्रेम करती है, किन्तु कुंज का किन्हीं कारणों से मधु से विवाह होना निश्चित हो जाता है। इसलिए वह बिन्नी से विवाह करने में अपनी असमर्थता महसूस करता है। बिन्नी कुंज से ही विवाह करना चाहती है। उसके माँ-बाप, भाई-बगैरा भी उसकी ईच्छाओं के आगे झुके रहते हैं। बिन्नी हंमेशा कुंज की यादों में रहती है। उसका मोहभंग तब होता है, जब वह कुंज की ओर से अपने आपको पूरी तरह अलग पाती है, तभी वह महसूस करती है- ''जो कोमल तंतु उन दोनों को वर्षो से बाँधे चला आ रहा था, आज जैसे वह टूट गया है। उन दोनों के बीच 'कुछ' था, जो मर यगा था।''[१६] फिर भी उसके मस्तिष्क में कुंज की स्मृतियाँ सदैव छायी रहती है। उनके मन में द्वन्द्व कुंज के मना करने पर उभरता है। वह निर्णय नहीं कर पाती उसके घर-वाले कहीं और शादी करने लिए जोर डालते हैं। वे उसके पास लड़के को भेजते हैं। वह नन्दन को न चाहते हुए भी उससे मिलती है। एक ओर वह चाहती है कि वह कुंज से शादी करे, किन्तु दूसरी ओर पास बैठे नन्दन के बारे में

सोचती है और शायद रह-रह कर उसकी नजर नन्दन की बायीं कनपटी पर बने घाव के नीशान पर चली जाती है। वह सोच रही है- ''किस चोट का निशान होगा- यह निशान कैसे लगा होगा ?.....।''[१७] वह नन्दन के साथ कुछ मुलाकातों में यह महसूस करती है की शायद कुंज उन मुलाकातों से दूर होता गया है, किन्तु कभी-कभी नन्दन में कुंज जैसी बातें देखकर पुनः अतीत की स्मृतियों में खो जाती है और वह पास बैठे नन्दन की परवाह न करते हुए कुंज के बारे में सोचती है, और अन्त में वह न तो नन्दन को चुन पाती है और नहीं कुंज की हो पाती है। इस तरह मनःस्थिति द्वन्द्वमय बनी रहती है और वह दो पाटों के बिच उलझ कर रह जाती है।

३.५ बहन

माँ के बाद नारी को जिस रुप में सम्मान प्राप्त है वह बहन का रुप है। बहन त्याग की मूर्ति होती है। एक माँ के संतान होने के कारण बचपने में समान वातावरण मिलता है।

मन्नू भण्डारी की ''क्षय'' और ''नकली हिरे'' कहानियाँ में बहन की मनः स्थितियाँ एवम् जटिलताओं को देखा जा सकता है। ''क्षय'' कहानी में नागरीय परिवेश में आर्थिक दबाव में पिसती हुई नारी के मूल्यों के क्षय होने की व्यथा है। क्षय-ग्रस्त पिता की देखभाल करती कुन्ती के टूट ने की व्यथा है।

वह कुन्ती जो अपने भाई का एक वर्ष बचाने के लिये, पिता के आग्रह के बावजूद सिफारिश करना स्वीकार नहीं करती थी। आज परिस्थितियों के दबाव में आकर सावित्री की ट्यूशन करती है। उसे पास कराने के लिए सिफारिश करने जाती है।

वॉयलिन बजाना कुन्ती को बहुत अच्छा लगता है। वह जब भी खिन्न होती, तब आकाश की छत के नीचे वॉयलिन के तारों मे से निकलती संगीत की स्वर लहरियों में अपने अवसाद को मिटा देती। किन्तु अब कुन्ती चुपचाप बड़े -बड़े वॉयलिन को देखती है तो आँखों की कोरों से आँसू ढुलक पड़ते हैं।

कुन्ती इस संघर्ष में बुरी तरह टूटती जा रही है। सावित्री के स्कूल से लौटते समय कुन्ती को बड़े जोर से खांसी आई। एकाएक कुन्ती को लगा कि उसकी यह खांसी, यह खोखली-खोखली आवाज पापा की खांसी से कितनी मिलती जुलती है.....हूबहू वैसी ही तो हैं। ''सहज कर उससे उसने गाडी के शीशें में से देखा कहीं उसके चेहरे पर भी तो वैसा कुछ नहीं जो उसके पापा के चेहरे पर...।''[१८]

''नकली हिरे'' एक प्रतीकात्मक कहानी है। सरन और इन्दु सगी बहनें हैं। सरन को अपने धनी पति का अभिमान है। वह भौतिक सुख-सुविधाओं में जीवन जीने में सार्थकता समझती है। इस के विपरीत छोटी बहन इन्दु एक साधारण स्थिति वाले स्कूल मास्टर से विवाह कर लेती है। इन्दु अपनी बहन कुंदन के सौंदर्य को हैन्डलुम की साडी में लिपटा देखकर वह उसके प्रति द्रवित हो उठती है। किन्तु इन्दु और उसके पति का परस्पर प्रेम देखकर जो प्रतिदिन नीले लिफाफों के माध्यम से अभिव्यक्त होता था। सरन को अपनी उपेक्षीत स्थिति का बोध होता है। उसके पति बिजनेस के सिलसिले मे मुंबई जाते रहते हैं, और वहाँ अनिता से संबंध रखते हैं। ''जिन भौतिक सुख-सुविधा की वस्तुओं को हीरे समझकर उसने एकत्रित किया था वे केवल सादे काँच के टूकडे हैं, नकली हीरे हैं।''[१९]

आज तक अपने पति को पहचानने में वह गलती करती आई है। इन्दु वैभव के अभाव में भी भरी-पूरी है और सरन वैभव के बीच भी अकेली है। इस तरह वैभव के बीच अकेली पत्नी की स्थिति को मन्नूजी ने इस कहानी में अंकित किया है। साथ ही आधुनिक जीवन के यथार्थ परिवेश को भी बड़ी नवीनता के साथ उभारा गया है। आधुनिक स्त्रियों की 'सोश्यल-लाइफ', 'एक्टीविटीज' 'कल्चर' और इन सब के बीच भी नारियाँ दया के पात्र हैं। कृत्रिमता और दिखावे के पीछे की खोखली जिन्दगी का चित्र उपस्थित करती है।

३.६ विधवा

प्राचीन काल से ही समाज में विधवाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय रही हैं। बंगाल कि बाल-विधवाओं को काशी लाकर छोड़ देना। ''दक्षिण भारत और महाराष्ट्र में विधवाओं का सिर मुंडाकर उनका सौंदर्य छिन लेना और लगभग पूरे भारत में उन्हें बिना आभूषण, बिना श्रृंगार, बिना रंगीन वस्त्र तक धारण किये एकदम सादे कहीं-कहीं कुरुप वेश में रहने के लिये मजबूर करना आम प्रथा रही है।''[२०]

सामाजिक तौर पर जब नारी की यह स्थिति है तो परिवार में वे कैसे अपना जीवन बिताती होगी ? इस के बारे में तो कहना ही कठीन है। पारिवारिक मांगलिक अवसरो पर भी उनकी उपस्थिति को अपशुकन मान उन्हें वहाँ से दूर रखा जाता था। ऐसे समय उपस्थित रहने या किसी चिज को छू लेने पर उन्हें सार्वजनिक अपमान और प्रताडना का भी शिकार भी होना पड़ता था। अंधविश्वासी परिवारों में उनके हाथ का छुआ खाने पर भी प्रतिबंध रहा है, इतना ही नहीं उनक अच्छे खाने-पीने पर भी आपत्ति की जाती रही है। यदि विधवा के कोई संतान रही, वह भी पुत्र तो लोग उसे फिर भी कुछ सम्मान देते थे। नि:संतान के सुख-दु:ख की चिंता करने वाला कोई नहीं था।

वर्तमान परिवार में भी कुछ अधिक सुधार दिखाई नहीं देता। आज भी परिवार में उसे तिरस्कृत होकर ही जीना पड़ता है। घर से किसी प्रकार की सहानुभूति उन्हें प्राप्त नहीं होती। क्योंकि उसके पाप-कर्मो के कारण उसके पति की मृत्यु हुई है।

जब नारी अपने आपको पुरुष से मुक्त पाती है तब वह भी अपने अनुरुप जीवन जीना प्रारंभ कर देती है। वह अपने व्यक्तित्त्व का चुनाव स्वयं करती है।

विधवा हो जाने के बाद नारी को यह स्वतंत्रता रहती है कि वह या तो पुर्नविवाह कर ले या पति की स्मृतियों में जीवन काटे और आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बने। जब वह पुर्नविवाह न करके आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी हो जाती है तब उसका व्यक्तित्त्व अनेक मोड़ ले लेता है। वह या तो यौन-संबंधों की दृष्टि से स्वच्छन्द हो जाती है या दबंग हो जाती है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में विधवा के दबंग रूप का चित्रण भी किया गया है।

मन्नू भण्डारी की कहानी ''रानी माँ का चबुतरा'' की गुलाबी अपने बच्चों के साथ रहती है और नौकरी करती है। जब वह काम पर जाती है तब बच्चे सारा दिन अकेले रहते हैं। पहले तो वह बच्चों को बाहर खेलने के लिए छोड़ जाती थी। जबसे उसने देखा कि मुहल्ले में कोई भी उसके बच्चों की परवाह नहीं करता तब से उसके मन में भगवान के प्रति, लोगों के प्रति, और जिन्दगी के प्रति आक्रोश उत्पन्न हो जाता है और वह किसी चीज को नहीं मानती। जहाँ वह रहती है वहाँ रानी माँ का चबुतरा है जिस पर दिया जलाने से लोगों की मनोकामना पूरी हो जाती है। यहाँ पर दूर-दूर से लोग आते है पर गुलाबी इन सब बातों को नहीं मानती। वह अपने बच्चों को प्रतिदिन घर में बन्द कर जाती है और वे सारा दिन अन्दर ही रोते रहते हैं। मुहल्ले के लोगों की उससे बात करने की हिम्मत नहीं पड़ती। वह किसी के उपदेश या सलाह देने पर बरस उठती है चाहे वह पुरुष हो या स्त्री। वह किसी के यह कहने पर कि वह बच्चों को सारा दिन घर में बन्द करके मार डालेगी तब वह प्रत्युत्तर में कहती है- ''मार डालूंगी तो अपने बच्चों को... तुम क्यो मेरे बच्चों में सूख रही है। खबरदार जो आगे से नाम लिया मेरे बच्चों का। बड़ी धर्माला बनी बैठी है...।''[२१]

गुलाबी रानी माँ के चबुतरे पर दिया नहीं जलाती। मुहल्ले की औरतें

कोशिश करके कहती है कि दिया जलाये किन्तु गुलाबी कहती है- ''तुम्हीं माँ बन-बनकर लाड-लड़ाओं अपने बच्चों के और दिया जलाओ चबुतरे पर। मैं तो कसाइन हूँ। जब ये नाशपीटे मर जायेगे तो उस दिन इकट्ठा ही दिया जलाउँगी। बड़ी सब गुलाबी की चिन्ता कर-करके मरी जा रही है चेडैले...।''[२२]

मुहल्ले के एक व्यक्ति गोपाल के यह कहने पर कि अगर कोई कहे तो वह गुलाबी को उठा लायें, वह कहती है- ''आया है बड़ा गुलाबी को ले जाने वाला। हाथ तो लगा कर देख ? असल मरद का बच्चा है तो आ जाना....।''[२३]

पति के अभाव, बच्चे की जिम्मेदारी, मुहल्ले के लोगों की लापरवाही अर्थ की दृष्टि से स्वावलम्बन सभी मिलकर उसे दबंग बना देते हैं। किन्तु वह अन्दर ही अन्दर काफी रुठ भी जाती है क्योंकि वह अपनी जिन्दगी से अकेले संघर्ष करती है। शैलेष भटियानी की कपिला भी दबंग रूप में जीवन जीती है। वह संघर्ष करते-करते एक दिन अपने जीवन का सहारा ढूँढ लेती है।

नारी के विधवा रूप को स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्यात परंपरा से अलग रूप में ही चित्रित किया गया है। विधवा के संबंध में आज प्राचीन धारणायें बदल गई है , इसलिए उसकी स्थिति स्वतंत्रता पूर्व जैसी नहीं रही है। यही कारण है कि वह स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में परंपरा से भिन्न रूप में ही उभर कर आयी है। उसकी मनः स्थिति में बदलाव आया है।

३.७ निष्कर्ष

मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी के विविध रूप का चित्रण है। उनके कथा-साहित्य में स्थापित और आरोपित जीवन-दर्शन के स्थान पर प्रमाणित परिवेश और यथार्थ जीवनानुभवों में अपनी जीवन दृष्टि को विकसित किया है। उनके नारी चरित्र वैयक्ति और सामाजिक परिवेश की सीमा में आबद्ध यथार्थ के भोक्ता है और इसी यथार्थ भोगी चरित्र को ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करना ही मन्नूजी का अभिष्ट रहा है। काम, प्रेम, वात्सल्य, स्वातंत्रय, स्वाभिमान, साहचर्य अर्थ, दायित्त्व तथा समायोग्य आदि मूल्यो के विकास में भी मन्नू मण्डारी ने इस मनोविज्ञान का आधार फलक ग्रहण किया है। सामाजिक स्वास्थय को विकृत करने वाली विकृतियाँ, आर्थिक विडम्बनाओं और पारिवारिक विषमायोजन के कारणों और परिणामों का प्रभावी चित्रण किया है।

प्रकरण : ३ संदर्भ सूचि

(१) कृष्ण वल्लभ द्विवेदि (सं.) : हिन्दी विश्वभारती : भाग-९ । पृ. : ३५४७

(२) डॉ. धनंजय : आज की हिन्दी कहानी १९६९ । पृ. : ९६

(३) राजेन्द्र यादव - एक दुनिया समानान्तर १९६६ । पृ : ३७

(४) मन्नू भण्डारी : आपका बंटी । पृ. : २५

(५) मन्नू भण्डारी : यही सच हैं । पृ. : १००

(६) मन्नू भण्डारी : तीन निगाहों की एक तस्वीर । पृ. : ७५

(७) मन्नू भण्डारी : तीन निगाहों की एक तस्वीर । पृ. : ४८

(८) मन्नू भण्डारी : एक प्लेट शैलाब । पृ. : १०३

(९) मन्नू भण्डारी : एक प्लेट शैलाब । पृ. : ११३

(१०) मन्नू भण्डारी : एक प्लेट शैलाब । पृ. : ११४

(११) मन्नू भण्डारी : तीन निगाहों की एक तस्वीर 'घूटन' । पृ. : ४६

(१२) मन्नू भण्डारी : यही सच है । पृ. : १४९

(१३) मन्नू भण्डारी : यही सच हैं । पृ. : १६३

(१४) मन्नू भण्डारी : यही सच हैं । पृ. : १६७

(१५) मन्नू भण्डारी : यही सच हैं । पृ. : १७१

(१६) मन्नू भण्डारी : एक प्लेट शैलाब । पृ. : ६४

(१७) मन्नू भण्डारी : एक प्लेट शैलाब । पृ. : ७५

(१८) मन्नू भण्डारी : यही सच हैं । पृ. : २६

(१९) मन्नू भण्डारी : यही सच हैं । पृ. : ३२

(२०) श्रीमती आशारानी व्होरा : नारी शोषण : आईने और आयाम । पृ. : ३४

(२१) मन्नू मण्डारी : यही सच है : रानी माँ का चबुतरा । पृ. : १३२

(२२) मन्नू मण्डारी : यही सच है : रानी माँ का चबुतरा । पृ. : १४०

(२३) मन्नू मण्डारी : यही सच है : रानी माँ का चबुतरा । पृ. : १४०

प्रकरण-४.

४. मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में विशिष्ट नारी पात्रः

४.१. उपन्यास के विशिष्ट नारी पात्र

४.१.१. एक इंच मुस्कान : रंजना - अमला

४.१.२. महाभोज : रुकमा

४.१.३. स्वामी : सोदामिनी

४.१.४. आपका बंटी : शकुन (ममी)

४.२. कहानी के विशिष्ट नारी पात्रः

४.२.१. घूटन : प्रतिमा

४.२.२. नई नोकरी : रमा

४.२.३. एखाने आकाश नाई : लेखा

४.२.४. उँचाई : शिवानी

४.२.५. नशा : आनंदी

४.२.६. एक बार और : बिन्नी

४.२.७. एक कमजोर लड़की की कहानी : रूप

४.२.८. गीत का चुम्बन : कनिका

४.२.९. एक प्लेट सैलाब : कम्मो

४.२.१०. तीन नीगाहों की एक तस्वीर : चित्रा - अरुणा

४.२.११. रानी माँ का चबुतरा : गुलाबी

४.२.१२. क्षय : कुन्ती

४.२.१३. त्रिशंकु : तनु

४.२.१४. सयानी बुआ : सयानी बुआ

४.२.१६. जीति बाजी की हार : आशा, नलीनी, मुरला

४.२.१७. मजबूरी : रमा

४.२.१८. अकेली : सोमाबुआ

४.३ निष्कर्ष

प्रकरण-४ मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में विशिष्ट नारी पात्र:

४.१ उपन्यास के विशिष्ट नारी पात्र

मन्नूजी के सभी नारी और पुरुष पात्र आधुनिक युग की विषम एवम् संघर्षशील परिस्थितियों में जन्में मानव है। न ही वे आदर्शों और चमत्कारों से पूर्ण देव हैं और न ही बुराइयों से भरे दानव ही। ये सभी पात्र मानवीय संवेदनओं अच्छाईयों, बुराइयों, कमज़ोरियों और शक्तियों से परिपूर्ण मानव-मात्र है। मन्नूजी की प्रवृति मानव को उसके सहज, स्वाभाविक, शाश्वत रूप में प्रस्तुत करने की रही है।

'महाभोज' के अतिरिक्त उनकी प्राय: सभी कृतियों में पात्रों की संख्या कम ही कम रखी गई है। उनके पात्रों में वर्ग प्रतिनिधि पात्र भी है और व्यक्ति-वैचित्र्यपूर्ण पात्र भी। किन्तु मन्नूजी की मूल संवेदना व्यक्ति विशेष पर ही अधिक केन्द्रित रही है।

मन्नू भण्डारी की पात्र योजना पर डॉ. शिवशंकर पाण्डेय का यह वक्तव्य उपयुक्त जान पड़ता है- ''पुरुष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्रों की सच्चाइयों का इमानदारी के साथ उद्‌घाटन हुआ है। इनमें यदि नारी के प्रति पुरुष वर्ग की भोगवादी पारंपरिक दृष्टि है तो अपनी-अपनी मजबूरीयों में सांस लेती नारियाँ भी हैं, जो अनिश्चय के साथ ही संपूर्ण जिन्दगी को न जी पाने का संत्रास भोगती है। इनके अधिकांश पात्र मध्यम वर्ग से लिए गए है। अतीत से छुटकारा पाने की बेचेनी इनकी नियति है।''[१]

४.१.१ एक इंच मुस्कान -(१) रंजना

रंजना एक साधारण किन्तु शिक्षित और भावुक भारतीय नारी है। अमर को

वह हृदय की अनंत गहराईयों से प्रेम करती है। अमर के प्रेम व उसके हित के लिए व अपना सबकुछ समर्पित करने के लिए सदैव वह तत्पर रहती है। वह अमर के साथ विवाहसूत्र में बंधने का स्वप्न संजोऐ हुए है। लेकिन जब कलकत्ता से लौटकर अमर विवाह से इन्कार करता है तब रंजना का हृदय टूट जाता है। अमर को पाने की लालसा उसमें किस हद तक है, इस तथ्य की पृष्टि इस बात से ही हो जाती है कि जब टण्डन दम्पति के समझाने पर अमर विवाह के लिए राजी हो जाता है, तो वह अपनी उपेक्षा के अपमान को भुलकर तुरंत उससे विवाह कर लेती है।

अमर के प्रेम में पूर्णत: सर्मपित होते हुए भी रंजना में अधिकार सजगता और आत्म-संमान का जो भाव है वह आधुनिक नारी की जागृतता का प्रतीक है। नारी सुलभ भावुकता, कोमलता, ईर्षा, द्वेष, मोह, प्रेम आदि के भाव रंजना में है तो दृढ़ता और स्वाभीमान भी कम नहीं हैं। अमर के प्रेम में आकंठ डूबी रंजना का यह सर्मपित भाव देखिए वह अमर से कहती है, ''मैने तो हंमेशा यही चाहा है, मेरा हर प्रयत्न इसी ओर रहा है कि तुम खूब लिखो, चारों और तुम्हारा यश फैले। तुम्हें बनाने में मैं मिटती चली जाऊँ, मिटती चली जाऊँ।''[२]

वहीं रंजना जब देखती है कि अमला के मोहपाश में बंधा हुआ अमर उसकी उपेक्षा कर रहा है तो वह तुरंत उसे छोड़कर चली जाती है। यही नहीं वह अमर को अपने प्रति इस दुर्व्यवहार का दोषी मान कर उसे उलाहना व शाप देने से भी नहीं चुकती, देखिए- ''सोच रही हूँ, इस अंतीम बेला में तुम्हारे लिए भी तो कुछ लिखूं,.... पर क्या इस रीत से मनमें कुछ भी तो नहीं है तुम्हारे लिए.....न प्यार ..... न धृणा..... झूठ न बोलुं तो रोम-रोम से दुराशीष ही नीकल रही है। ईश्वर करे तुम भी जीवन भर यों ही जलो.....। जलो और जानों की असफल प्यार

का दर्द क्या होता है.... किसी की आत्मा की कचौट कैसी होती है ।''[३]

मन्नूजी ने रंजना को एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में नहीं बल्कि नारी के शाश्वत रूप रूप में चित्रित किया है। यह नारी न देवी है, न दानवी अपितु एक मानवी है । वह प्रेम वंचीता और प्रिय पात्र द्वारा वंचीता रंजना के मन की पीड़ा और उससे उपजी दुर्भावना को व्यक्त करके मन्नूजी ने अपने मनोवैज्ञानिक ज्ञान से सिद्ध किया है ।

रंजना की परिस्थिति में उसकी यह मानसिकता अत्यंत ही स्वाभाविक और उचीत है । चोट खाते-खाते जब व्यक्ति उसकी पीड़ा को सहन करने मे असमर्थ हो जाता है तो वह भले ही प्रत्याघात न करे, पर चोट करने वाले के प्रति दुर्भावना और आरोप तो नीकलने लगता है ।

मानव मन के इस आंतरिक भाव को रंजना ने भाभी को लिखे गए एक पत्र द्वारा व्यक्त किया है ,''मन तो यही करता है, इस अमला के हाथो अमर की बरबादी हो..... किसी निर्दोष का जीवन मिट्टी मे मीलाने का पूरा फल इन्हें मीले । भाभी इस दुर्भावना के लिए क्षमा करना । पर क्या करुँ । मैं कोइ देवी नहीं, मानवी हूँ ।''[४]

अपमान की पीड़ा, आवेश, ईर्षा, द्वेर्ष और क्रोध के बावजूद नारी की भावुकता, कोमलता, ममता, संवेदनशीलता और त्याग भावना उभर आए बिना नहीं रह पाती । अमर के समस्त अपराधों के बावजूद भी रंजना उसे प्रेम करती है। प्रिय पात्र का हित और उसके सुख समृद्धि की कामना किए बिना नारी नहीं रह पाती ।

रंजना के द्वारा दुर्भावना व शाप दिलवाने के तुरंत बाद उसकी कोमल भावनाओं का प्रमाण यह कहकर दिलवा दिया है कि ''मन की सारी दुर्भावनाओं

के बावजूद अनुरोध यहीं है की आप जैसे भी हो अमर को उसके प्रभाव से बचाइए। उसकी साधना और उसके सुख के लिए मैं छोड़ आई पर अब चाहती हूँ वह कुछ बने, कुछ लीखे। नहीं तो मेरे प्यार की तरह मेरा यह त्याग भी निरर्थक हो जाएगा।''[५]

इस प्रकार नारी की उपेक्षाजन्य पीड़ा, अपमान, विवशता, असफल प्रेम के दर्द को रंजना में देखने को मिलता है। नारी हृदय के सभी भावों जैसे- ईर्षा ममता, अतिशय भावुकता, प्रेम-आह और संवेदनशीलता एक साथ देखने को मिलती है वही आधुनिक नारी की झलक भी जैसे- जागृति, स्वतंत्रता, स्वाभीमान दृढ़ता और स्वावलंबन भी उसके चरित्र में स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है।

रंजना एक सीधी-सादी-सरल-गंभीर और भावुक नारी है। उसमें घीरता-गंभीरता और ठहराव है।

४.१.१ एक इंच मुस्कान -(२) अमला

मन्नूजी ने रंजना और अमला दो नारी पात्रों को नदि के दो किनारों की तरह वर्णित किया है। अमला एक आधुनिक अशांत और रहस्यमयी नारी है। उसका मन अस्त-व्यस्त, चंचल और अशांत रहता है। वह स्वयं भी नहीं जानती कि वह क्या चाहती है। उसके अपनो ने उसे ठुकराया है और समाज ने उसे अनेक चोटें पहुचाईं हैं। पति द्वारा त्याज्य होने पर भी इस रहस्यमयी नारी में कही भी हीन भावना, कचौट अथवा अपमान का दंश नहीं दिखता। शायद नारी सुलभ ईर्षा भाव से रंजना यह कहती है कि ''पति इसे त्यागा और यह पुरुषों के साथ खिलवाड करके मानों इसका प्रतीकार ले रही है। अपनी इस मुस्कान के जादू से यह न जाने कितनों को बरबाद करेगी। सब कुछ भी स्वभाविक है। जब मनुष्य स्वयं बरबाद होता है तो, वह चाहता है कि सारी दुनिया को बरबाद कर दें। फिर

स्त्रियों में यह भावना प्रबल होती है।"[६]

अमला अपने जीवन में आए हर पुरुष को अपने द्वारा प्रभावित देखना चाहती है। पुरुषों पर अपने व्यक्तित्त्व और लावण्य की एक विशिष्ट छाप छोड़ने के लिए ही उसने मुस्कुराने की एक विशिष्ट मुद्रा को आयास ग्रहण कर लिया है। अमला की इस मुस्कुराहट का प्रभाव उसके संपर्क में आने वाले पुरुष पर अपेक्षित रूप से होता है। सभी पुरुष मानों इस रहस्यमयी मुस्कान के जादूई जाल में बंध कर रह जाते हैं।

इस विशिष्ट मुस्कान ने उसके व्यक्तित्त्व को एक गरिमा और अतिरिक्त दृढ़ता प्रदान कर दी है। पुरुष तो पुरुष स्त्रियाँ भी इस विशिष्ट मुस्कान को नजर अंदाज नहीं कर पाती। इसका व्यक्तित्त्व, बात करने का लहजा, चाल-ढाल सभी बहुत आकर्षक है। अमला ने अपने जीवन और व्यक्तित्त्व के चारों ओर एक रहस्यमय आवरण की सृष्टि कर ली है। ताकि कोई भी व्यक्ति उसके अंतर के दर्द और जीवन की सच्चाई को न जान सके। समाज के परंपरागत संस्कारों में उसकी तनिक-सी भी आस्था नहीं है। वह अपने अहम् में जीती है। इस कारण वश वह अपने संपर्क में आए सभी को अपने से प्रभावित देखना चाहती है। एक (पुरुष) पति द्वारा त्यागी जाने पर वह मानों सभी पुरुषों पर विजय पाने के लिए उत्सुक और बेचैन रहती है। उसकी वासना प्रेरित मनोः ग्रंथीयाँ उसे अपने संपर्क में आने वाले प्रत्येक पुरुष को साधन बनाने के लिए प्रेरित करती है। वह अमर, कैलाश मेजर कपूर, चावला तथा महेरा आदि सभी पुरुषों को वह अपने रहस्यमय व्यक्तित्त्व और विचित्र मुस्कान से प्रभावित पाकर वह आत्मसंतोष अनुभवती है।

अपने विचार और अपनी मान्यताओं को दूसरों पर थोपनें की वृत्ति भी उसकी कुंठा को व्यक्त करती है। जब वह देखती है कि अमर रंजना से प्रेम करता

है और उससे विवाह करना चाहता है तो वह उसके कलाकार को चुनौती देकर उसे यह विवाह करने से रोकना चाहती है। वह अमर को पत्र में लिखती है, ''हो सकता है रंजना तुम्हारे जीवन की पूरक हो, तुम्हे उससे प्यार हो, फिर भी में यहीं कहूँगी उससे विवाह न करना। विवाह को तुम जैसा व्यक्ति भी आवश्यक समझे इतना महत्त्व दें, यह बात गले नहीं उतरती। मैं तो सोचती हूँ विवाह केवल एक बंधन है, एक फंदा है, जो प्यार का गला घोंट देता है। विवाह कर लोगे तो तुम मर जाओगे वह मर जाएगी, तुम लोगों का प्यार मर जाएगा। तुम्हारे जीवन में रह जाएगा एक मानसिक तनाव, और उसके जीवन में रह जाएगी एक अविरत अश्रृधारा।''[७]

अमला को स्वयं दाम्पत्य जीवन का कटु अनुभव हो चुका था अतः विवाह संस्था में उसकी आस्था खत्म हो चुकी थी। वह अमर को सिर्फ रंजना का हो के रहना भी नहीं चाहती और खुद क्या चाहती है उसका भी उसे पता नहीं है। वह सिर्फ इतना ही चाहती है की उसके संपर्क में आए सभी उसके संमोहमें बँधे रह जाए। अमला की यह भावना उसके अकेलेपन और असुरक्षा के भाव से प्रेरित दिखाई पड़ती है।

अमला की कुंठीत भावनाओं ने उसे मानसिक रूप से अशांत, उद्वेलित और व्याकुल बना दिया है। रंजना के व्यक्तित्त्व से दूसरी ओर अमला का व्यक्तित्त्व आंदोलित, उद्विग्न और अशांत सा प्रतीत होता है। वह अमर से कहती भी है की ''कैसा भयंकर रूप है आज समुद्र का। मुझे तो समुद्र का यहीं रूप अच्छा लगता है– अशांत, अद्वेलित भीषण गर्जना करता हुआ...।''[८] अमला की इस पसंद में उसकी मानसिक दशा का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। पुरुष आकांक्षा और दमित वासनाओं ने उसे कुंठामय पीड़ा से भर दिया है। पुरुष प्रेम और अपनी

आकांक्षाओं की भूल को भी वह स्वीकार करती है। वह कहती है कि- ''आजकल में अपने जीवन में पुरुष का अभाव महसूस करती हूँ- एक एसे पुरुष का जो वहशियों की तरह मुझे प्यार करे...सब चीजों से अलग करके प्यार करें.....केवल मुझे, मेरे इस शरीर को, मन को, आत्मा को ।''[९]

मानव की शाश्वत ईच्छाओं को इसके चरित्र के द्वारा मानवीय मनः स्थिती का दर्जा दिया गया है। वह कहती है कि ''कोई भी पुरुष मेरे जीवन का पूरक हो यह मेरे अहम् को सह्य नहीं, और समझलो यह अहम् अमला का पर्याय है।''

अपने व्यक्तित्त्व और जीवन को वह एक सीने के आवरण से ढककर रखना चाहती है। ताकी कोई भी उसके जीवन की सच्चाईयों तक या उसकी कमज़ोरियों तक न पहुँच सके। अमला की इस प्रवृत्ती ने उसके जीवन को रहस्यमय सा बना दिया है। शायद वह स्वयं अपनी इस रहस्यमयता का भेद पूरी तरह से नहीं पा सकी थी। अपने मन को स्वयं ही नहीं पहचान पाने की आकुलता में ही शायद आत्म हत्या करने के लिए प्रेरित किया हो।

४.१.२ महाभोज - रुकमा

रुकमा बिन्दा की पत्नी है और वह भी अत्याचार की लड़ाई में थी। बिसेसर रुकमा का गुरु था। दोनों में अगाध स्नेह संबंध था। बिसेसर के शिक्षा के प्रभाव के कारण ही रुकमा विवाह के बाद शहर नहीं गई और अपने पति को भी गाँव में ले आई। बिसेसर को जब जेल हुई तब सबसे ज्यादा दुःख रुकमा को ही हुआ था। बिसेसर के अभियान में बिन्दा रुकमा के कारण ही आया था। किन्तु जब बिसू की हत्या हो गई तब उसका नारी कोमल हृदय सहमा-सा रह गया। वह बदमीजाज और बदजबान है पर उपर और अंदर से पूरी कंचन जैसी है। वह बिसू की खरी चेली है। रुकमा में नारीसहज कोमल भावनाओं का पर्याप्त आयाम है।

भारतीय नारी के लिए अपना पति-परिवार ही सब कुछ है और उसकी रक्षा के लिए उनकी चिंता और आशंका भी आ जाती है। जो रुकमा में बड़ी कुशलता से आ गई है।

४.१.३ स्वामी - सोदामिनी (मीनी)

मीनी एक विशिष्ट व्यक्तित्त्व की स्वामिनी है। वह अल्हड, चंचल और स्वाभीमानी तो है ही, प्रखर बुद्धिशालिनी और समझदार भी है। माँ के तीव्र विरोध के बावजूद भी मामा ने उसे उच्च शिक्षा दिलवाई। उसे बेहद लाड प्यार मिला और उसे एक स्वतंत्र और विशिष्ट व्यक्तित्त्व भी बनाने का सहयोग प्राप्त हुआ। भिन्न-भिन्न विषयों की पुस्तकें पढ़ने में मीनी की गहरी-रुची है। पढ़ने की इस रुची ने उसकी बुद्धि, वैचारिकता और तर्कशीलता को निखार दे दिया।

मामा की देखभाल में बने उसके व्यक्तित्त्व में एक संस्कारिक परिष्कृतता और सुलझापन है और शिक्षा ने गहरी अन्तर्दृष्टि और सूझ प्रदान की है। इस प्रखर बुद्धिमता और विचारशीलता के कारण नरेन्द्र उसके प्रति आकर्षित होता है।

उसके न चाहने पर माँ की जिद्द के कारण उसका विवाह घनश्याम से होता है। तब वह घनश्याम को न छूने को कहती है और जब घनश्याम उसे नहीं छूता तो उसके स्वाभिमान को गहरी चोट लगती है। जिस पति की वह उपेक्षा करती है वह पूरे परिवार से उपेक्षित है तो उसका हृदय उसके प्रति सहानुभूति और करुणा से भर उठता है। यही नहीं पति की अतिशय सहनशीलता और उदारता पर भी उसे क्रोध आता है। वह जानती है कि शांत, सौम्य व धार्मिक विचारों वाला घनश्याम कभी इस अत्याचार का विरोध नहीं करेगा अत: वह स्वयं इसका विरोध करने के लिए तैयार हो जाती है। वह स्वभाव से विद्रोहिणी है।

वह धार्मिक ढकोसलें, अंधविश्वासों और झूठे धार्मिक संस्कारों का भी

दृढ़ता से विरोध करती है। गण्डे-तावीज, छूआ-छूत में उसे जरा भी श्रद्धा नहीं।

अपने पति के प्रति हृदय में श्रद्धा, कृतज्ञता और सहानुभूति का भाव है जबकि नरेन्द्र से वह प्रेम करती है। मीनी के स्वभावमें एक उतावलापन और अधैर्य हैं। विपरित परिस्थितियों में वह शीघ्र ही विचलीत हो जाती है और क्रोधित भी। घनश्याम के प्रति उसके मन में जो श्रद्धा थी अब वह प्रेम में परिवर्तित होती जा रही है। नरेन्द्र से मिलने पर उसके मन में अपराध बोध की भावना जागती है जो उसे कुंठीत कर देती है वह इन यंत्रणासे मानसिकता की क्षति से मुक्त होना चाहती है। अपनी माँ का घर जल गया है ऐसा पत्र वह घनश्याम के कोट की जेबसे वह पाती है तो वह क्रोध से व्याकुल हो जाती है। क्रोध अच्छा-बुरा या सही-गलत को भुला देता है और इसी क्रोध के आवेश में मीनी नरेन्द्र के साथ घर छोडकर चली जाती है।

स्टेशन पर आकर जब उसका आवेश कुछ कम हो जाता है तब वह इस कुत्य पर दु:खी व परेशान हो जाती है। नरेन्द्र का उमंग और उत्साह उसे छू भी नहीं सकता। उसका मन बार-बार अतीत में दौड़ जाता है। वह घनश्याम को यों अकेला नि:सहाय और तिरस्कृत छोड़ आने के लिए अपने आपको धिक्कारने लगती है। और वह अपने पति की गरिमा, उदारता और श्रद्धा पर अटूट विश्वास के कारण वह वापस आती है।

सोदामिनी को एक भारतीय नारी के रूप में चित्रित किया है, जो शिक्षिता बुद्धिशालिनी और स्वतंत्र विचारोंवाली नारी है। साथ ही उसमें भारतीय संस्कार भी है। उनमें सभी मानवीय सवेदनाओं को देखा जा सकता है। एक ओर जहाँ जिद्दी-स्वाभीमानी, क्रोधी, स्पष्ट वादिनी और अल्हड है वहाँ दूसरी ओर संवेदनाशील-तर्कशील और करुणा व सहानुभूति की प्रतिमूर्ति है।

४.१.४ आपका बंटी - शकुन (ममी)

''आपका बंटी'' के अनुभव-विश्व का एक महत्त्वपूर्ण भाग है । इस उपन्यास में शकुन की मानसिकता को आधुनिक नारी के सुख, दु:खों, समस्याओं और संघर्षो के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास के विधान के मूल में आधुनिकता का अभिशाप है । आधुनिक नारी को पहला शाप दुहरे स्तर पर जीने की बाध्यता है । वह पूर्णत: बंटी की मम्मी बनकर घर में रहती है- कोमल, सुंदर और प्यार भरी । परंतु प्रिंसिपल बनती है तो ड्रेसिंग टेबल की शिशीयाँ उसका बाह्य रूप ही नहीं, अंतरंग भी परिवर्तित करती है- सख्त, कठोर और डाँटने वाली । दूसरा अभिशाप है- ''अपने व्यक्तित्त्व के प्रति सजागता के साथ-साथ संमान के प्रति अतिरिक्त दक्षता । दूसरे शब्दों में आधुनिकता अहम् को जितना खाद पानी डालती है, उतना दूसरे व्यक्ति का आदर करने का, सह पाने का भाव परिपुष्ट नहीं करती ।''[१०]

लेखिका ने शकुन की मनोदशा तथा प्रवृतियों का सहज और प्रकृत चित्रण करते हुए ऐसी स्थिति में पहुँचा दिया है कि पाठकों की सहानुभूति का आलम्बन बन जाती है । पाठक बार-बार शकुन की विवशता, असमर्थता आदि की ओर करुणापूरित नेत्रों से देखता हुआ उसकी महत्त्वकाक्षाओं को दूवित-सा महसूस करने लगता है । आखिर जिने का- प्रसन्नता पूर्वक व्यवहार करने का अधिकार तो सबको ही है, फिर बेचारी शकुन जो जीवन के किसी एक पक्ष के आनन्द से वंचीत रह गई है, क्यों न दुनिया को दिखा देने का प्रयास करे, अपने लिए गुमा-छिना उल्लास खोज ने के लिए संघर्ष करे । फिर इस खोज में वह स्वयं ही खो जाए । शकुन भी ''आपका बंटी की एक ऐसी ही पात्र है जो पाने की दौड़ में सदैव खोती रहे, वही घनीभूत पीड़ा उसके जीवन की महत्त्वकाक्षांओं की शिला

को तिल-तिल काटती रही ।''[११]

उपन्यास की 'नायिका शकुन उपन्यास की कथा वस्तु को गतिमयता प्रदान करती है । वह सुंदर, सुशिक्षित, सौम्य और प्रिंसीपल के पद पर आसीन महीला है । अपने पति अजय से परिव्यक्त होकर वह नियति के कटु विष को पिने के लिए अभिशप्त है। उसके जीवन की त्रासदी यह है कि वह सब सुख उपलब्ध होते हुए भी उनसे वंचित होकर अभावों का जीवन जीने के लिए विवश है । पति के होते हुए भी नर्कीय जीवन की यातना भोगती है और माँ बन कर भी अपने ही हाथो अपने बेटे को पति के हाथ सौंप कर तिल-तिल कर दु:खों की अग्नि में जलकर विवशता भार अपनी छाती पर ओढे रहती है । अपने इन दु:खों से मुक्ति पाने के लिए ही वह स्वयं को कॉलेज के कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रखती है । उसे लगता है कि उसके नितांत घटनाहीन जीवन में मात्र कॉलेज जाना भी एक घटना की ही अहियमत रखना है। उसकी अपनी जिन्दगी में ऐसा कुछ भी नहीं है जो क्षण-भर को उत्तेजना पैदा कर सके ।' दो-तीन वर्ष एक ठहराव का अहसास महसूस करती रहती है, लेकिन हर बार एक उम्मीद की शायद बंटी ही उन्हें सेतु बनकर पुन: जोड़ दे, शकुन को बाँधे रखती है ।

दस वर्ष के विवाहीत जीवन की 'हताशा और विवशता' शकुन के हृदय में अब भी कचोट उत्पन्न करती है । उसकी यह दयनीय स्थिति पाठक के हृदय में संवेदना उत्पन्न करती है और वह यह सोचने लगता है कि नियति की क्रुरता का शिकार होने वाली इस नारी के लिए क्या कोई भी सम्बल शेष नहीं है । शकुन के लिए विवाहीत जीवन की इतनी अवधी एक अँधेरी सुरंग में चलते चले जाने की अनुभूति से भिन्न कदापी न थी । तर्कों और बहसों में दिन बितते थे और ठंडी लाशों की तरह लेटे-लेटे दूसरे को दु:खी, बेचैन और छप्पटाते हुए देखने की

आकांक्षा में राते.....। साथ रहने की यन्त्रणा भी बड़ी विकट थी अलगाव का त्रास भी...। ''दोनों ही एक-दूसरे की हर बात-हर व्यवहार और हर अदा को एक नया दाँव समझने को मजबूर थे। और इस मजबूरी ने दोनों की बीच की दूरी को इतना बढ़ाया कि फिर बंटी भी उस खाई को पाट ने के लिए सेतु न बन सका।''[१२]

शकुन के दाम्पत्य जीवन में गहरी खाई उत्पन्न करने के लिए उसकी 'स्वाभिमानी वृत्ति' उत्तरदायी रही है। वकील चाचा ने उसे स्पष्ट कहा था, ''अपने आपको पूरी तरह समाप्त कर के तुम उसे पा तो सको, अपने को बचाये रखकर तो उसे खोना ही पड़ेगा।'' शकुन के लिए समस्या यह है कि वह अपने पति की महत्ता को स्वीकार नही कर सकती और पति अत्यधिक इगो दृष्टि और पजेसिव है, इसलिए समझौते के लिए तनिक भी अवकाश नहीं रहता। सामने वाले को पराजित करने के लिए जैसा सायास और सन्नध जीवन उसे जीना पड़ा उसने उसे खुद ही पराजित कर दिया।

शकुन अब इस निष्कर्ष पर पहोचती है कि सात वर्षो से विभागाध्यक्ष हो जाने के पिछे वो कहीं अपने को बढ़ाने से ज्यादा अजय को गिराने की ही आकांक्षा थी। वह स्वयं कभी अपना लक्ष रही ही नहीं !.... पर इतने पर भी सामने वाला जब नहीं टूटा तो उसकी सारी प्रगति उसके अपने लिए ही जैसे निरर्थक हो उठी थी। वह जानती है कि अजय के साथ न रह पाने का दंश उसे नहीं है, वरन् अजय को हरा न पाने की चुभन है जो उसे उठते-बेठते सालती रहती है। किसी और ने अजय से वह सब क्यों पाया जो उसका प्राप्य था। वह सब कुछ तोड़ कर निकलती और अजय उसके लिए दु:खी होता और छटपटाता। इतना ही नहीं वह इस कल्पना मात्र से भी क्रूर संतोष पा लेती है, कि वह अजय से बंटी को मिलने न देगी और उसे यातना पहूँचायेगी। वह बंटी को हथियार बनाकर अजय को

टार्चर करना चाहती है। शकुन स्वयं यह सोचने के लिए विवश है कि उसके अहम् या स्वाभिमान की न जाने यह कैसी लक्ष्मण रेखा है कि इस के पार वह किसी को आने नहीं देना चाहती। डॉकटर के साथ जुड़कर भी वह मानसिक यातना से मुक्त नहीं हो पाती क्योंकि छोटा बनकर जीना अहम् को बर्दाश्त नहीं और बड़ा होकर जीने लायक उसके पास कोई पूँजी नहीं है।

शकुन में 'निर्णयात्मक्ता का पूर्णतः अभाव है' और यही कारण है कि वह यातनाओं को झेलके लिए विवश है। समय बीत जाने पर उसे अपनी इस भूल का अहसास होता है, लेकिन उस समय तक दूरी लांघ लेती है। वह इस अन्तर्द्वन्द्व से जुझती रहती है, लेकिन निर्णय नहीं ले पाती। मन न इस बात को मानता है न उस बात को। सही गलत की बात भी वह नहीं जानती, जानना भी नहीं चाहती। आज उसे अगर किसी बात का अफसोस है तो केवल इसी बात का कि यह निर्णय उसने बहुत पहले क्यों नहीं ले लिया ? क्यों नहीं वह बहुत पहले ही इस दिशा की ओर मुड गई ? किस उम्मीद के सहारे वह सात साल तक वो घिसटती रही ?.... डॉकटर जोशी का चुनाव करते समय भी उसकी यह दुर्बलता उसके आडे आने लगती है।

जब-जब उसने जोशी के बारे में सोचा था अनजाने और अनचाहे ही हंमेशा अजय आकर उपस्थित हो गया था.... केवल अजय ही नहीं, कहीं मीरा भी आकर उपस्थित हो जाती थी। उसे साफ लगता था कि जोशी या किसी का भी चुनाव उसे करना है तो जैसे अपने लिए नहीं करना है, अजय को दिखाने के लिए करना है.... मीरा की तुलना में करना है। पर जब-जब यह भावना उठी उसने स्वयं अपने को बहुत धिक्कारा, अपनी भर्त्सना की। क्यों नहीं वह अपने लिए जीती है। अपने को लक्ष्य बनाकर जी पाती।..... अजय को उसे दिखा देना ही है

कि वह अगर नई जिन्दगी की शुरुआत कर सकता है तो वह भी कर सकती है। शकुन के चरित्र द्वारा भारतीय 'विवाह पद्धति की सार्थकता पर एक प्रश्न चिह्न-सा' लगता हुआ प्रतीत होता है। शकुन दस वर्ष के विवाहित जीवन में भी वह सुख और उल्लास न पा सकी जो उसे डॉकटर के सानिध्य में आकर प्राप्त हुआ। इसलिए विवाह का अर्थ मात्र शारीरिक संबंधो से उत्पन्न संतानोत्पत्ति तक नहीं रह जाता। प्रेम और विश्वास के अभाव में इस संबंध की नींव लड़खड़ाती प्रतीत होने लगी। शकुन को पहली बार जब डॉकटर से आत्मीयतापूर्ण प्रेम प्राप्त होने लगता है। तब सोचती है कि साथ रहना भी कितनी तरह का हो सकता है। 'सारी जिन्दगी साथ रहकर भी आदमी कितना अकेला रह सकता है और किसी का हल्का-सा स्पर्श भी जिन्दगी को किसी के साथ होने का एहसास और आश्वासन से भर सकता है...। एक पुरुष का साथ जिन्दगी को यों भरा-पूरा बना जाता है यह तो उसने कभी सोचा ही नहीं था..... अजय के साथ रहकर भी नहीं।' डॉकटर के साथ जुड़कर ही शकुन को यह अहसास होता है, 'उम्र बीत जाने से कैशौर्य और यौवन नहीं बीत जाता। ये भावनाएँ तो केवल तृप्त होकर ही मरती है, वरना और भी अधिक बलवती होकर आदभी को भाती रहती है। शकुन खुद आश्चर्यचकित होती है कि उम्र के छत्रीस वर्ष पार करने पर भी उसके मन में इन सब बातों के लिए कैशौर्य उम्र वाला उल्लास भी है और यौवन वाली उमंग भी। इसलिए डॉकटर का साथ होते ही एकांत की इच्छा मन में जन्म लेने लगती है।'

शकुन, बंटी और अजय दोनों को लेकर 'अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ीत है। यद्यपि वह डॉकटर जोशी के इस तर्क से सहमत है कि जहाँ गिल्ट है वहाँ जस्टिफिकेशन है। व्यक्ति अपने हर गलत काम को तर्क से जस्टिफाई करता है, न करे तो इतना अपराध बोध होकर वह जी नहीं सकता। शकुन को कभी-कभी महसूस होता है

कि बंटी के हित की दुहाई देकर वह अपने ही गलत काम को सही सिद्ध करने की कोशिश कर रही है। अजय और बंटी दोनों ही उसकी जिन्दगी से निकल गए। अजय ने उससे चाहा वह न दे पाई इसलिए उसका संबंध खत्म हो गया। बंटी इसलिए उसके जीवन से कन्नी छुड़ाने में सफल हो गया क्योंकि अजय उसे ज्यादा चाहता था और बंटी खुद जाना चाहता था। शकुन महसूस करती है कि सब लोग केवल उससे चाहते हैं। जहाँ वह कुछ चाहने लगती है वहीं वह गलत हो जाती है। कितनी सहज स्वाभाविक इच्छाएँ थी उसकी। फिर भी सब गलत केवल इसलिए कि उसकी थी। अब वह महसूस करने लगी थी कि बंटी अब उसके जीवन की सहज गति में एक रुकावट बन गया है। लेकिन शकुन कुछ कनफेस भी नहीं करना चाहती। आज भी शायद कनफेस इसलिए नहीं करता है कि दूसरों की नजरों में गुनहगार बनकर अपनी नजरों में बेगुनाह बन जाए पर शकुन ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहती। बंटी उसके जीवन का एक अभिन्न अंश है। उसके जाने का दु:ख भी उसका अपना है और उसे भेजकर यदि उसने कुछ गलत किया तो यह गलती भी उतनी ही उसकी अपनी है। इन सबको न वह किसी के साथ शेयर कर सकती है, न किसी और के कन्धों पर डालकर उन सबसे मुक्त हो सकती है। यह शकुन की अपनी व्यथा है जिसे कोई भी बाँट नहीं सकता..... आज भी नहीं आगे भी नहीं....।

शकुन की 'नियति और जीवन में अपूर्णता' मानो घर कर गई है। अजय से विलग होने के बाद उसने अपना संपूर्ण स्त्रीत्व मातृत्व में परिणत कर दिया। संपूर्ण वात्सल्य और ममता बंटी पर न्यौछावर करके उसने अपने विषाद की कालिमा को ही पोंछना चाहा था। लेकिन उसके जीवन की विवशता यह है कि वह अजय को चाहकर भी नहीं भूल पाती। बंटी में भी उसे अजय का चहेरा ही

दिखाई देता है, इसलिए उसकी यह उम्मीद उसे बाँधे रखती है, कि शायद बंटी के बहाने वह अजय को पाने में समर्थ हो जाए। वह जानती है कि बंटी ने अजय को ज्यों का त्यों इनहेरिट किया है। लेकिन भाग्य की विडम्बना है कि बंटी उनके बीच सेतु बन नहीं सका। बंटी को देखकर उसे वकील चाचा की कही बात याद आती है कि आदमी किस तरह एक छोटे-से अणु में अपना चेहरा, मोहरा, आदत स्वभाव, संस्कार सब कु छ अपने बच्चे में सरका देता है। लेकिन बंटी की निरीहता उसे यह सकून दे जाती है कि वह अजय नहीं है। यह तो उसीका पाला-पोसा और बड़ा किया हुआ, उसी पर निर्भर रहने वाला बंटी है। अजय तो कभी शकुन के सामने इतना निरीह और बेबस नहीं हुआ। उसने अपनी स्लेट पर से उसका नाम, उसका व्यक्तित्त्व धो-पोंछकर एक नई जिन्दगी शुरु कर दी है.....। वह अपनी भरी-पूरी जिन्दगी जी रही है। उसने शकुन को काट दिया है। शायद कोई कसर भी बाकी नहीं है, लेकिन जब शकुन ने अपने जीवन को भरा-पूरा करना चाहा अजय की कसक को भी धो-पोंछना चाहा तो बंटी.... विवाह के बाद भी शकुन इस द्वन्द्व से मुक्त नहीं हो पाती है। उसे बार-बार यह लगता है कि उन दोनों के बीच कोई है शायद बंटी और बंटी के बहाने अजय। इसलिए वह निर्णय कर लेती है कि बंटी यदि सहज ढंग से अपने को उसके और डॉकटर के बीच में से समेट नहीं लेता तो वह उसे अजय के पास भेज देगी। उसे दरार बनना ही है तो मीरा और अजय के बीच में बने। अजय भी तो जाने कि बच्चे को लेकर किस तरह की यातना से गुजरना पड़ता है।

पुरानी स्लेट इतनी जल्दी और इतनी आसानी से साफ नहीं होती। लेकिन बंटी के जाने के बाद भी शकुन डॉकटर के घर में पूर्ण सुख न पा सकी। उसे लगता है कि बंटी ने अपनी माँ से बदला लेते-लेते कितना बड़ा बदला अपने

आप से ले लिया है। बंटी को भेजकर उसने जो कीमत चुकाई है, उससे वह एकदम खाली और खोखली हो गई है।

अमी और जीत को देखकर उसे लगता है कि वह उन्हें बिना बंटी के उतना प्यार नहीं कर पाएगी। मीरा भी बंटी को अपने बच्चे की तरह प्यार नहीं करेगी। अजय की शादी होने पर शकुन ने यह सोचा था कि वह अब बंटी को लेकर अजय को टार्चर करेगी। अपने-अपने अहम् अपनी-अपनी महत्त्वकाक्षांओं और अपनी-अपनी कुंठाओं के संदर्भ में ही सोचते रहे। बंटी के संदर्भ में कभी कुछ नहीं सोचा। आज उसकी आँखों के सामने अतीत और वर्तमान के कितने चित्र उभरते चले जा रहे हैं। फूफी और माली की बातों के सब प्रतिकात्मक अर्थ स्पष्ट होने लगते हैं।

बंटी का टूकर-टूकर देखता हुआ चेहरा उसकी आँखो के सामने उभर आया और कई दिनों का समेटा हुआ उसका आवेग आँसुओं के रूप में प्रकट होने लगा। ये आँसु ही शायद उसकी नियति है, क्योंकि ''अधुरापन उसके जीवन के साथ जुड़ा है। जिसका विषपान करने के अतिरिक्त कोई मार्ग शेष नहीं है। इस प्रकार ''आपका बंटी'' की शकुन न तो अजय से समझौता कर पाती है और न डॉ.जोशी से सामंजस्य स्थापीत कर पाती है। दोनों ही संबंध उसकी अलगाववादी प्रवृत्ति का उद्घाटन करते हैं।''[१३] वास्तव में लेखिका का तादात्म्यीकरण शकुन से हुआ है, बंटी से नहीं। उपन्यास शकुन के द्वितीय विवाह का 'जस्टीफिकेशन' है, शकुन का 'फनफैशन' है। जिस प्रकार शकुन इस भ्राँति में जी रही है- वह बंटी के लिए जी रही है, बंटी के लिए डॉ.जोशी से विवाह कर रही है, बंटी के लिए उसे अजय के पास भेज रही है- उसी प्रकार लेखिका भी इस भ्राँति का शिकार है कि वह बंटी की कहानी लिख रही है। वास्तविकता यह है कि लेखिका

शकुन के लिए स्वतंत्रता खोज रही है। ''अजय यदि दूसरा विवाह कर सकता है तो नारी-मुक्ति के इस युग में शकुन क्यों नहीं कर सकती ! किन्तु संक्रान्तिकालीन पीढ़ी की नायिका के लिए जीवन का लक्ष्य संतान होना चाहिए था, और वैसा न कर पाने कि स्थिति के लिए सारा उपन्यास जस्टिफिकेशन की खोज और अन्त में फनफैशन बन जाता है।''[१४]

इस उपन्यास को पढ़ने पर तत्कालीन प्रतिक्रिया यह होती है कि इसके केन्द्र में बंटी है। वहीं दूसरी समांतर प्रतिक्रिया यह है कि ''इसे पढ़कर जो एक 'भावुकता पूर्ण बेचैनी और उमडन' बंटी को लेकर होती है। उससे अधिक कहीं कुछ और है जो गहरी वैचारिकता के स्तर पर प्रभावित करता है, पर सहसा पकड़ में नहीं आता। इस समझ को लेकर यह कुहासा इसलिए है, यह असमंजस स्वयं लेखिका के मन में है।''[१५] कदाचित दुविधा की यह स्थिति आधुनिकता की देन है। अहम् की टकराहट और अनिश्चियात्मक्ता की स्थिति की शिकार शकुन दुविधा और द्वन्द्व का दंश भोगने के लिए बाध्य है। परिणाम, प्रणय और ममता के मध्य निर्णात्मक सेतु न बन सकने के कारण ही शकुन के समक्ष चयन और विकल्प के लिए कोई अवकाश नहीं रहता। केवल जीवन का भयावह उसे अकेलापन डॉ. जोशी से विवाह करने के लिए प्रेरित नहीं करता प्रत्युत अजय के अहम् को चोट पहुँचाना और उसे पराजित करने की अहंकारपूर्ण बलवती आकांक्षा उसके चेतन में नि:संदेह विद्यमान है। इसलिए उसकी त्रासदी को मात्र नियति की परिणति स्वीकार नहीं किया जा सकता और न ही उसके द्वारा उठाया गया प्रत्येक कदम उचित और प्रामाणिकता की अधिकारी हो सकता है।

४.२ कहानी के विशिष्ट नारी पात्र

कहानी-साहित्य में जीवन की विशिष्ट अनुभूति को चरित्रगत व्यापारों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। अत: चरित्र कथा का अनिवार्य अवयव होता है।

मन्नू भण्डारी की कहानियों के चरित्रों की संख्या सीमित होते हुए भी विविधता लिए हुए है। आज का कहानी लेखक जीवन में से ही अपने पात्रों को चुनता है। काल्पनिक अथवा आदर्श पात्रों की अवतारणा का युग बीत चुका है। ऐसे पात्र विश्वसनीय नहीं होते, इसलिए पाठकों को प्रभावीत भी नहीं करते। पाठक साहित्य के माध्यम से अपनी बात कहना सुनना चाहता है। वही चरित्र उसे प्रभावित करते हैं, जिनकी संवेदनाएँ यथार्थ जीवन की संवेदनाएँ हो, जिनमें पारदर्शिता और स्वभाविकता विद्यमान हो ता कि पाठक का कहानी के पात्रों के साथ साधारणीकरण हो और सहानुभूति संभव हो। गुलाबरायजी लिखते है- ''कहानी के पात्र चाहे कल्पनालोक के हो और चाहे वास्तविक संसार के, किन्तु वे सजीव और व्यक्तित्त्वपूर्ण होने चाहिए। जो पात्र मिट्टी की घूमे की भाँति अपना कोई व्यक्तित्त्व न रखते हों, वे पाठकों में रुची नही उत्पन्न कर सकते।''[१६]

मन्नूजी के पात्र आज के यथार्थ को व्यक्त करते हैं, उसका प्रतिनिधित्त्व करते हैं। जिन संवेदनाओं, विचित्रताओं, कुंठाओं और अनिश्चतताओं में आज का मानव संघर्ष कर रहा है, उसका प्रामाणिक चित्रण मन्नूजी के पात्रों द्वारा हुआ है। अपने पात्रों के विषय में मन्नूजी का कथन है - ''मेरे पात्र समाज के वास्तविक पात्र है।'' उन पात्रों का पुन:सृजन करने में कल्पना का जितना योग होना चाहिए उतना ही है।

मन्नूजी ने चरित्र-चित्रण की प्राय: सभी पद्धतियों का यथासमय प्रयोग

किया है । वर्णन, संकेत, कथोपकथन, कार्य-व्यापार तथा मनोविश्लेषण की पद्धतियों का यथा अवसर प्रयोग किया है । अधिकांश कहानियों में मन्नूजी ने अन्य पात्र के रूप में कहानी के प्रमुख पात्र को उभारा है। इनकी कहानीयों में पात्र प्राय: गौण होता है जो कहानी के प्रमुख की विशिष्टताओं, दुर्बलताओं को अभिव्यक्त करता है । इस पद्धति से चरित्र अधिक विश्वशनिय हो उठता है । जैसे- सयानी बुआ का पात्र मैं (भतीजी) द्वारा आलेखित होने के कारण अधिक स्वाभाविक बन पड़ता है-''बचपन में ही वे समय की जितनी पाबंध थी, अपना सामान संभालकर रखने में जितनी पटु थी और व्यवस्था की जितनी कायल थी उसे देखकर चकित रह जाना पड़ता था ।''[१७] किन्तु नहीं यह तो सयानी बुआ का प्रथम परिचय है । बुआ के चरित्र के कोमल पक्ष का उद्‌घाटन तो कहानी की प्रमुख घटना (भाई साहब का पात्र) के माध्यम से हो पाता है ।

''एक कमज़ोर लड़की की कहानी'' में रुपा का चित्रण इस संलाप के द्वारा हुआ है- ''तुम नहीं जानते ललित, वह मेरे लिए क्या सोचते हैं । ऐसा जवाब दूंगी तो उनको बड़ा धक्का लगेगा ।''

''बस, यही तो तेरी कमज़ोरी है । घरवाले जरा सा कह दें, हमारी रूप बिटीया जैसा है कोई दुनिया में, और फिर रुप बिटीया को चाहे कुएँ में कुदवा लो तो कूद जायेगी ।''[१८] रूप के चरित्र की कमज़ोरी बड़ी स्वाभाविकता से इस संलाप के माध्यम से व्यंजित हुई है ।

कुंती (क्षय) का आदर्श चरित्र मनोविश्लेषण की पद्धति से खुलता है । टुन्नी का पत्र पाकर वह सोचती है - ''क्या सचमुच ही उसने टुन्नी का साल बिगड़वा दिया ? नहीं-नहीं जो कुछ उसने किया ठीक ही किया । कोई उसके पास इस तरह की सिफारिश लेकर आए तो ? उसका बस चले तो वह उसे स्कूल के

फाटक से ही निकाल बाहर करे। वह शरु से ही इतना कहती थी कि टुन्नी पढ़-महेनत कर। पर उस समय पापा को टुन्नी बच्ची लगती थी। अब फेल हो गयी है तो जान-पहचान का फायदा उठाओं, सिफारिश करो। उसने जो कुछ किया ठीक ही किया।"[१९]

कहने का तात्पर्य यहीं है कि चरित्र-चित्रण अत्यन्त कलात्मक ढंग से हुआ है। आवश्यकतानुसार विविध पद्धतियों का प्रयोग किया गया है।

मन्नूजी की कहानियों मे स्त्री-पुरुष के बदलते संबंधों का चित्रण एवम् विश्लेषण मुख्य रूप से हुआ है। उसमें भी नारी-पात्रों की धड़कनों का चित्रण तो अत्यंत स्वाभाविक एवम् यथार्थ बन पड़ा है। देवी और दानवी के दो छोरों के बीच से मानवी की तलाश और उसके प्रामाणिक रूप का चित्रण मन्नूजी की कहानियों की अपनी विशिष्टता है।

४.२.१. घूटन - प्रतिमा

प्रतिमा का पति नेवी मैं नौकरी करता है तथा साल में सिर्फ एक माह की छुट्टी होने पर घर आता है। बलिष्ट तथा अत्यधिक कामुक शराबी पति के पाशविक व अश्लील प्रणय व्यापारों से प्रतिमा बेचैनी व घूटन महसूस करती है। नजाकत पसंद प्रतिमा पति के अश्लील इशारों व क्रूर प्रणय से उक्ताहट महसूस करती है। पति के विशाल शरीर पर अत्यधिक घने रोम-गुच्छ, घन्त भौं है तथा घनी मूच्छों के साथ श्वास में बसी शराब की असह्य दुर्गन्ध उसे पति के सानिध्य में घबराहट घूटन तथा बेचैनी ही देती है। अत्यधिक कामुकता, व प्रणय निवेदन के अश्लील तरीके नाजुक प्रकृति की नारी के मन में उब, घूटन तथा विरक्ति पैदा कर देते हैं।

प्रतिमा पति के आगोश में घबराहट महसूस करती है। मानव की परिस्थितिगत

मन: स्थितियों और उसकी प्रतिक्रियाओं का यहाँ भावपूर्ण चित्रांकन हुआ है।

४.२.२ नई नौकरी - रमा

विवाहित स्त्री को प्राय: नौकरी इसलिए करनी पड़ती है कि पति की आय से घर की आर्थिक जरुरतें पूरी नहीं हो पाती है। किन्तु रमा अपनी शिक्षा व ज्ञान के समुचित उपयोग की आत्मतुष्टि प्राप्त करने हेतु ही नौकरी करती है। साथ ही जीवन स्तर ऊँचा उठाने का भाव तो है ही। लेकिन जब पति की पदोन्नति हो जाती है तो वह चाहता है कि नए पद के अनुरूप परिवेश व घर की साज-सज्जा हेतु पत्नी अपना पूर्ण सहयोग दें। स्पष्टत: न कहने पर ही वह चाहता है कि पत्नी नौकरी छोड़कर पूर्णत: गृहस्थी को संभाले अत: वह कहता है- ''इससे तो तुम खूब किताबें पढ़ी, मैगजीन्स पढ़ी - कुछ छुटपुट कलासे अटेण्ड करलो। बंटी को पढ़ाओं। दुनियाभर को पढ़ाओं जिससे अपना बच्चा भी निगलेकद हो।''[२०] रमा के मन में द्वन्द्व है। वह न तो अपनी नौकरी से पूर्णत: कट जाना चाहती है और नहीं अपने गृहिणी के दायित्व को ही भुला पाती है। घर और बाहर में सामंजस्य स्थापित न कर पाने से उसका मन और मस्तिष्क अन्तर्द्वन्द्व में घिर कर अकुलाने लगता है।

इस स्थिति से व्याकुल हो अन्तत: वह महसूस करने लगती है- ''मुझसे यह सब निभता नही।''[२१] ''किन्तु अपने सामाजिक परिवेश व शिक्षा की उपयोगिता के आत्मसंतोष का लोभ भी वह संवरण नहीं कर पाती। मेरे मन के संतोष के लिए क्या होगा।''[२२] आदि प्रश्नों का निवारण उसका पति जिम्म्दारियों से लाद देता है। वह घर के कामों और बंटी के पढ़ाने का, शोपींग करने का, पार्टीया रखने का और करने का सुझाव देता है। वह रमा की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाना चाहता। पुरुष नारी को एक घरेलु और गृहिणी के रूप में देखना अधिक पसंद

करता है। किन्तु नारी भी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्त्व को स्थापित करने की महत्त्वकांक्षा अपनी शिक्षा के उपयोग की आत्मतुष्टि व सामाजिक परिवेश के लोभ को सहजत: भुला नहीं पाती है। वह अपने व्यक्तित्त्व को महत्त्वहीन नहीं बनाने देना चाहती। फलत: उसके सामाजिक व्यक्तित्त्व और गृहस्थ रूप में क्षणिक संघर्ष चलता है। किन्तु अन्ततोगत्वा पारिवारिक सुख के समुद्र में सामाजिक व्यक्तित्त्व डूबकिया लेने लगता है। उसका गृहिणी रूप उसके व्यक्तित्त्व रूप पर हावी हो जाता है और आदर्शशीलता नारी को हरा कर गृहिणी रूप विजयी हो जाता है।

पारिवारिक कर्तव्यों पर नारी को ही अपने व्यक्तित्त्व की बली देनी पड़ती है। फिर चाहे वह इसे स्वेच्छा से दे या मजबूरी से। पारिवारिक परिस्थितियों से समझोता करना ही भारतीय नारी को एक मात्र राह है। वह इस राह पर स्वेच्छा से चलने को तत्पर रहे तो पुरुष अहम् संतुष्ट रहता है और दाम्पत्य की गाड़ी सहज रूप में चलती है। अन्यथा घर्षण, संघर्ष स्वाभाविक है। नारी इस संघर्ष से बचने के लिए समझौते का रास्ता अपनाती है।

४.२.३. एखाने आकाश नाई - लेखा

परिवार चाहे शहरी हो या ग्रामिण सभी की अपनी-अपनी समस्याएँ हैं। शहर में रहकर परिवार के आर्थिक भार को हल्का करने में लेखा भी नौकरी करती है। वह रिसर्च कार्य भी कर रही है। नौकरी, घर और रिसर्च के भार से वह कमज़ोर हो गई है। कार्यधिक्ता के बावजूद भी वह अपने सामाजिक परिवेश से कटी हुई नहीं है। घर की हर छोटी-मोटी उलझनों को वह सुलझाती है। वह सभी के सुख-दु:खों में भाग लेती है। लेखा पति के आग्रह पर छुट्टियाँ लेकर गाँव जाती है, गाँव का प्राकृतिक व मनभावन वातावरण उसे मानसिक शांति देने में असमर्थ है क्योंकि यहाँ भी पारिवारिक समस्याएँ उसका पीछा नहीं छोड़ती उसके

मन पर आच्छादित हो जाती है। वह स्वयं अपने आपको अकेली महसूस करती है। घर की सदस्या हो कर भी मानो वह अलग है। वह अपने रिसर्च और काम में डूब गई थी और अपने लम्बे-चौड़े परिवार का उसने अपना कर्तव्य नहीं निभाया ऐसा उसे लगता रहता है। पढ़ी-लीखी और कमाऊँ होने पर उसका स्थान और महत्त्व घर में अधिक है।

जिस मानवीय व शारिरीक शांति की खोज में वह गाँव के रम्य वातावरण में आई थी वहाँ उसे इन समस्याओं के फल स्वरूप बेचैनी और घबराहट होने लगती है। आर्थिक समस्याओं से घिरा परिवार अपनी परंपराओं, रीति-रिवाजों व अंधविश्वासो से चिपका बैठा है, और जब कि उसका युवा वर्ग व्यथित, विक्षिप्त व असुरक्षा की भावना से छटपटा रहा है।

४.२.४. ऊँचाई - शिवानी

शिवानी शारिरीक पवित्रता के पारंपरिक मूल्य से विखंडित है। शिवानी समाज के इस परंपरागत मूल्यों का उलंघन करती है और साहस भी जुटाती है। वह अपने पति के समक्ष स्पष्ट शब्दो में यह स्वीकार करने का दुस्साहस भी करती है, कि उसने अपने प्रेमी के साथ शारिरीक संबंध स्थापित किए थे। शिवानी और शिशिर के मानदण्डों में काफी अंतर है। शिवानी की यह मान्यता है कि यदि परिस्थितिवश अपने प्रेमी अतुल को अपना शरीर सौंप भी दिया तो इससे शरीर के प्रति उसके प्रेम में कोई फर्क नहीं पड़ सकता। वह कहती है- ''मेरे जीवन में तुम्हारा जो स्थान है, उसे कोई नहीं ले सकता, लेना तो दुर, उस तक कोई पहुँच भी नहीं सकता। किसी के कितने ही निकट चली जाऊँ, शारिरीक संबंध भी स्थापित करलूँ पर मन की ऊँचाई पर तुम्हें बिठा रखा है, वहाँ कोई नहीं आ सकता। किसी से तुलना करने में भी अपमान होता है।''[२३] किन्तु शिशिर के

पास प्रेमविवाह और सेक्स को परखने की अपनी अलग कसौटी है।

शिवानी अपने प्रेमी की निराशा व कुंठा का कारण स्वयं को मानती है और प्रतिकार करने को तत्पर हो जाती है। अपना शरीर उसे सौंप वह उसे कुंठा मुक्त कर देती है। वह एक आधुनिक नारी है। उसके तन व मन पर अपना अधिकार है। वह जब चाहे जिसे चाहे अपना शरीर दे सकती है। वह प्रेम में नहीं बल्कि प्रेम के क्षण में जीना चाहती है। अतुल को अपना शरीर सोंपते वक्त न कोई उसे अपराधबोध होता है और न शिशिर को बताते वक्त। वह पति-पत्नी का संबंध केवल शरीर से नहीं बल्कि मन से भी जुड़े होने की बात करती है।

शिवानी कहती है कि ''यदि हमारे संबंधों का आधार इतना छिछला है इतना कमज़ोर है, कि एक हल्के झटके को भी संभाल नहीं सकता, तो सचमुच उसे टूट ही जाने दो।''[२४]

वह आधुनिक और जागृत नारी है। वह प्रेम में शरिर संबंध को नहीं किन्तु मन के संबंध को ऊँचा मानती है। वह यौन पवित्रता न होने पर भी बना रहता है फिर ''नारी का शरीर देना ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण है उसकी वजह और उसका परिवेश जिनसें उसे देना पड़ा हो और यह हो सकता है यह सब मानवीय हो।''[२५]

शिवानी विवाहीत जीवन में भी सेक्स की स्वतंत्रता के पक्ष में है।

४.२.५ नशा - आनंदी

आनंदी भारतीय परंपरा का स्वरूप है। आनंदी का पति शराबी है। शराब के नशे में वह न सिर्फ उसे मारता-पिटता व गाली-गलौच ही करता है, बल्कि उसके खून-पसीने की कमाई भी छीन ले जाता है। उसका बेटा किशुन माँ पर की गई पिता की ज्यादतियों को नहीं सह पाता और क्रोध में घर छोड़कर भाग जाता

है। पति की निर्दयता व पुत्र के बिछोह से विदग्द्या आनंदी घूट-घूट कर जीवन जीने के लिए मजबूर है। इस से आनंदी टूट-सी जाती है। किन्तु वह अपने पति को शराब पीने के लिए पैसा व रोटी जुटा देती है और बदले में सिर्फ यही प्रार्थना करती रहती है- ''मैं तुम्हे जिन्दगी भर पीने को दूंगी- अपना हाड़ गला-गला कर पीने को दूँगी। तुम मेरे किशुन को ढूँढ दो।''[२६] एक दिन उसका बेटा वापस आ जाता है। किशुन अपनी माँ को अपने साथ ले जाता है। बेटा-बहू उसकी सेवा में हरदम तत्पर रहते हैं, फिर भी उसके संस्कारगत हृदय में पति की याद हर क्षण छायी रहती है। वह पति की चिंता में घूली रहती है। बेटे का पिता के प्रति तिरस्कार वह जानती है। वह बेटे-बहू से छिपाकर बीस रुपियें का मनीआर्डर भेजती है। भारतीय नारी के परंपरागत संस्कार आनंदी के मनोभावों पर छाये हुए हैं। नारी सहनशीलता ही पारिवारिक संस्था को कुछ हद तक टिकाए रखती है। तमाम ज्यादतियों के बावजूद भारतीय नारी के परंपरागत संस्कार उसे पति से जोड़े रखते हैं, एक तरह से भारतीय संस्कारो ने उसे पति भक्ति व पति सेवा के नशे का आदि बना दिया है, जिससे छूट पाना उसके लिए सरल नहीं।

४.२.६ एक बार और - बिन्नी

बिन्नी और कुंज का प्रणय संबंध सुदीर्ध काल तक चला किन्तु एक छोटी-सी अनबन ने दोनों के जीवन की धाराओं को ही बदल दिया। बिन्नी की नाराजगी वह गंभीरता से ले लेता है और मधु से विवाह कर लेता है। बिन्नी जब जागती है तो पाती है कि उसका प्रेम-संसार किसी दूसरे का हो चुका है। फिर भी वह कुंज को भुल नहीं पाती। कुंज को भी फिर अहसास होता है कि बिन्नी के लिए उसके हृदय में प्यार है। जिसका इनकार नहीं किया जा सकता। एक ओर पत्नी का प्रेम तथा दूसरी ओर प्रेयसी के प्रति झुकाव। इन दोनों के बीच वह झुलने लगता है।

फिर से वह बिन्नी के साथ जुड़ जाता है। दो नावों पर चलने की पीड़ा उनके संबंधों में उभर ने लगती है। कुंज मधु के पास वापस लौट जाता है और बिन्नी के साथ जो संबंध था वह टूट जाता है। उनके बीच जो 'कुछ' था वह न रह गया।

बिन्नी के भैया और सुषमा चाहते हैं कि वह अब नये संबंध स्थापित करे और एक नये संबंध को जन्म दे। वह कहती है कि यह प्यार नहीं पर कुचला हुआ आत्म सम्मान है। सभी के खूब आग्रह के वश होकर वह नन्दन के लिए सोचने लगती है। नन्दन दस-बारह दिन साथ घूम फिर कर चला जाता है तो उसकी आशाओं पर एक बार फिर निराशा छा जाती है। उसकी निराशा चरमसीमा तक पहुँच जाती है। उसे लगता है कि उसके सूने जीवन में अब कोई भी बहार बनकर नहीं आएगा।

४.२.७ एक कमज़ोर लड़की की कहानी - रूप

इस कहानी में भारतीय लड़कियों के जीवन के उस पक्ष को उभारा गया है, जो कमज़ोर है। इनके जीवन की विडम्बना यही है कि वे अपने जीवन के निर्णय स्वयं करने की बातें करने पर भी करती वही है जो दूसरे चाहते हैं।

रूप को नन्ही-सी उम्र में सौतेली माँ के कठोर अनुशासन में रहना पड़ा है तो-''वह इतनी डर गई, इतनी सहम गई कि उसका सारा उल्लास, सारी चंचलता, सारे हौंसले मर गए। दस वर्ष की रूप मानों प्रौढ हो गई हो।''[२७] जीवन के प्रारंभिक वर्षो में ही इस प्रकार डरने और सहमने से उसकी संकल्प शक्ति समाप्त प्राय: सी हो चुकी थी। अनेक प्रश्नो पर मन में तीव्र विद्रोह उठता था, फिर भी वह पाती थी कि- ''उसकी सारी दृढ़ता, सारा संकल्प बहा चला जा रहा है।'' उसके मन में विरोध का लावा उबलता है फिर भी इच्छा शक्ति व संकल्प शक्ति के अभाव में वह कुछ कर नहीं पाती। उसकी यह कमज़ोरी ही उसके जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना बन जाती है। उसका प्रेमी भी उसे इस बात के लिए फटकारता भी है। ललित सदैव उसे अपने निर्णयों पर रहने की प्रेरणा देता रहता है। रूप का विवाह कहीं और तय हो जाता है। हृदय की अनन्त गहराईयों से

ललित को प्रेम करने के बावजूद भी वह पिता के इस निर्णय का विरोध करने का साहस नहीं जुटा पाती। उसका जीवन दु:ख और निराशा से घिर जाता है। ललीत उसके जीवन में फिर से आता है, और इसे अपने साथ भागने के लिए कहता है और फिर उस वक्त भी कमज़ोर हो जाती है।

उसके पति का उस पर गाढ विश्वास है, यही विश्वास उसके पाँव जकड़ देते हैं। परिवार की इज्जत व उनके विश्वास व आज्ञा पर अपने प्रेम की आहुती दे देना भारतीय नारी की परंपरागत विडम्बना ही कही जायेगी। वह इन बंधनों को चाहकर भी उससे मुक्त नहीं हो पाती है।

४.२.८ गीत का चुम्बन - कनिका

यह कथा भावुक प्रणय कथा है। मातृविहीना कनिका का लालन-पालन उसकी मौसी करती है। उसके सुमधुर कण्ठ के कारण मौसी चाहती थी कि वह एक प्रसिद्ध गायिका बने और अपनी गायन प्रतिभा का इस हेतु विकास करे।

कनिका के शर्मीले स्वभाव के कारण वह उसे बाहर जाने व दूसरो से मिलने-जुलने के लिए प्रोत्साहित भी करती रहती है। वह माथुर साहब की पार्टी में साग्रह गाना गाती है। वहाँ अपने प्रिय कवि निखील चौधरी से मिलती है और उससे वे खास प्रभावित होते हैं। उसे रेडियो स्टेशन पर गाने की सलाह भी देते हैं। कनिका रेडियो आर्टीस्ट बन जाती है। उन दोनों की कला के साथ-साथ उनकी निकटता भी बढ़ने लगती है। निखील खुले उदार विचारों का था अत: वह स्त्री-पुरुष के शारिरीक संबंधों को स्वाभाविक सिद्ध करने का प्रयास करता है। जब तक कुछ भी व्यवहार में नहीं आता तब-तक वह अनैतिक, नाजायज और बेवा बनी रहती है। निखील इन संबंधों को एक नैसर्गिक आवश्यकता मानता है अत: उसकी दृष्टि में उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। वे एक-दूसरे के निकट आ गये

थे। एक दिन कनिका निखील के गीत को मुग्ध भाव से गा रही थी। वातावरण की मधुरता व गीत के भावुक प्रभाव से मंत्रमुग्ध निखील कनिका को बाहों में भर चुम लेता है। निखील के इस चुम्बन से वह स्तब्ध-सी रह जाती है। निखील से नाराज हो कर चली जाती है। ''उसके चुम्बन ने उसकी युवा आकांक्षाओं को प्रज्वलित कर दिया था। प्रेमी की बेबसी से प्रेम-दग्ध हृदय की चाहना अधिक भड़क उठी थी।''[२८]

कुन्नी के संस्कार उसे निखील का चुम्बन सहज रूप से स्वीकार ने नहीं देते। किन्तु उसका हृदय अपने प्रेमी के स्पर्श के लिए लालायित रहता है। संस्कारों और कामनाओं में संघर्ष चलता है और विजय युवा-कामनाओं की होती है।

४.२.९ एक प्लेट सैलाब - कम्मो

कम्मो की माँ कम्मो के बाल्यकाल में ही मर जाती है। उसका मन अपनी सौतेली माँ और उसकी बेटी याने कम्मो की बहन टुन्नी को माँ से प्यार पाते देख मातृत्व और स्नेह को तरसता है। युवावस्था में उसका स्नेह-प्रेम को लालायित हृदय शैलेन के मधुर प्रणय व उसके रोमांटीक प्रेमपत्रों में अपनी अतृप्ति को तुष्ट करता है। किन्तु शैलेन से उसके प्रणय संबंधों की भनक मिलते ही माँ-बाप उसका विवाह तुरंत मित्तल से कर देते हैं। मित्तल का शेअर मार्केट का बिजनेस उसे बेहद व्यस्त रखता है और अपने कार्य की व्यस्तता के कारण वह कम्मो की एक प्रकार से उपेक्षा ही करता है। घन लिप्सा में व्याप्त उसका मन कम्मो की कोमल भावनाओं व आकांक्षाओं को समझने अथवा जानने का कभी प्रयास भी नहीं करता। पति की निरसता और उपेक्षाभाव से कम्मो का हृदय अपने प्रेमी शैलेन के रसीले प्रेमपत्रों की मधुरता में डूबा रहता है- ''अब उन पत्रों की याद

उसे जब तक काटती रहती है, बेधती रहती है। उसे आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि उसे शैलेन की याद नहीं आती बस केवल पत्रों की पंक्तियाँ, उन पंक्तियों से झाँकती हुई भावना और भावनाओं को साकार करने वाले चित्र उभरते हैं- कोहरे भरी चाँदनी, प्रतिक्षातुर आँखे, आलिंगानुतुर बाँहे- और वह धुली रहती है। दोहरी धूल के नीचे उसका मन सिसकता रहता है। अतृप्ति की धूल और अपराध-सी पाप की भावना की धूल।''[२९] विवाह के बाद अपने प्रेमी शैलेन की स्मृतियों को उसने अपने आँसुओं से धो डाला था। वह अपनी नई जिन्दगी में अनेकानेक आशाओं-स्वप्नों और आकांक्षाओं के साथ प्रवेशती है।

''अपनी सुहाग रात का एक अजीब-सा चित्र उसके मन पर अंकित हो उठता है- हो सकता है किसी सिनेमा का दृश्य ही उसके मन पर उतार लिया हो फिर भी वह उसका स्वप्न बन गया था। खिड़कियों और दरवाजों पर लटकते हुए मोर पंखी रंग के पर्दे, दूधिया चादर, मोगरे के फूलों की लटकती हुई झालरें, श्वेत वस्त्रों में लिपटी हुई वह और नीले रंग का जीरो पावर का बल्ब। वह सब कुछ वहाँ इन्द्रजालीत सा और फिर उसी इन्द्रजाल की माया के नीचे, किसी की बलिष्ट भुजाओं में कसी हुई वह।''[३०] किन्तु मधुर स्वप्नो के शीश महेल पति की निरसता व रुक्षता से चूर-चूर हो गये और आकांक्षाओं, आशाओं पर पानी फिर गया। पर वैसा कुछ नहीं हुआ। यों होने को बहुत कुछ हुआ पर कम्मो ने महसूस किया की मित्तल बहुत जड़ है-बिलकुल यांत्रिक।

उमंग-उत्साह-प्यार की गर्मी, पागल बना देनेवाली आतुरता कुछ भी तो नहीं था। उसका मन विरक्ति से भर गया। दो दिन में वह पुरानी भी पड़ गई। चढ़ने से पहले ही नशा उतर गया। ''हर दिन आता और मित्तल की यही जड़ता उसे अधिक खिन्न कर के चली जाती। वह चुपचाप रो लेती लेकिन हानी-लाभ

बेचो-खरीदो के बीच उन आँसुओं को देखने की फुर्सत नहीं थी। उसे पौछता तो कैसे।''[३१] इस प्रकार उसकी आशा-आकांक्षा अतृप्त-सी रह जाती है। वह अपनी भतीजी शम्मी और उसके मंगेतर के प्रेम की उन्मत्ता से भी जलन प्रगट करती है। उसका मन भी किसी की पुष्ठभूजा में आलंगित होने को हो उठता है। वह रात भर सो नहीं पाती। उसका सारा शरीर ऐठता रहा और वह रोती रही- दु:ख से क्रोध से। एक अजीब सा विचार मन में आया। ''चार बजे वह चली जाए और पीठ करके खड़ी हो जाए और यदि 'छी' उसने धृणा से अपना ही होंठ काट लिया पर फिर भी उसके सामने इंदु की मछलियाँ भरी बाँहे साकार हो गई और यह इच्छा मन में टक्कर मारती रही। चार बजे उसकी बड़ी इच्छा हुई की जाए, एक बार देखे तो। पर पिछले छ: वर्षो से वह जिस प्रकार अपने को नियंत्रित करती आ रही थी कर गई और पड़ी रही।''[३२]

वह मित्तल से कभी भी तृप्त नहीं हो पाती थी। अतृप्ति की कुंठा उसे कई रातों तक सोने नहीं देती। उसे अदम्य इच्छा होती थी कि उसे कोई तृप्त करदे, चाहे वह कोई भी क्यों न हों।

अतृप्ति की पीड़ा से वह उदास और अशांत रहती है। नींद कोसों दूर चली जाती है। किसी की बाहों में कस जाने की अदम्य चाह उसे सोने नहीं देती और अन्तत: अपने बेटे को बाहों में भींसकर सोने पर उसे नींद आ जाती है।

कम्मो बचपन से ही प्रेम और स्नेह की भूखी नारी थी।

४.२.१० तीन नीगाहों की एक तस्वीर(दो कलाकार) चित्रा - अरुणा

चित्रा एक उत्कृष्ट चित्रकर्ती है तो अरुणा की रुची दीन-दु:खियों की सहायता करने व उनकी समस्याओं को हल करने में है। एक की कला कलात्मकता की उपासना में है तो दूसरी की कला जीवन की साधना में है।

चित्रा एक मृत भिखारिन के वक्षसे चिपके दो मासुम बच्चों का हू-ब-हू व कलात्मक चित्र अपनी तूलिकासे बनाती है और पुरस्कार प्राप्त करके गौरवान्वित होती है। किन्तु अरुणा-जमादार-आया-चपरासी व दाइयों के बच्चों को पढ़ाकर जीवन जीने योग्य बनाने में अपनी कला व शिक्षा की उपयोगिता समझती है। उनके दु:ख-दर्द में साझीदार हो कर उन्हे हल करने का प्रयत्न करती है। भाषण बाजी द्वारा अपनी समाजसेवा का प्रचार वह नहीं करती।

चित्रा जिस मृत भिखारिन के साथ बच्चे का उत्कृष्ट चित्र बनाती है, उसी अनाथ हुए मासुम बच्चें का अरुणा व उसके पति अपने बच्चें के रूप में अपनाकर उसे नया जीवन प्रदान करते हैं। कला की सार्थकता सौंदर्य साधना या कलात्मकता में नहीं बल्कि जीवन की साधना में निहित है। जो चित्रा और अरुणा में हैं।

४.२.११ रानी माँ का चबुतरा - गुलाबी

गुलाबी एक स्वावलंबी व स्वाभिमानी नारी है। अपने अकर्मण्य शराबी पति को धक्के देकर घर से निकाल कर वह अपने दो छोटे-छोटे बच्चें के लालन-पालन का भार स्वयं उठा लेती है। अविरत परिश्रम द्वारा वह अपना व अपने बच्चें के पेट भरने का यत्न करती है। काम पर जाने के लिए अपने छोटे-छोटे बच्चें को अकेले घर पर छोड़ जाने के लिए उसे मजबूर होना पड़ता है। पास-पडौस के लोग उसकी इस मजबूरी को न समझ उसे निर्दयी व हृदयहीन कहकर उसकी निंदा करते रहते हैं। पति की बेपरवाही, आर्थिक कठिनाईयों तथा समाज व पडौस की व्यर्थ निंदा वृत्ति ने गुलाबी को अत्यंत चिड़चीड़ा व क्रोधी बना दिया है। सबका व्यवहार उसके प्रति कटु है। वह बच्चों को भी पीट देती है। इस कठोरता के पीछे उसके आत्म सम्मान और स्वावलंबन का भाव उभरता है। दूसरों से मदद लेना अपने आत्म सम्मान से विरुद्ध समझती है। ''अहा बड़े आए बस्ती वाले।

पहले कोठरी खोलकर जाती थी तो मेरा छोरा सरकते-सरकते मोरी में आकर गिर गया। किसी ने उठाया भी नहीं। बड़े अपने बनते हैं छोरा भी तो जाने किस माटी का बना हुआ है, सारे दिन मोरी के सड़े पानी में सड़ता रहा, पर मरा नहीं, मर जाता तो पाप कटता।''[३३] सामाजिक व्यवस्था की यह कैसी विडम्बना है कि समाज इस नारी की विवशता को न समझकर उस पर, उसके चरित्र पर अनेकानेक लांछन लगाता रहता है। गुलाबी अपने बच्चें को शिशु सुरक्षा केन्द्र में रखने के लिए चार रुपियें एकठ्ठा करके बेहोश हो जाती है वह उसके मातृत्व का रूप ही है। वह एक असहाय और विवश नारी है पर वह स्वावलम्बी और परिश्रमी भी है।

४.२.१२ क्षय - कुन्ती

माता-पिता में से किसी एक के न रहने पर यदि संतान में सबसे बड़ी लड़की है तो उसे माता या पिता की स्थानपूर्ति करनी पड़ती है। यदि घर की आय का स्त्रोत भी बन्द हो जाए तो उसे विवशत: नौकरी भी करनी पड़ती है।

कुन्ती एक ऐसी ही विवश नारी है। माँकी मृत्यु तथा पिता की असाध्य बीमारी से विवश होकर उसे अध्यापिका की नौकरी करनी पड़ती है। पिता की बीमारी के ईलाज हेतु उसे अपनी इच्छा के विपरीत ट्यूशन भी करना पड़ता है। एक ओर घर और बाहर का बोझ उसके असहाय कंधो पर है तो दूसरी ओर सबके भविष्य की चिंता भी। लेकिन वह स्वयं भी कुछ चाहती है, उसके अपने भी कुछ सपने कुछ आकांक्षाएँ हैं, इसे सोचने वाला कोई नहीं है- 'धूमना फिरना सैर-सपाटो, हँसी-मजाक उसके जीवन में तो यह सब दूर-दूर तक भी नहीं है। क्या कभी भी नहीं होगा ? सारा जीवन यों ही निकल जाएगा ? जितना वह कमाती है, उसमें कितने ठाठसे वह रह सकती है। पापा क्या कभी अच्छे नहीं होंगे ? कब टिन्नू बड़ा होगा और उसके कन्धों का भार कम होगा। वे अपने पापा

के आदर्शो पर चलती है और जब उन आदर्शो को उसके पापा तोड़ने को कहते है तो वह हतप्रभ हो जाती है। विषम आर्थिक व पारिवारिक परिस्थितियों से उसकी व्यथा व कुंठा पराकाष्टा पर पहुँच जाती है। विपरीत स्थितियों में उसका जीवनरस सूख जाता है। वह अपने खंडित होते जा रहे व्यक्तित्त्व को साधे रखने का यत्न करती है। विषम परिस्थिति में स्वयं को नितांत अकेली और असहाय पाती है।

आधुनिक व्यक्ति पारिवारिक कर्तव्यों की पूर्ति में सहर्ष होम हो जाने में विश्वास नहीं करता। विवशता वश उसे यदि पारिवारिक जिम्मेदारियाँ उठानी भी पड़ती है तो वह उनसे मुक्त होने के लिए छटपटाने लगती है।

४.२.१३ त्रिशंकु - तनु

तनु के माता-पिता ने प्रेम विवाह किया था। उसकी माँ जब-तब नाना के तीव्र विरोध के बावजूद अपने प्रेम-विवाह की बात करती है, तो अपने साहस पर उनका चेहरा गौरव से दीप उठता है। इस प्रश्न पर उन्होंने अपने पिता से किस हिम्मत से मोर्चा लिया था इसकी चर्चा करते वक्त वे स्वयं पर किस प्रकार मुग्ध हो उठती थी। ''आज भी जब वे उसकी चर्चा करती है तो लीक से हटकर कुछ करने का संतोष उनके चहेरे पर झलक उठता है।''[३४] जब तनु पडोस के लड़कों द्वारा खूद पर फब्तियां कसी जाने की शिकायत करती है, तो अपनी आधुनिकता व लोक से हटकर चलने की पृष्टी का मौका मिल जाता है और खूद सब लड़कों को बुलाती है और ऐसा अब रोजरोज होने लगता है तो तनु की माँ उसे दबी जुबान से समझाती है और उसे पढ़ने-लिखने का वास्ता दिया जाता है।

जब तनु शेखर से प्रेम करती है तो वह सजग हो जाती है और जब इस रोमांस के प्रमाण स्वरूप प्रेमपत्र हाथ लग जाते है तो अपना आपा खो बैंठती है।

आधुनिकता के खोले में से संस्कारगत माँ का रूप उभर आता है। तनु को भला-बुरा कहा जाता है, और उसे मारा-फटकारा जाता है तब उसे नाना की भाषा और रवैया याद आता है। दो पीढ़ीयों के संधर्ष का सीलसीला शरु होता है। दोस्त ममी में अब उसे नाना के दर्शन होने लगते है। उसमें डटकर मुकाबला किया तब ममी ने भी समझौते के रूप में उसे फिर से सब को मिलने की छुट दी। तनु ममी के तये उलझे रूप को समझने में असमर्थ थी। वह अपनी कुटनीति से काम लेती है। वह मानती है कि ''नाना से लड़ना कितना आसान है। वह कभी नाना तो कभी ममी होकर जीती है।''[३५]

तनु के आधुनिक मानदण्ड़ो को उसकी मानसीकता और आधुनिक विचारधारा प्रकट करती है। आधुनिक वेशभुषा और रहन-सहन अपनाकर आधुनिक हो जाना सरल है, किन्तु आधुनिक विचारधारा अपनाकर चलना उतना आसान नहीं। आधुनिकता का ढोल पीटने वाले लोगों की दोहरी नीति पर तनु की विचारधारा प्रकट होती है।

४.२.१४ सयानी बुआ - सयानी बुआ

''सयानी बुआ'' एक ऐसे नारी-चरित्र की कथा है जो अपनी मान्यताओं, विचारों व आदतों के प्रति अत्यधिक रुढ़ता से आक्रांत है। सयानी बुआ के कठोर अनुसाशनात्मक गृहस्वामिनी के व्यक्तित्त्व को इन दो पंक्तियों में बड़ी कुशलता से प्रदर्शित किया है। ''पर मैने देखा कि परिवार के सभी लोगों पर एक विचित्र आतंक-सा छाया हुआ है। सब पर मानों बुआजी का व्यक्तित्त्व हावी है। सारा काम वहाँ इतनी व्यवस्था से होता है, जैसे सब मशीनें हों, जो कायदे में बंधी, बिना रुकावट अपना काम किया करती है....।''[३६] सयानी बुआ के इस रुढ़ व्यक्तित्त्व के प्रति लेखिका के मन में आक्रोश का भाव है। पुरानी पीढ़ी के प्रति

नई पीढ़ी के इस आक्रोश को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है - ''मैं मन ही मन कहा करती थी कि और चाहे जो भी हाल होता, हम सब मिट्टी के पुतले न होकर कम से कम इंसान तो अवश्य हुए होते ।''

सयानी बुआ का चरित्र-व्यक्ति वैचित्र्य का द्योतक है । वे कठोर अनुशासन रुढ़ आदतों, मान्यताओं तथा आतंकित कर देने वाले रौद्र व्यक्तित्त्व की स्वामिनी है । फिर भी नारीजन्य मातृत्व-भाव भी उनमें असीम है । अन्ततः समस्त कठोर चारित्रिक विशेषताओं पर मातृत्व की स्निग्धता की विजय होती है ।

४.२.१५ इसा के घर इंसान - एंजिला

इस कहानी में प्रेम के दमित रूप व उसकी प्रतिक्रिया को मनोवैज्ञानिक सुक्ष्मता से अंकित किया गया है । प्रेम मानव की सहज वृत्ति है । अतः उसको कृत्रिम रूप में नियंत्रित करने से जीवन कुंठित हो जाता है । मानव की प्राकृतिक लालसाओं पर बाह्य नियंत्रण व दमन का प्रयास उन्हें और अधिक आवेगशील बनाता है । फलतः मनुष्य नियंत्रण व दमन के प्रति विद्रोह कर उठता है ।

''इसा के घर इंसान'' में नारी दमन की शिकार है । लूसी-मेरी-जूली व एंजिला सभी इस जीवन को जीने के लिए विवश है । उनका समस्त परिवेश घूटन-युक्त और असह्य है । उनके जीवन का रस सूख चुका है, और सभी इस घटनापूर्ण जीवन से अपनी सहजता खो चूकी है । और वे- ''अपने से ही लड़ रही है, अपने को ही कुतर रही है ।''[३७] यहाँ धर्म व नैतिकता की कुशलता में नारी के व्यक्तित्त्व को जकड़ा हुआ है । बदलती सामाजिक परिस्थियों में नारी प्राचीन रुढ़ियों की इन कठोर श्रृंखलाओं से मुक्ति पाने के लिए छटपटा रही है । ''काश ये दिवारें किसी तरह हट जाती ।''[३८] मिसेस शुक्ला के इस कथन में जहाँ नारी जीवन की बेबसी व्यक्त हुई है वहीं लूसी व एंजिला की मुक्ति भावना, विषम परिस्थितियों

से जुड़ने का साहस और विद्रोहात्मक रूप नारी के नए साहसी व विद्रोही रूप को प्रस्तुत करता है।

विजयेन्द्र स्नातक के विचार में ''बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों में नारी के संघर्ष का यह एक अत्यंत आत्मीय और भावपूर्ण चित्र नहीं है। जिसमें धार्मिक और सामाजिक हर प्रकार की रुढ़ि के प्रति एक अविश्वास लिए अपने से लड़ रही या अपनी ही आत्मा को मिटाकर जिवीत रहने वाली जूली है और अस्वाभाविक धार्मिक विश्वासों, क्या केवल धार्मिक है। इसके प्रति तिरस्कार की भावना लिए उन्हें वे चुनौति देती हुई एंजिला है। लेकिन एंजिला की यह चुनौति या लूसी के विद्रोह का घरातल नितांत मानवीय और प्राकृतिक है।''[३९] एंजिला का यह वक्तव्य उसकी सहज मानवीय प्रकृति को इंगित करता है- ''देखे कितनी सुंदर साडी पहनी है इसमें- फिर भी हम क्यों अच्छे कपड़े नहीं पहनते, हम इंसान नहीं है.... मैं नहीं रहूँगी यहाँ, मैं कभी नहीं रहूँगी। देखो मेरे रूप को।''[४०]

मानव की प्राकृतिक कृतियों एवम् आकांक्षाओं को कृत्रिम रूप से दबा देना क्या संभव है। एंजिला का अन्त में विद्रोही हो उठना ही इसका प्रमाण है। ''मैं अपनी जिन्दगी को, अपने इस रूप को चर्च की दिवारों के बीच में नष्ट नहीं होने दूँगी। मैं जिन्दा रहना चाहती हूँ, आदमी की तरह जिन्दा रहना चाहती हूँ। मैं इस चर्च में घुट-घुट कर नहीं मरुँगी। मैं भाग जाऊँगी, मैं भाग जाऊँगी।''[४१]

मानवी की सहज वृत्तियो पर कृत्रिम अंकुश लगाने के परिणाम एवम् बदलते सामाजिक परिवेश में नारी के सजग व्यक्तित्त्व को कहानीकार ने पूर्ण दक्षता के साथ उठाया है।

४.२.१६ जीति बाजी की हार - आशा, नलीनी, मुरला

यह कहानी भी मानव मन की दुर्बलताओं का सुंदर विवेचन करती है।

आशा-नलीनीऔर मुरला कॉलेज की सहपाठियाँ व सहेलियाँ थी । तीनों ही अत्यानुधिक विचारधारा वाली नारियाँ थी । विवाह-साज-श्रृंगार आदि सहज परंपरागत रुचियों से ये तीनों कोसों दूर थीं । उनके विचार में- ''एक पढ़ी लिखी लड़की किस प्रकार अपने विचारों और व्यक्तित्त्व का खून करके इस प्रकार पति के रंग में रंग सकती है, यह बात इन बुद्धिजीवी और अपने ही व्यक्तित्त्व के भार से दबी लड़कियों के लिए कल्पनातीत थी ।''[४२] वे तीनों ही अपनी इस विचारधारा पर गौरव करती थी, किन्तु नलीनी अपनी इस दृढ़ता पर टिक नहीं पाती और विवाह करके एक बच्चे की माँ भी बन जाती है । आशा और मुरला को सखी का यह कृत्य आघातजनक और आश्चर्यजनक लगता है । अपनी सखी के इस प्रकार गृहस्थी जीवन में रचपच जाने पर वे खुलकर उसकी खिल्ली उडाती है, ''मेरा घर, मेरा पति, मेरी बच्ची । मानों इसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं दुनिया में । उस पांच महिने के माँस के लोथड़े में उसे जाने कहाँ की समझ और होंशियारी दिखाई दे रही थी ।''[४३]

बुद्धिमती नलीनी का यह कृत्य, विवाह और बच्चे । उन्हें उसकी बुद्धिहिनता का प्रतीक प्रतित होता है । फिर एक दिन आशा भी प्रेमजाल में फँस कर विवाह कर लेती है । रह गई मुरला सो तो ''विवाह को बंधन समझती है, विवाह के परिणाम बच्चों को उन्नतिका बंधन समझती है । सचमुच ही उसके मन में इन सबके लिए कभी लालसा नहीं जागती ।''[४४]

घर, परिवार, विवाह आदि से विरक्त हो वह उत्तरोत्तर उन्नति के शिखरों पर चढ़ती गई । आशा से मिलने पर उसे भी वह संतान के मोह में जकड़ा पाती है । तब उसे आशा के उन शब्दों की याद आ जाती है । जो उसने नलीनी को कहे थे- ''तभी मुरला को याद आया की नलीनी की पाँच महिने की बच्ची जिस आशा

को माँस का लोथड़ा प्रतित हो रही थी, उसी आशा को अपना केवल पाँच दिन का बच्चा भी कितना चंचल और होनहार दिखाई दे रहा है।''[४५]

किन्तु मुरला अपने विचारों पर दृढ़ है। अतः वह शादी नहीं करती और वह शादी का अर्थ अपने व्यक्तित्त्व का सौदा ही समझती है। जब वह जिन्दगी की राह में काफी दूर निकल जाने पर उसे अपने जीवन के एकाकीपन और नीरसता का आभास होता है। अन्ततः उसका नारीत्व जाग उठता है और उसका मातृत्व उसके स्वतंत्र आधुनिक व्यक्तित्त्व को हरा देता है। मुरला अपनी हार स्वीकार करते हुए आशा से उसकी बिटीया माँग बैठती है- ''तुम अपनी यह बिटीया मुझे दे दे।''[४६]

इस प्रकार कहानीकार यह सिद्ध करती है कि मातृत्व नारी की प्राकृतिक आवश्यकता व लालसा है। जिस पर अंकुश लगाना संभव नहीं। विवाह, संतान व परिवार मनुष्य की आवश्यकता है। जिसके अभाव को सहज ही महसूस किया जा सकता है।

४.२.१७ मजबूरी - रमा

रमा सुशिक्षीत, व्यवहारकुशल, और विनम्र है। किन्तु साथ ही आधुनिक युग से पूर्ण परिचित भी। आधुनिक युग में स्नेह, ममता और मूल्यों का रास हो गया है। आर्थिक मजबूरीयों से वृद्ध-दंपति का पुत्र शहर में नौकरी करने को बाध्य है। उनकी पुत्रवधू रमा है जिसको अब दूसरी बार संतान होने वाली है, तो शहरी परीस्थितियों में अकेली दो संतानों को न संभाल पाने से वह पहले पुत्र को दादी के पास गाँव छोड़ आती है। दादी के स्नेहांद छत्रछाया में बेटे के भविष्य का प्रश्न कर्तव्य परायण सुशिक्षीत माँ की दूर चिंता का कारण बन जाता है और ममता व कर्तव्य में संघर्ष होता है और जीत जीवन धर्म की होती है और रमा बच्चे के उज्जवल भविष्य के लिए उसे शहर ले जाती है।

रमा अम्मा के न चाहने पर भी बच्चे को ले जाने की जीद्द करती है और न चाहते हुए भी वह अम्मा को भला बूरा भी सुनाती है। यहाँ रमा का उद्देश्य अपनी सास की भर्त्सना करना नहीं है। लेकिन अपने बेटे की भविष्य की चिंता से ग्रस्त एक ममतामयी माँ का उद्वेग यहाँ झलकता है।

रमा नयी पीढ़ी की नारी है, जो समझदार, कुशल, विनम्र और पढ़ी लिखी है।

४.२.१८ अकेली - सोमा बुआ

सोमा बुआ समाज की उपेक्षा वृत्ति की शिकार है। टूटे दाम्पत्य व युवा पुत्र की अकाल मृत्यु की पीड़ा को सोमा बुआ समाज से अत्याधिक जुड़कर भुला देना चाहती है। किन्तु वह जितना समाज से जुड़ने का प्रयत्न करती है, उतना ही समाज उससे दूर होता जाता है। परिवार-सुख से वंचित नारी का हृदय समाज में अपनत्त्व ढूंढने को लालायित रहता है, किन्तु स्वार्थपूर्ण, हृदयहीन व कृतध्न समाज उसे दे पाता है, तो केवल अपमान व उपेक्षा।

इस में एक समाज व परिवार से टूटी हुई, एकाकी और स्नेहकांक्षिणी नारी की पीड़ा व्यक्त हुई है।

४.३ निष्कर्ष

मन्नू भण्डारी एक उच्चकोटी की कहानी लेखिका है । उन्होंने अनेक विषयों पर रचना की है। इन की कहानियों में चित्रित समस्याएं आज भी इतनी ही ज्वलन्त और ताजा है। इन कहानियों में जीवन की सच्चाई ईमानदारी से अभिव्क्त हुई है । अपने आसपास घटित होने वाली घटनाओं को लेकर उन्होंने अनेक जीवन्त व सशक्त कहानियों का सृजन किया है। व्यक्ति, समाज व परिवार तीनों को उन्होंने एक दूसरे के पूरक के रूप में इन कहानियों में चित्रित किया है। किन्तु फिर भी व्यक्ति उनकी भावनाओं के सर्वोच्च स्थान पर सदैव आसीन रहा है । मन्नूजी ने व्यक्ति को उसकी समग्रता में चित्रित किया है। यह व्यक्ति न तो सर्वश्रेष्ठ गुणधारी देव है, और न ही पापपुंज राक्षस ही। अपने समस्त गुणदोषो के साथ जीने वाले साधाराण इन्सान मन्नूजी की इन कहानियों में चित्रित हुए हैं। गुणदोषो के आधार पर व्यक्ति की समीक्षा करना मन्नूजी का उद्देश्य नहीं है। प्रकृति और परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति की मानसिक प्रवृत्तियों, प्रतिक्रियाओं एवम् कार्य-कलापों का मनोवैज्ञानिक चित्रण करना कहानीकार का मुख्य ध्येय है । अनुभूति और कल्पना के आधार पर मानव-मन के गहनतम कोनों में झाँककर उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने का उन्होंने यत्न किया है । इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। मनुष्य की प्रकृति, मनोवृत्तियाँ एवम् मनोदशाओं का प्रभाव पूर्ण व सुंदर अंकन उनकी कहानियों में हुआ है।

मन्नू मण्डारी ने समाज को एक साधन के रूप में स्वीकृत किया है। व्यक्ति का परिवेश उसकी मानसिक परिस्थितियों के लिए किसी हद तक जिम्मेदार होता है। मन्नूजी ने आदर्शो की स्थापना न करते हुए भी सामाजिक विकृत्तियों और विडम्बनाओं पर ऊँगली रखकर सराहनीय कार्य किया है।

मन्नू भण्डारी ने पारिवारिक जीवन के आधुनिक स्वरूप को अपनी कहानियों में स्थान दिया है। परिवार में नारी की बदलती स्थिति को उन्होंने विशेष रूप से उभारा है किन्तु परंपरागत नारी तथा उसके संस्कारो को भी उन्होंने चित्रित किया है। नारी चाहे आधुनिक युग की हो अथवा पूरानी पीढ़ी की। यह दूसरी बात है कि परंपरागत भारतीय आधुनिक नारी अपने अधिकारों के लिए जूझती है। किन्तु दोनों ही स्थितियों में झेलना तो नारी को ही पड़ता है। मन्नूजी ने नारी की इस विडम्बनापूर्ण स्थिति को इन कहानियों में संवेदनात्मक आत्मीयता से चित्रित किया है। इन सभी कहानियों मे नारी के प्रति कहानीकार की सहानुभूति स्पष्ट रुप से उभरी है। नारी हो ने के नाते नारी-मन की पीड़ा, निराशा और कुंठा को उन्होंने अनुभूति के स्तर पर समझा और परखा है। यही कारण है कि परिवार और परिवेश में नारी को इतने स्वाभाविक व सच्चे रूप में चित्रित कर सकी है। यद्यपि कहीं-कहीं नारी के प्रति उनकी यह सहानुभूति पक्षपात पूर्ण व अतिरेकपूर्ण लग सकती है, किन्तु इस सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भारतीय समाज व परिवार में नारी को ही अधिक सहन करना पड़ता है। हर परिस्थिति में कींमत नारी ही चुकाती है। आधुनिक विषम परिस्थितियों में जूझते व टूटते पारिवारिक संबंधों एवम् स्थितियों को मन्नूजी ने यथार्थ रूप में उभारा है। टूटते हुए पारम्परिक पारिवारीक मूल्यों का चित्रण एवम् नवीन मूल्यों की स्थापना को मन्नूजी की कहानियों में देखा जा सकता है।

मन्नू भण्डारी प्रेम को मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति मानती है। प्रेम को कोई स्वर्गीय-सुख या दैविक वरदान न मानते हुए भी उसके स्वच्छ व उदात्त रूप की वे हिमायती है। प्रेम में छल, कपट या प्रपंचना की उन्होंने तीव्र भर्त्सना की है। प्रेम दो मानव-हृदयों को जोड़ने वाला सूक्ष्म कोमल तंतु होता है। प्रेमी

युगल में से यदि एक दूसरे को छलने अथवा ठगने का यत्न करता है तो यह तंतु स्वतः ही टूट जाता है । मन्नूजी ने प्रेम-संबंधों के निरुपण में इस तथ्य को विशेषतः अंकित किया है । खास तौर से पुरुष वर्ग की प्रपंचक भ्रमरवृत्ति पर उन्होंने तिक्ष्ण व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं । प्रेम-संबंधों की यथातथ्य स्थितियों को उभारने में भी वे पूर्णतः सफल रही है। युगिन परिस्थितियों में प्रेम के स्वरूप उसकी कुंठा, पीड़ा, घूटन, अजनबीपन आदि को मन्नूजी ने सहजता से उद्‌घाटीत किया है। इनकी कहानियों में वर्णित प्रेम-संबंध स्त्री और पुरुष के आधुनिक रूप को भी स्पष्ट करते हैं । स्त्री और पुरुष के संबंध में आए परिवर्तन को भी इन कहानियों मे देखा जा सकता है ।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि मन्नूजी का सम्पूर्ण कहानी-साहित्य जीवन का दर्पण है । जिस में व्यक्ति, परिवार व उसका परिवेश अपनी समस्त अच्छाईयों एवम् बुराइयों के साथ सच्चाई व ईमानदारी से व्यक्त हुआ है। विशेषतः अंकित किया है। खास तौर से पुरुष वर्ग की प्रपंचक भ्रमरवृत्ति पर उन्होंने तिक्ष्ण व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं । प्रेम-संबंधों की यथातथ्य स्थितियों को उभारने में भी वे पूर्णतः सफल रही है। युगिन परिस्थितियों में प्रेम के स्वरूप उसकी कुंठा, पीड़ा, घूटन, अजनबीपन आदि को मन्नूजी ने सहजता से उद्‌घाटीत किया है । इनकी कहानियों में वर्णित प्रेम-संबंध स्त्री और पुरुष के आधुनिक रूप को भी स्पष्ट करते हैं । स्त्री और पुरुष के संबंध में आए परिवर्तन को भी इन कहानियों मे देखा जा सकता है ।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि मन्नूजी का सम्पूर्ण कहानी-साहित्य जीवन का दर्पण है । जिस में व्यक्ति, परिवार व उसका परिवेश अपनी समस्त अच्छाईयों एवम् बुराइयों के साथ सच्चाई व ईमानदारी से व्यक्त हुआ है ।

प्रकरण : ४ संदर्भ सूचि

(१) डॉ. शिवशंकर पाण्डेय : स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कहानी, कथ्य और शिल्प १९७८ । पृ. : २०१

(२) राजेन्द्र यादव : मन्नू भण्डारी, एक इंच मुस्कान, १९६३ । पृ. : २०३

(३) राजेन्द्र यादव : मन्नू भण्डारी, एक इंच मुस्कान, १९६३ । पृ. : २२७

(४) राजेन्द्र यादव : मन्नू भण्डारी, एक इंच मुस्कान, १९६३ । पृ. : २४५

(५) राजेन्द्र यादव : मन्नू भण्डारी, एक इंच मुस्कान, १९६३ । पृ. : २४५

(६) राजेन्द्र यादव : मन्नू भण्डारी, एक इंच मुस्कान, १९६३ । पृ. : २४५

(७) राजेन्द्र यादव : मन्नू भण्डारी, एक इंच मुस्कान, १९६३ । पृ. : १५०

(८) राजेन्द्र यादव : मन्नू भण्डारी, एक इंच मुस्कान, १९६३ । पृ. : २०९

(९) राजेन्द्र यादव : मन्नू भण्डारी, एक इंच मुस्कान, १९६३ । पृ. : २१०

(१०) डॉ. चन्द्रकान्त बादिबडेकर, नन्दीनी मिश्र : मन्नू भण्डारी का उपन्यास साहित्य । पृ. : ८४

(११) डॉ. मनमोहन सहगल उदद्यृत : (वही) । पृ. : १०२

(१२) मन्नू मण्डारी : आपका बंटी । पृ. : ३५-३७

(१३) प्रभावर्मा : हिन्दी उपन्यास, सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया और स्वरूप क्लासिकल पब्लिकेशन कंपनी, नई दिल्ली, १९९० । पृ. : १६९

(१४) डॉ.सुकृता अजमानी : प्रेमचंद्रोत्तर हिन्दी उपन्यासों में बाल-मनोविज्ञान १९९० । पृ. : १८०

(१५) डॉ.निर्मला जैन : आधुनिक हिन्दी उपन्यास, संपादक भीष्म सहानी १९८० । पृ. : २८४

(१६) गुलाबराय : काव्य के रूप । पृ. : १९९-२००

(१७) मन्नू भण्डारी : मैं हार गई । पृ. : ६९

(१८) मन्नू भण्डारी : मैं हार गई । पृ. : ५२

(१९) मन्नू भण्डारी : यही सच है । पृ. : ९

(२०) मन्नू भण्डारी : एक प्लेट सैलाब, नई नौकरी, १९६८ । पृ. : १७

(२१) मन्नू भण्डारी : एक प्लेट सैलाब, नई नौकरी, १९६८ । पृ. : १४

(२२) मन्नू भण्डारी : एक प्लेट सैलाब, नई नौकरी, १९६८ । पृ. : १८

(२३) मन्नू भण्डारी : एक प्लेट सैलाब, ऊँचाई, १९६८ । पृ. : १४८

(२४) मन्नू भण्डारी : एक प्लेट सैलाब, ऊँचाई, १९६८ । पृ. : १३७

(२५) मन्नू भण्डारी : एक प्लेट सैलाब, ऊँचाई, १९६८ । पृ. : १३८

(२६) मन्नू भण्डारी : यहीं सच है, नशा, १९७८ । पृ. : ९७.

(२७) मन्नू भण्डारी : मैं हार गई, एक कमज़ोर लड़की की कहानी, १९८० । पृ. : ४३.

(२८) मन्नू मण्डारी : मैं हार गई, गीत का चुम्बन, १९८० । पृ. : ३१

(२९) मन्नू मण्डारी : एक प्लेट सैलाब, बाहों का घेरा, १९६८ । पृ. : १२४

(३०) मन्नू मण्डारी : एक प्लेट सैलाब, १९८० । पृ. : १०७

(३१) मन्नू मण्डारी : एक प्लेट सैलाब, १९८० । पृ. : १०७

(३२) मन्नू मण्डारी : एक प्लेट सैलाब, बांहो का घेरा, १९८० । पृ. : १११

(३३) मन्नू भण्डारी : यहीं सच है, रानी माँ का चबुतरा, १९७८ । पृ. : १२४

(३४) मन्नू भण्डारी : त्रिशंकु, त्रिशंकु, १९८१ । पृ. : १०६

(३५) मन्नू भण्डारी : त्रिशंकु, त्रिशंकु, १९८१ । पृ. : १२१

(३६) मन्नू भण्डारी : मैं हार गई (सयानी बुआ), १९८० । पृ. : ६७

(३७) मन्नू भण्डारी : मैं हार गई, इसा के घर इंसान, १९८०। पृ. : १३

(३८) मन्नू भण्डारी : मैं हार गई, इसा के घर इंसान, १९८०। पृ. : ८

(३९) सं. सुरेन्द्र ले. विजयेन्द्र : कहानी दिशा, दशा और संभावना । पृ. : १०३

(४०) मन्नू भण्डारी : मैं हार गई, इसा के घर इंसान, १९८० । पृ. : १७

(४१) मन्नू भण्डारी : मैं हार गई, इसा के घर इंसान, १९८० । पृ. : १७

(४२) मन्नू भण्डारी : मैं हार गई, जीति बाजी की हार, १९८० । पृ. : ३४

(४३) मन्नू भण्डारी : मैं हार गई, जीति बाजी की हार, १९८० । पृ. : ३६

(४४) मन्नू भण्डारी : मैं हार गई, जीति बाजी की हार, १९८० । पृ. : ३८

(४५) मन्नू भण्डारी : मैं हार गई, जीति बाजी की हार, १९८० । पृ. : ९७

(४६) मन्नू भण्डारी : मैं हार गई, जीति बाजी की हार, १९८० । पृ. : ४१

(४७) मन्नू भण्डारी : बिना दिवारों के घर, १९७६ । पृ. : ४५

(४८) मन्नू भण्डारी : बिना दिवारों के घर, १९७६ । पृ. : ९९

प्रकरण : ५

५ मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी जीवन की समस्याएँ और समाधान

५.१. प्रस्तावना

५.२. पारिवारिक समस्याएँ

५.३. प्रेम व यौन सम्बन्धी समस्याएँ

५.४. कामकाजी महिला की समस्याएँ

५.५. विधवा नारी की समस्याएँ

५.६ समस्या का समाधान

५.७ निष्कर्ष

प्रकरण : ५ मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी जीवन की समस्याएँ और समाधान

५.१ प्रस्तावना

मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी की समस्याओं का वास्तविक रूप समाज के सामने स्पष्ट करने का एक आयाम रहा है। व्यक्ति के व्यक्तित्त्व में अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों का महत्त्व होता है। अतीत उसके मानसिक धरातल में रहता है, जिसमें परंपरा के तत्त्व निहित रहते हैं, जिनका प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्त्व के विकास के दौरान पड़ता है। इसलिए परंपरा के तत्त्व उसके व्यक्तित्त्व में अंतर्निहित रहते हैं। वह वर्तमान समय में जीवन जीता है, और भविष्य की कल्पना करता है। साहित्य में भी अतीत, वर्तमान और भविष्य की बातें निहित रहती है। मनुष्य कल्पनाशील प्राणी भी है। इसलिए वह कल्पनात्मक रूपों की भी सृष्टि करता है। व्यक्ति के व्यक्तित्त्व में अन्य बातों के अतिरिक्त विचार और भावना का भी द्वन्द्व चलता है। विचारों के बदलने से, भावना और भावना के बदलने से विचार परिवर्तित होते रहते हैं। साहित्य में भी विचार और भावना का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

नारी अस्मिता की पहचान और गरिमा के लिए अनेक आंदोलन होते रहे हैं। उनके सामने आने वाली चुनौतियों को आर्थिक आधार पर विशेष रूप से आंका गया है। सारी लड़ाई का मुख्य प्रयोजन ही यह है कि नारी के लिए एक सुखद भविष्य का निर्माण, निष्पक्ष और न्यायी हो सके। एक बेहतर समाज की कल्पना के लिए उदार दृष्टि की आवश्यकता है किन्तु समाज में महिलाओं के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण को खोजना कठिन है। नि:संदेह यह एक गंभीर समस्या है। समाज सुधारकों ने १९ वीं शती में ही अनुभव कर लिया था कि नारी

पर अन्यायपूर्ण सामाजिक रुढ़ियों को थोपना उचित नहीं है, वह शिक्षा ग्रहण कर सके अपनी इच्छा से उचित आयु में विवाह कर सके, विधवाएँ पूनर्विवाह कर सके और स्त्रियाँ समाज निर्माण के कार्यो और परिवर्तनकारी योजनाओं में महत्त्वपूर्ण निर्णय ले सके कार्यो और परिवर्तनकारी योजनाओं में महत्त्वपूर्ण निर्णय ले सके यह अपरिहार्य है ।

मन्नू भण्डारी के कथा–साहित्य में नारी की समस्याँ को प्रस्तुत किया गया है। प्रेम व यौन संबंधी, कामकाजी महिला की एवम् विधवा जीवन की पारिवारिक समस्याँ पर विमर्श करना यहाँ उचित होगा ।

५.२ पारिवारिक समस्याएँ

हिन्दी कथा-साहित्य, पारिवारिक विघटन की बहुविध झाँकियाँ प्रस्तुत करने में सफल रहा है। पारिवारिक विघटन की समस्या मूलतः स्वाधीनता के बाद उपजे हुए आर्थिक और सामाजिक सोच के वैषम्य की देन है। स्वस्थ सामाजिक वृत्ति की अनुप्रेरणा ही मनुष्य को, परिवार संस्था को निर्मित करने में सहायक सिद्ध होती है और उसकी अत्यधिक आत्मोन्मुखता ही परिवार को विघटन के कगार पर ले जाती है। संख्या से जुड़ कर मनुष्य एक-दूसरे के अस्तित्त्वों की सुरक्षा की गारन्टी देते और लेते हैं, लेकिन इसी संस्था के किसी सदस्य या किन्ही सदस्यों की अत्यधिक आत्म-केन्द्रित होने की प्रवृत्ति उसे पारिवारिक विघटन की ओर ले जाती है। मनुष्य को आत्म-केन्द्रित बनाने में उसके निज के अहम् का सर्वाधिक योगदान रहता है। मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में पारिवारिक विघटन दो स्तरों पर रूपायित हुआ है-

(१) संयुक्त परिवार विघटन

(२) दाम्पत्य विघटन

स्वाधीनोत्तर भारत का मध्यवर्गीय परिवार अथवा मध्यकित परिवार जहाँ आर्थिक उत्तरदायित्वों को पूरा अपने के लिए या फिर अपने-अपने अस्तित्त्वों की अलग पहचान बनाये रखने के लिए, पति-पत्नी दोनों ही काम करते हैं- वहाँ यह पारिवारिक-विघटन अत्यधिक भयंकर रूप में देखने को मिलता है। इसी पारिवारिक विघटन का कारण है कि ''घर अंदर ही अंदर खण्ड़ित हो रहा है।''[१] इन छत बनाने वालों की अत्यधिक प्रभुसत्ता और आतंक का परिणाम है कि ''पिता का अस्तित्त्व एक विशालकाय बुलन्द दरवाजे की तरह उसे निहायत और दयनीय बना रहा है।''[२] ''ये विवाह आदि जैसे वैयक्तिक निर्णय बलात् संतान पर आरोपित

कर रहे हैं।''[३] ''पूरानी पीढ़ी की प्रभुसत्ता के विरोध में नई पीढ़ी आवाज उठा रही है। लड़की भी अपने वैयक्तिक जीवन में पिता का प्रतिबंध सहन करने को तैयार नहीं।''[४]

नौकरी पेशा लड़कीयाँ की अपनी इच्छा से विवाह कर उसकी सूचना मात्र देकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेती है। परंतु ''कई पुत्रियाँ तो बिना विवाह किए ही अपने घरवालों के खिलाफ पुरुषों के साथ रहती है।''[५] ऐसी स्थिति से स्पष्ट होता है की पुरानी पीढ़ी की नई पीढ़ी को प्रतिबंधित करने का प्रयास व्यर्थ सिद्ध हो रहा है। संयुक्त परिवार में अलगाव की प्रवृत्ति बढ़ रही है। कहने को बड़ा परिवार है। वृद्ध माता उनका विवाहित पुत्र और उसकी पत्नी, दो अविवाहित पुत्र तथा अविवाहित पुत्री और देवरानी। इन सब पर अम्माजी का व्यक्तित्त्व हावी है और सभी इससे मुक्ति चाहते हैं। ''सभी अपने-अपने में व्यस्त कोई किसी से आपसी संबंध नहीं जोड़ पाता है और जो कुछ जुड़ना भी चाहते हैं पर निभा नहीं पाते।''[६]

''अतिवैयक्तिकता की जड़ो की अधिक गहराई के कारण नई पीढ़ी ने अपने उत्तरदायित्व को भुला दिया है। युवक बीमार भाई, अँधीमाँ, रिटायर्ड बाप और विवाहित बहन की जिम्मेदारी को षडयंत्र मानता है।''[७] एक भाई को झूठे गबन के आरोप में सस्पेंड किये जाने पर दूसरा भाई उसके परिवार एवम् बच्चों की जिम्मेदारी को निभाना नहीं चाहता। विवश होकर माँ बेटी की कमाई खाती हैं। पुरानी पीढ़ी के अनुत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार के कारण भी संतान संतुष्ट नहीं हो पा रही है। संतान को जन्म देते हैं पर उसके प्रति अपने कर्तव्यों से बचना चाहते हैं। ''माता-पिता की आपसी लड़ाई तथा पिता के मधमी होना भी संतान में आक्रोश एवम् विद्रोह की भावना जन्म देता है। यहीं कारण है की संतान

वृद्धावस्था में भी उन्हें आश्रय व आदर नही दे पाती ।''[८]

आर्थिक समस्या आज की सबसे बड़ी समस्या है । ''जीवन स्तर आवश्यकताओं और मँहगाई की वृद्धि ने संयुक्त परिवार के जीवन को प्रभावित किया है । छोटे-छोटे आर्थिक प्रश्न पारिवारिक एक नया पहलू बन जाते हैं । आर्थिक अभाव की स्थिति व्यक्ति को अहम् केन्द्रित होने को उपसा रही है ।''[९]

संयुक्त परिवार के निरन्तर विघटित होने और व्यक्ति के अत्यधिक आत्म केन्द्रित होते जाने के परिणाम स्वरूप परिवार अत्यधिक लघु से लघुत्तर होते चले गये, जहाँ पहले परिवार की परिकल्पना में दादा-दादी, माता-पिता, स्वयं पति-पत्नी और उनके विवाहित बच्चे मिलकर चार पीढ़ियाँ जीती थी वहाँ आज परिवार की कल्पना पति-पत्नी और उनके अविवाहित बच्चों अर्थात केवल एक पीढ़ी तक सीमित होकर रह गई है । यह स्तर दाम्पत्य स्तर है । मनुस्मृति में कहा गया है ''जिस प्रकार मृत्युपरांत धर्म-अर्थ का काम आदि के प्रसंग में कोई अलगाव की स्थिति न जाने पाये वैसा ही दाम्पत्य जीवन होना चाहिए ।''[१०] अर्थात मनुस्मृति का अक्षत् और अखण्ड दाम्पत्य की कल्पना करते थे लेकिन आज की अती वैयक्तिकता की आग्रह तथा अन्य कारणो में दाम्पत्य को अक्षत् और अखण्ड नहीं रहने दिया है । इस दाम्पत्य विश्रृंखलता के मूल में तीन कारण हैं । (१) नारी पुरुष का अहम् (२) काम प्रेरक का भिन्न रूप में अनुकूलन (३) आर्थिक वैषम्य ।

मन्नू भण्डारी कथा-साहित्य में दाम्पत्य विघटन की पहली स्थिति ही अधिक मिलती है शेष दोनों स्थितियाँ कम । पुरुष की भाँती आज की नारी भी अपने अहम् के प्रति जागरुक है । जहाँ वह पहले अपने अहम् की हत्या करके विपरीत परिस्थितियों समायोजन करती थी वहीं आज परिस्थितियों को अपने अनुकूल ही चाहती है ।

अन्यथा उस संबंध को एक झटके से तोड़ने में नहीं हिचकिचाती। मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी अहम् की पर्याप्त चर्चा है जो अलग-अलग संदर्भो से उभरती है।

आज की नारी का व्यक्तित्त्व स्वतंत्र है, वह अपने कार्य में ज्यादा हस्तक्षेप पसंद नहीं करती नारी-पुरुष को पति के रूप में ही नहीं मित्र के रूप में भी पाना चाहती है, नारी नहीं चाहती कि वह समझौता करती फिरे और अपने अहम् को हीन-भावना में बदल ले, यही कारण है कि ''समझौता का प्रयत्न भी दोनों में एक अंडरस्टैन्डिंग पैदा करने की इच्छा से नहीं होता... वरन् एक दूसरे को पराजित करके अपने अनुकूल बना लेने की आकांक्षा से।''

भीतर ही भीतर चलने वाली एक अजीब ही लड़ाई थी वह भी, जिस में दम साध कर दोनों में हर दिन प्रतीक्षा कि थी कि ''कब सामने वाले की साँस उखड़ जाती है, और वह घूटने टेक देता है, जिससे कि फिर वह बड़ी उदारता और क्षमाशीलता के साथ उसके सारे गुनाह माफ करके उसे स्वीकार कर ले, उसके संपूर्ण व्यक्तित्त्व को गिरे एक शून्य में बदल कर।''[११]

पति की अत्यधिक व्यस्तता ने नारी के अहम् को जीवित रखने में काफी हवा दी है, जिससे वह खुद को उपेक्षित महसूस करके अहम् के प्रति सक्रिय हो जाती है। वह पति की सिर्फ 'भोग्या' बनने को तैयार नहीं है। इसी कारण वह कह उठती है ''इसे तो दफतर और मेरे सिवा दुनिया में कुछ सुझे ही नहीं।'' दिन भर ऑफिस और रात भर मैं। आदमी नारी की स्वतंत्रता को सहज-भाव से स्वीकार नहीं कर पाता, हाँ इस विषय को आधार बना कर लम्बी-चौड़ी बहस जरुर कर सकता है। इस सत्य से नारी अनभिज्ञ नहीं है, इसी वजहसे कह उठती है, आप जो यहाँ बैठकर इतनी लम्बी-चौड़ी बाते बघार रहे है, मान लो, कल को

आपकी बीबी आए और किसी दूसरे पुरुष के साथ वह अपना शारिरीक संबंध रखें तो बर्दास्त कर सकेगे आप ? यों ड्राइंग रुम में बैठकर बाते बनाना बड़ा सरल होता है पर वे बाते करती ही रहती है, कोरे सिद्धांत। अपने अहम् के प्रति जागरुक होने के कारण वह घर के अतिरिक्त भी अन्य क्षेत्रों में प्रवेश कर रही है। पुरुष का अहं नारी की उन्नती में बाधक जरुर होता है। जिसे वह स्वीकार रही है, कि ''इन्हें न पढ़ने-लिखने का शोख है, न किसी से मिलने-जुलने का बहुत मन मारु हूँ पर कभी कभी तो मन के करे हि कि सब छोड़ छाड़कर भाग जाऊँ।''[१२]

आर्थिक स्वतंत्रता और उच्च शिक्षा तथा परिपक्व आयु में नारी को व्यवहार में एक विचित्र दर्द पैदा कर दिया है। वह आदमी पर निर्भर नहीं है, आत्म निर्भर है.... हर आदमी किसी-न-किसी पर डिपेंड करता है, मैं भी करती हूँ।...पर विभु पर नहीं। उन पर निर्भर करुँगी तो कितनी बड़ी कीमतें मांगेगे वे। उतना सब देने की सामर्थ्य नहीं है मुझमें। खाने के लिए अपनी नौकरी पर निर्भर करती हूँ और जीने के लिए अपनी कला पर।...[१३] ''कोई भी नारी नहीं चाहती की उसका पति पूर्व प्रेम संबंध निभाए। वह इस के लिए 'तलाक' तक के लिए भी अपने को तैयार कर लेती है।''[१४]

''तीसरा आदमी के दाम्पत्य विघटन के मूल में नारी का आहत् मातृत्व तथा पुरुष की पौरुष हीनता का आत्मदाह है।''[१५] ''अर्थहीनता के कारण भी दाम्पत्य जीवन का रूप विकृत हो रहा है।''[१६] पुरुष सोचता है कि उसकी प्रेरणा कोई और है और स्त्री सोचती है कि पति को अन्यत्र आकर्षण से वापस नहीं लाया जा सकता तो ऐसी स्थिति में प्रेम-विवाह भी असफल हो जाते हैं।

काम अतृप्ती, दाम्पत्य संबंधो को तोड़ने में काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। शारीरिक, मानसिक अतृप्ति नारी-पुरुषों को घर से पटका रही है।

''एक इंच मुस्कान'' की अमला, रंजना तथा अमर, ''तीसरा आदमी'' का सतीश व शकुन, ''तीन निगाहों की एक तस्वीर'' की दर्शना, ''स्त्री-सुबोधिनी'' की मैं तथा शिन्दे, ''एक बार और'' की बिन्नी, ''स्वामी'' की मिनी, ''आपका बंटी'' की शकुन, ''दरार भरने की दरार'' की श्रृति, ''आते-जाते यायावर'' का नरेन ''कील और कसक'' की रानी आदि इस संदर्म में आते हैं। ''पति की अत्यधिक सहन शीलता और अन्तर्मुखता के कारण ''स्वामी'' की मिनी अपने पति घनश्याम को छोड़कर प्रेमी नरेश के साथ चली जाती है।''[१७]

आज के पुरुष का दृष्टिकोण भौतिक हो गया है। उसे पत्नी की आवश्यक्ता शारीरिक मानसिक तृष्ति के निर्मित कम परिवार के बोझ को हल्का करने के लिए है। पत्नी की तनरव्वाह पति की तनरव्वाह से ज्यादा है। उस पति की स्थिति और भी दयनीय है। यदि बेकार पति-पत्नी पर आश्रित भी रहता है तो वह मनस्तायी बन जाता है।

पारिवारिक विघटन का परिणाम प्राय: वैयक्तिक विधान के रूप में मूर्त होता है, इसका सशक्त उदाहरण- ''एक इंच मुस्कान'' के अन्तर्गत है, जिसका नायक अमर पत्नी द्वारा छोड़ के चले जाने पर पूर्णत: आत्म-केन्द्रित हो जाता है और परिवार से कटकर रहने लगता है। इसी प्रकार अजय और शकुन के तलाक हो जाने पर शकुन एक रास्ते से ऊब कर डॉ. जोशी से पुर्नविवाह करती है। शकुन डॉ. जोशी के साथ अपने नये परिवार के साथ एडजस्ट हो जाती है, बंटी एडजस्ट नही हो पाता। इस प्रकार शकुन को अपने दूसरे विवाह की कींमत अपने ही लड़के बंटी को लेकर ही चुकानी पड़ती है। इस प्रकार मंजरी पुर्नविवाह दिलीप के साथ करतो लेती है पर अन्त में महसूस करती है कि दिलीप उसके बच्चे असित को सहज रूप से स्वीकार नहीं कर पा रहा है। अत: वह अपने पहले

पति विपिन के विषय में नये सिरे से सोचना प्रारंभ कर देती है। मिनी, पति घनश्याम को छोड़कर प्रेमी नरेश के साथ भाग जाने पर सोचती है। जो परिवार विघटित हो रहे हैं, वह आस-पास के घरों के चर्चा के विषय बनते हैं, लोग बातें बढ़ाकर प्रस्तुत करते हैं।

५.३ प्रेम व यौन संबंधी समस्याएँ

मानव जीवन के सेक्स, प्रेम और विवाह महत्त्वपूर्ण अंग है। ''सेक्स और जीवन का जन्म एक साथ हुआ और वे एक-दूसरे से अभिन्न है। सेक्स ही सहज प्रवृत्ति जीवन के गति-चक्र में सदाही शक्तिशाली प्रेरक तथा आगे बढ़ने वाली शक्ति रही है।''[१८] भारत में भी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरुषार्थो में इसकी गणना की जाती है। सेक्स व्यापक अर्थो में हमारे जीवन का संचालक भी है। हेवर्लाक एलिस, फ्रायड जैसे प्रसिद्ध मनोविश्लेषकों ने सेक्स को व्यापक अर्थो में ग्रहण किया है। हेवर्लाक एलिस यह मानते है कि ''यौन जीवन सम्पूर्ण व्यक्ति में परिव्याप्त है, और मनुष्य की यौन बनावट उसकी आमान्य बनावट का एक अंग है... मनुष्य वही है जो उसका सेक्स है।''[१९] फ्रायड ने यौन शब्द के अर्थ की चर्चा करते हुए लिखा है कि इसका सबसे पहला अर्थ है ''अनुचित अर्थात जिसकी चर्चा करनी नहीं चाहिए।''[२०] वे यौन की परिभाषा करते हुए आगे लिखते हैं कि ''यौन वह चीज है जिसमें लिंगभेद, आनंददायक उत्तेजना और परितृष्टि, प्रजनन कार्य, अनुचित की धारणा और छिपाने की आवश्यकता संबंधी बातें सब इक्कठी आ जाती है।''[२१] इस संबंध में आर्नल्ड का मत है कि ''सेक्स अभिरुचि उत्तेजना, और कामना एक गहरा आधारभूत जैवकिय आवेग है, जो आदिकाल से ही मानवजाति में पाया जाता है। इसकी अभिव्यक्ति तथा तृष्टि के असंख्य रूप हुए हैं, परंतु इसका आधारभूत अस्तित्व सुख, आनंद, ईर्षा भाव, धृणा एवम् वंश-वृद्धि प्रदान के लिए निरंतर बना रहा है।''[२२]

इसके अतिरिक्त डेविस का मत है कि 'सेक्स मनुष्य के शारीरिक तथा भावनात्मक दोनों ही पक्षो का एक रहस्यमय जटिल अंग है, जो घनिष्ठ रूप से वैयक्तिक होने के साथ-साथ ही अन्य लोगों के साथ हमारे संबंधों का भी एक

महत्त्वपूर्ण तत्त्व होता है, ''यह आत्मिक विकास का एक कारण और पूरे चरित्र पर प्रभाव डालता है। यह जीवन की अखण्ड ज्योति को चलते रखने का साधन है।''[२३]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सेक्स के दो प्रमुख कार्य है। एक प्रजनन और दूसरा सुख। जैविकी आवश्यकता के रूप में सेक्स एक आवश्यकता रही है, जिसके लिये मानव ने विवाह को माध्यम बनाया है, परन्तु वासना की तृप्ति के लिये इसका उपयोग सामाजिक और नैतिक दृष्टि से विवादास्पद रहा है। सेक्स का उदात्तीकृत रूप भी प्रेम का रूप ग्रहण कर लेता है, जिसमें त्याग बलिदान, श्रद्धा, उत्सर्ग आदि गुणों का समावेश हो जाता है। प्रेम का यह रूप भी सेक्स के अन्तर्गत ही आता है।

प्रेम को सेक्स से भिन्न माना गया है। इस प्रेम का संबंध भी मानव से जुड़ा हुआ है। स्टीफेंस ने प्रेम को सेक्स से भिन्न मानते हुए लिखा है कि ''प्रेम की निष्पति सेक्स समागम के रूप में करना प्रेम को नष्ट कर देना है। स्थायी रहने के लिये प्रेम को विवाह और सेक्स से मुक्त रहना चाहिये।''[२४] सेक्स और प्रेम के भेद संबंध में राधाकृष्णन ने लिखा है जब प्रेम की स्वाभाविक मूल प्रवृत्ति का मार्गदर्शन मस्तिष्क और हृदय, बुद्धि और विवेक करते हैं, तो उसका परिणाम प्रेम होता है। ''प्रेम न तो रहस्यमयी आराधना है और न ही पाश्विक भोंग। वह सर्वोच्च भावों के मार्गदर्शन के अधीन एक मनुष्य के प्रति दूसरे मनुष्य का आकर्षण है।''[२५]

सेक्स और प्रेम की सीमाओं में विवाह ही बार्धता है। विवाह, सेक्स और प्रेम का समुच्चय है साथ ही दायित्व बोध का माध्यम भी क्योंकि इसी के परिणाम स्वरूप व्यक्ति यथार्थ और ठोस जीवन जीता है। विवाह, सेक्स और प्रेम

से इसलिये अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक धार्मिक, सांस्कृतिक सभी तत्त्व जुड़ जाते हैं, जिनका निर्वाह नर-नारी को करना पड़ता है। नारी को सेक्स, प्रेम और विवाह का निर्वाह विशेष रूप से करना पड़ता है।

मन्नू भण्डारी के साथ साहित्य में इस नवीन काम-चेतना को अपने कथानकों में निरूपण हुआ है। पहले जहाँ नारी इस चर्चा पर छुई-मुई बन जाती थी वहीं आज खुले हृदय से कामपूर्ति की महत्ता को स्वीकार रही है- ''आजकल अपने जीवन में पुरुष अभाव मैं महसूस करती हूँ... एक ऐसे पुरुष का जो वहशियों की तरह मुझे प्यार करे... सब चीजों से अलग करके मुझे प्यार करे... केवल मुझे, मेरे इस शरीर को, मन को, आत्मा को। किसी सोते पुरुष के होठों को इतना चूमूँ इतना चूमूँ कि चौंककर जाग जाए और मैं लाल से दुहरी होकर उसकी छाती में ही अपना सिर गाड दू।''[२६] ''विवाह से पूर्वही प्रेमी, प्रेमिका के समक्ष एक हो जाने के प्रस्ताव को रखने में तनिक संकोच नहीं करता।''[२७] तो पत्नी किसी अन्य से शारीरिक संबंध को अनुचित नहीं ठहराती, बल्कि यही कहती है कि शरीर देने के बाद औरत के लिए अस्वाभाविक हो जाना क्या अनिवार्य ही है ? और घिनौने के पीछे भी तुम्हें धोखा देने या छलने का उद्देश्य कतई नहीं था...। ''यदि हमारे संबंधों का आधार इतना छिछला है, इतना कमज़ोर है कि एक हलके से झटके को भी संभाल नहीं सकता, तो सचमुच उसे दूर ही जाना चाहिए।''[२८] ''आपका बंटी में शकुन का डॉ. जोशी से कहना 'सुनो तुम उठकर कपड़े पहन लो। पता नहीं, वह सवेरे जल्दी उठ जाए तो बड़ी अजीब स्थिति हो जाएगी।''[२९]

यह वार्ता बंटी में उत्सुकता जगाती है तथा उसे असहज व अस्वाभाविक भी बनाती है। ''तीसरा आदमी'' की शकुन का सतीश से ''तुम मुझसे चौगुना

काम करवा लो पर रात को तुम्हारी बाहें नहीं छोडती। वहाँ आते ही सारी थकान मिट जाती है, अगले दिन के लिए ताजगी आ जाती है।''[३०] आज के पति पहले की तरह यह नहीं चाहते कि उनकी पत्नी घरेलु ही बने। वह तो चाहता है कि ''उसकी पत्नी भी उसके साथ उसके दोस्तों की महफिल में हिस्सा ले और जब वह लड़कियों के अंगों को लेकर अश्लील मजाक करे तो वह भी ठहाका लगाये।''[३१] इतने तथ्य मात्र को मन्नू भण्डारी ने कथा-साहित्य के तथ्य के रूप में ग्रहित किया है।

यौन संबंध अब विवाहित जीवन पर ही आधारित नहीं है। आज की पीढ़ी विवाह पूर्व नि:संकोच भाव से इसे स्वीकार कर रही है। ''एक बार और'' की बिन्नी और कुंज यौन संबंध स्वच्छन्द है, पर कुंज में इतना साहस नहीं है कि वह इस संबंध को समाज के समक्ष स्वीकार कर सके। उसे अपने दाम्पत्य जीवन-सुख और असाजिक-प्रतिष्ठा के खण्ड़ित होने का भय है। कुंज कहता है, ''बिन्नी शादी मुझे इतना संकीर्ण नहीं बना सकेगी, कि मैं अपने सारे संबंधों को झुठला ही दूँ। शादी अपनी जगह रहेगी और मेरा-तुम्हारा संबंध अपनी जगह।''[३२] ''स्त्री-सुबोधिनी'' की मैं अपने प्रेमी को विवाहित जानते हुए भी उसे प्यार किये जाती है। बिना विवाह किये स्त्री-पुरुषों के साथ-साथ रहने की प्रवृत्ति भी आजकल दिखाई देने लगी है। जैसे अमर और रंजना[३३], कुंज और बिन्नी[३४], संजय और दीपा[३५], रंजना और दिलीप।''[३६] यही नहीं बिना पूर्व पत्नी से तलाक लिये स्त्री पुरुष के साथ-साथ रहने की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ने लगी है। ''स्त्री-सुबोधिनी'' की 'मैं' अपने जीवन के सत्ताईस वर्ष पूरे कर चुकी है, और एकाएक उसे ऐसा लगने लगा कि नहीं इस तरह अब और नहीं चलेगा हर रोज हजार-हजार इच्छायें मुँह में बाँधे खड़ी रहती है, और उनके सामने ढेर हो जाती। यही कारण

था कि ''वह विवाहीत शिन्दे की ओर आकर्षित होने लगती है और शिन्दे अपनी पत्नी को तलाक दिये बगैर ही मैं के साथ रहने लगता है। इसी प्रकार ''अभिनेता'' का दिलीप अपनी पत्नी को तलाक दिये बगैर ही ''अभिनेत्री'' रंजना के साथ रहकर दोनों हाथों से लड्डू समेटता रहता है।''[३७] ''बन्द दराजों का साथ'' का ''विपिन शुरु से ही एक औरत का पति व एक बच्चे का बाप होने पर भी मंजरी से विवाह रचता है।''[३८] ''वैसे ही अजय शकुन को तलाक दिये बगैर मीरा से शादी करता है, तथा एक स्वस्थ बच्चे का बाप भी बन जाता है।''[३९]

विवाह के संदर्भ में अनेक समस्याएँ सामने आती है, जिसे हलकर पाना नारी का सामर्थ्य नहीं है। इसी वजह से वह अपनी कामतृष्टि के लिए यह चिंता नहीं करती कि उसका काम्य-पुरुष पूर्व पत्नी से तलाक क्यों नहीं लेता अथवा उसे शादी की जल्दी क्यों नहीं है ? और पुरुष अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के भय से तथा पूर्व पत्नी को तलाक के रूप में एक लम्बी रकम हर्जाना के रूप में नहीं देनी पड़ती। आज के जीवन की स्थिति को मन्नू भण्डारी ने अपने कथा-साहित्य में कथानक के रूप में ग्रहण किया है।

''प्रेम स्त्री का जीवन भी होता है और जीविका भी, उसकी मूल प्रवृत्ति भी और वृत्ति भी, उसका उदेश्य भी और सुख भी, उसकी रुची भी और उसका अस्त्र भी। स्त्री के लिए अंततोगत्वा हर वस्तु का निर्धारण प्रेम के माध्यम से होता है, और उसका अर्थ यह है कि जीवन कि सभी अवस्थाओं तथा उसके सभी पक्षों का संबंध सेक्स के अव्यक्त अथवा तृष्ट स्वप्नों के साथ होता है। वे स्त्रियाँ भी जो नैतिक अथवा धार्मिक कारणों से कभी मैथुन नहीं करती, सेक्स को ही अपने जीवन का केन्द्र-बिन्दु मानती है, क्योंकि जहाँ दूसरी स्त्रियाँ तुष्टि की कामना करती है, ये उपरित अथवा विरक्ति को अपने जीवन का केन्द्र बनाती है।''[४०]

अतः यह स्पष्ट है कि सेक्स और प्रेम नारी के जीवन में केन्द्रिय भूमिका निभाते है, किन्तु उनमें स्थिरता विवाह के बाद आती है। चूँ कि विवाह, सेक्स और प्रेम का समुच्चय है और मनुष्य को केन्द्रित करता है।

''घूटन'' की नायिका मोना इसलिए काम-अतृप्त है, कि उसकी बीमार माँ व छोटे भाई-बहनों की वही कमाने वाली मशीन है, और उसके चले जाने पर उसके सामने गहरा अर्थ-संकट आ जायेगा। इसी कारण मोना की माँ मोना का विवाह नहीं करती है। दूसरी ओर प्रतिमा विवाहिता है, उसका पति कभी-कभार अपनी नौकरी से छुट्टी लेकर आता है, उसकी रतिक्रियायें पाशुविक हो जाती है- बुरी तरह व्यवहार करता है। प्रतिमा के साथ- वातावरण की घूटन अपने चरम को पहुँची हुई थी और उससे भी अधिक थी प्रतिमा के मन में, जो पति की जरुरत से ज्यादा मजबूत बाहों में जकड़ी हुई तडप रही थी मुक्ति के लिए और शायद उससे भी ज्यादा घूटन भी मोना के मन में, ''जो अपनी खाटपर पड़ी-पड़ी सिसक रही थी, और जिसके अलसायें अंग तड़प रहे थे, कसमसा रहे थे, किसी की बांहों में जकड़ जाने के लिए।''[४१] ''साथ ही मोना की अपने प्रेमी के साथ भाग जाने की योजना उसके असामान्य व्यवहार की ओर संकेत करती है।''[४२] ''बांहों का घेरा'' की नायिका कम्मो काम अतृप्ति को लेकर जीती है।

''अतृप्ति और उपेक्षा की शिकार कम्मो अन्ततः अपनी भतीजी के मंगेतर शम्मी के द्वारा रात में बुलाए जाने पर सोचती है कि क्यों न मैं ही इन्दु की जगह चली जाऊँ।''[४३] ''कील और कसक'' की रानी शुष्क व्यवहार तथा बदसूरत पति द्वारा अपने को अपेक्षित महसूस कर सुंदर स्वस्थ तथा रसिक प्रवृत्ति वाले शेखर की ओर आकर्षित हो जाती है। कैलाश के स्वभाव की सच्चाई वह शेखर की सरलता के सहारे बर्दाश्त करने लगी। धीरे-धीरे वह कमरे की अपेक्षा, रानी के

कमरे में रहने लगा। वह उसको अपनी कविताएँ सुनाता, कहानियाँ सुनाता। रानी चाहे कुछ समझती या नहीं, पर शेखर की हर वात में बडा रस लेती। परंतु शेखर की उपेक्षा के प्रति रानी द्वारा काम प्रकट होता है।

''तीन निगाहों की एक तस्वीर'' की दर्शना अपने पति के अतिरिक्त अपने किरायेदार हरीश से शारीरिक संबंध स्थापित कर लेती है, इस परिस्थिति का उत्तरदायित्व स्वयं उसके पति की बीमारी हालत, बीमार शरीर जिससे वह संतुष्ट नहीं हो पाती है।... पिचके हुए गाल, निस्तेज आँखे कुम्हलाया पीला चेहरा और घंसा सीना देखती है, तो लगता है, खूब रोऊँ। इन्हें कैसे अच्छा करु कि ये हुस्ट-पुष्ट और स्वस्थ हो जाय।''[४४]

इस प्रकार शारीरिक हीनता कामेच्छा दमन दर्शन के व्यवहार को असामान्य बना देता है। इसी प्रकार ''एक कमज़ोर लड़की की कहानी'' की रूप सभी को संतुष्ट करने के फेर में अपनी निजी पहचान (व्यक्तित्त्व) समाप्त कर देती है, और द्वन्द्व में दबी किसी निर्णय पर साहसपूर्वक नहीं पहुँच पाती। यही कारण है कि उसकी इच्छा के खिलाफ पिता द्वारा वकील से शादी का विरोध वह नहीं कर पाती और प्रेमी ललित के विदेश से लौटने पर भागने के प्रस्ताव पर सहमति तो दे देती है लेकिन पति द्वारा ''अरे पढ़ी-लिखी तो तुम भी हो, भागने की बात तो दूर रही दो साल हो गए, मुझे कभी याद नहीं पड़ता कि तुमने आँख उठाकर भी किसी पुरुष से बात की हो।''[४५] अविचल विश्वास के शब्दों को सुनकर भागने का विचार छोड़ देती है और प्रेमी को प्रतिक्षारन ही रहने देती है। ''एक बार और'' की बिन्नी प्रेमी कुंज का विवाह हो जाने पर भी उसके प्रति अपने आकर्षण को बनाये रखती है और वर्तमान अवस्था में कम जीती है, अतीत में कुंज के पास बार-बार पहुँच जाती है। उसके लगातार सोचते रहने की प्रक्रिया उसे असामान्य

व्यवहार की ही संज्ञा देता है । ''युवावस्था में लड़कियाँ काम की अतृप्ति से मानसिक क्षय का शिकार बनती है तो नौकरी पेशा युवती भी काम अतृप्ति से घबराकर अपने ही विवाहित अधिकारी (बॉस) के हाथ सर्वस्व सौंपकर भी अन्त तक अतृप्त रह जाती है ।''[४६] ''अनिच्छित दाम्पत्य संबंध विचारों और प्रकृति की अत्यधिक असमानता पति और प्रेमी का द्वन्द्व भी वैवाहिक असफलता का कारण बनता है ।''[४७] पति के विवाह पूर्व प्रेम संबंध भी विवाहित जीवन को कटु बनाने में सहयोगी सिद्ध होते हैं ।

आज तक यह मान्यता रही है कि भारतीयों की प्रवृत्ति राग नहीं विराग की ओर है । पाश्चात्य जीवन में ठीक इसके प्रतिकुल रागात्मक प्रवृत्ति हावी है । नि:संदेह भारतीय नारी पर हमें इस दृष्टि से गर्व रहा है । वह तब भी तपोपूत विरागमयी रही है, आज भी गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए रागात्मकता दूर है ।

सेक्स, प्रेम और विवाह का अपना अलग से कोई महत्त्व नहीं है । उसकी महत्ता के दो प्रमुख आधार है, जिसके परिणाम स्वरूप तीनों अपना अलग-अलग स्वरूप धारण करते हैं । पहला आधार स्वयं व्यक्ति के शरीर की बनावट तथा हार्मोन की मात्रा है । दूसरा आधार वंश, जाती, परिवार एवम् समाज का स्वरूप है । हम सेक्स, प्रेम और विवाह तीनों को इन आधारों से अलग करके नहीं देख सकते । चूँ कि विश्व में प्रत्येक समाज परिवार, जाती, वंश एवम् व्यक्ति का अपना अलग-अलग ढांचा होता है जिसमें व्यक्ति जीवन जीता है । उसी के मध्य एवम् अनुरूप वह अपने व्यक्तित्त्व को विकसित करता है । इस विकास में अर्थ और धर्म का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है । धर्म व्यक्ति के जीवन की आन्तरिक व्यवस्था जिसका संबंध हमारी मानसिकता एवम् व्यक्तित्त्व से है, यह भावना मूलत:

व्यापकता का बोध करवाती है। यह मनुष्य के व्यक्तित्त्व के विकास और विघटन को प्रकट करता है। धर्म ईश्वरीय के बोध कराने का माध्यम है। यह व्यक्ति और ईश्वर के बीच के पारिस्परिक संबंधों को भी प्रकट करता है। जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है, धर्म व्यक्ति को नैतिक बनाने का प्रयास करता है और सेक्स संबंधी पक्ष को संयमित करता है तथा प्रेम-भावना को विकसित करता है। अर्थ बाह्य व्यवस्था को स्थिर रखता है जिसमें व्यक्ति भौतिक जीवन के निमित्त उत्पादन करता है जिसके लिये श्रम-विभाजन आवश्यक होता है। अर्थ व्यवस्था का सेक्स प्रेम और विवाह से संबंध परिवार के माध्यम से जुड़ता है। परिवार की जैसी आर्थिक स्थिति है, उसी के अनुरुप सेक्स, प्रेम और विवाह की स्थिति भी। आर्थिक स्थिति के आधार पर ही परिवार के वर्ग बनते हैं। उच्चवर्ग मध्यवर्ग और निम्नवर्ग। इन तीनों वर्गो में ही सेक्स, प्रेम और विवाह की स्थिति भिन्न-भिन्न होती है, किन्तु धर्म-व्यवस्था का संबंध तीनों वर्गो में एक जैसा होता है चूँ कि धार्मिक-व्यवस्था हमारी संस्कृति और सभ्यता की देन होती हैं, जिसका संबंध हमारे संस्कारों से गहरे स्तर तक जुड़ा है। अर्थ व्यक्ति के जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, इसलिए धर्म द्वारा निरुपित व्यवस्था में बदलाव आया है।

नारी को धर्म और पुरुष को अर्थ के क्षेत्र का विकास करना चाहिए- यह लगभग प्रत्येक समाज में स्त्री-पुरुष के मध्य प्रारंभिक श्रम-विभाजन रहा है। सेक्स और प्रेम की स्वतंत्र रुप से कोई असहमति नहीं है, चूँ कि दोनों की पूर्ति के लिए किसी दूसरे आश्रय की आवश्यकता रहती है। नारी की दृष्टि से समाज की जो परिकल्पना बनती है, उसमें मुख्य रुप से सेक्स, प्रेम, विवाह की समस्याएँ आती है साथ ही समस्या आती है धर्म की। नारी को आर्थिक दृष्टि से पराधीन

रहना पड़ता है। अर्थ के लिए वह पुरुष पर आश्रित रही है। इसलिए सेक्स, प्रेम और विवाह उसे जहाँ अस्तित्व प्रदान करते हैं, अर्थ वहाँ उसके अस्तित्त्व का लोप भी करता है। सेक्स की दृष्टि से नारी और अर्थ की दृष्टि से पुरुष अपना-अपना अस्तित्त्व और महत्त्व प्राप्त करते हैं। इसलिए नारी मुख्यत: अर्थ के और पुरुष सेक्स के पक्ष लेकर परस्पर पराधीन हो जाते हैं। पुरुष-सत्तात्मक समाज व्यवस्था के होने के कारण नारी को संपूर्ण स्वतंत्रता नहीं मिल पाती फिर भी सेक्स संबंधी पक्ष को लेकर महत्त्व अवश्य पा जाती है। भारतीय समाज की प्रारंभिक अवस्था को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि नारी की समाज-संबंधी भिन्न अवधारणा है, जिसमें सेक्स, प्रेम और विवाह आते हैं और पुरुष की समाज संबंधी भिन्न अवधारणा जिसमें समाज की आर्थिक बुनियाद निर्भर करती है।

५.४ कामकाजी महिला की समस्याएँ

देश की राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों में जितनी तेजी से परिवर्तन आया है, उससे नारी को घर से बाहर निकलने, शिक्षा प्राप्त करने तथा स्वयं को अभिव्यक्त करने के विपुल अवसर मिले हैं। बढ़ती महंगाई के कारण परिवार की आवश्यकताएँ प्राय: एक व्यक्ति की आय से पूरी नहीं हो पाती। तब आवश्यकता पड़ती है, एक अन्य अर्जक सदस्य की। वह सदस्य पुरुष हो ऐसा अनिवार्य नहीं, हालांकि स्वतंत्रता से पूर्व प्राय: यही समझा जाता था। राजनीतिक एवम् सांस्कृतिक चेतना तथा बढ़ते हुए आर्थिक दबाव ने नारी तथा समूचे समाज के चिंतन को परिवर्तित किया है। यही कारण है कि युवा पीढ़ी के साथ-साथ पुरानी पीढ़ी भी नारी के कामकाजी होने की पक्षधर है। कामकाज को लेकर किसी पीढ़ी की अपनी प्राथमिकताएँ या शर्ते नहीं है। 'जो भी नौकरी मिले, उसे सहज भाव से स्वीकार करलो'-यह सिद्धान्त उन पर प्राय: हावी रहता है। इसलिए विवाहित-अविवाहित महिलाएँ तथा नवजात शिशुओं की माताएँ भी कमर कस कर पुरुषों की अर्जन दुनिया में आ खड़ी हुई है। स्पष्ट है कि महिलाओं के अर्थोपार्जन के मूल में उनकी व परिवार की सहमती न्यूनाधिक मात्रा में अवश्य रहती है।

भारतीय समाज में महिला का स्वतंत्र अस्तित्त्व नहीं माना गया है, अत: उसके सामाजिक संबंधों का आधार पुरुष अर्थात् पति को माना जाता रहा है। शिक्षा ग्रहण करके महिला ने अपना पृथक् अस्तित्त्व बनाया है। अर्थोपार्जन करके स्वयं को पुरुष की कृपा से मुक्त किया है। कामकाज के कारण अपने परिचय-जगत को व्यापक किया है। अत: आज उसके बहिरंग जीवन को किसी भी अर्थ में पति के परिचितों तक सीमित नहीं किया जा सकता। बल्कि यह

कहना अधिक सही होगा कि उसका बहिरंग जीवन उसी बिंदु से शरु होता है जिस बिंदु पर अपनी अलग शख्सियत लेकर वह संबंधों के केन्द्र में जा खड़ी होती है। इस प्रकार कामकाजी महिला के बहिरंग जीवन की व्यापक परिधि में उसके आधिकारी, सहकर्मी, अधीनस्थ कर्मचारी, परिचित स्त्री-पुरुष, ग्राहक छात्र, सहयात्री आदि सभी आते हैं।

जीवन की कोई एक धटना या परिस्थिति किसी दूसरी घटना या परिस्थिति से नितांत अछूती नही होती, बल्कि कार्य-कारण श्रृंखला में जुड़कर वे एक अविच्छिन्य रुप धारण कर लेती है। कई बार एक परिस्थिति दूसरी परिस्थिति की जननी अथवा निर्धारक तत्त्व भी बन जाती है। कहने का अभिप्राय है कि जीवन के विविध संदर्भ एक-दूसरे से अनिवार्य रुप में जुड़े है।

कामकाजी महिला को आवास व परिवहन जैसी आधारभूत समस्याओं के बीच भी देखा गया है। इस प्रक्रिया में कामकाजी महिला की बेचारगी, आवास एवम् परिवहन की समुचित सुविद्याओं का अभाव, पुरुषों की भाँति महिलाओं को कामकाज के सिल सिले में घर-परिवार छोड़कर अन्य स्थान पर जाना और कभी-कभी रहना भी पड़ता है। घर से बाहर रहने की विवशता प्रायः एक साथ दो समस्याओं को जन्म देती है। परिवार से दूरी के रुप में मानसिक समस्या, तथा आवास के समुचित प्रबंध न होने रुप में भौतिक समस्या है।

आर्थिक स्वावलम्बन की दृष्टि से नारी के रुपों के आयामों को दो तरह से देखा जा सकता है। एक पति-पत्नी एवम् पारिवारिक संबंधों में आये तनाव एवं द्वन्द्व के माध्यम से और दूसरे नारी के व्यक्तित्त्व पर पड़े प्रभाव के माध्यम से। भारत में नारी आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने के बावजूद भी परिवार से जुड़ी हुई है। आर्थिक स्वावलम्बन से उसे पारिवारिक परंपराओं, रुढियों, प्रथाओं, मान्यताओं

एवम् मर्यादाओं से पूर्णतया मुक्ति नहीं मिली है। नारी की आर्थिक विडम्बना को उजागर करनेवाली मन्नूजी की ''क्षय'', ''नई नौकरी'', ''रानी माँ का चबुतरा'' कहानियाँ हैं।

''यही सच है की नायिका दीपा का नौकरी में चुनाव निशीथ की सिफारिश से होता है।''[४८] इस प्रकार बिना भ्रष्टाचार और सिफारिश के कहीं कुछ होता नहीं। ''इस बेकारी के कारण एक जगह खाली होती है तो पचासों टूट पडते हैं। हमारे देश में इन्सान की जान बड़ी सस्ती है। आदमी साठ रुपये की खातिर अपनी जान जोखिम में डाल देता है।''[४९] यही मुख्य वजह है कि पढ़े लिखे डॉकटर, वैज्ञानिक तथा इन्जीनियर्स विदेश जाने को लालयित है। यहाँ कोई भविष्य नहीं है इन लोगों का-आजकल मैरिट को कोई नहीं पुछता आज डिग्री की किंमत दो कौड़ी की ही है। यह कथन बेकारी की स्थिति और कारण को स्पष्ट करता है।

इस अर्थ प्रधान युग में आर्थिक-मूल्य, पारिवारिक सामाजिक, राजनैतिक सभी संदर्भो में अतिविकसित होते दिखाई दे रहे हैं। अर्थ के अभाव में व्यक्ति शारीरिक तथा मानसिक कष्ट को ही तो भोगता है। ''क्षय'' की नायिका कुंती का कथन कितना मार्मिक है ''पापा का ठेका मैनें अकेले तो नहीं लिया। क्यों जाने-अनजाने मनाने लगी थी कि यातो पापा अच्छे हो जाए या फिर...।''[५०] अर्थाभाव ''में ही ''तीन निगाहों की एक तस्वीर'' की दर्शना अपने नाचने-गाने के शौख को अपनी रोजीरोटी का साधन बनाती है।''[५१] अर्थाभाव अनेक मानसिक विकृतियों को भी जन्म देता है। ''बांहों का घेरा का मित्तल जो मशीन की तरह काम करता है और अपनी पत्नी कम्मो को वक्त नहीं दे पाता। और वह इसके कारण काम-कुंठा का शिकार बनती है।''[५२] शिक्षण संस्थानों में भी अर्थ के महत्त्व को

स्वीकार कर लिया है। ''क्षय'' की पात्रा सावित्री के अनुतीर्ण हो जाने पर उसकी माँ कुंती से कहती है ''दो दिन बाद तो रिजल्ट ही निकल जाएगा फिर कितनी मुश्किल होगी कुछ करवाने में। और हो न हो तो कुछ रुपये लेकर जाइये। सब कुछ हो जाता इस स्कूल में... आप अब चढावा दीजिए...।''[५३] इस तरह सामाजिक और राजनैतिक के मूल में आर्थिक मूल्यों की अतिक्रान्ति है।

हिन्दी कथा-साहित्य में नारी की आर्थिक दृष्टि से निर्दिष्ट सभी स्थितियों एवम् मन: स्थितियों को अभिव्यक्ति मिली है, जिस में एक ओर नौकरी, पेशा पति-पत्नी एवम् पारिवारिक संबंधों पर पड़े प्रभाव को देखा जा सकता है और दूसरी और नारी के व्यक्तित्त्व में आये बदलाव को भी। इसके साथ ही आर्थिक पराधीनता के परिणाम स्वरुप नारी के शोषित रुप एवम् उससे उत्पन्न तनाव एवम् द्वन्द्व के साथ-साथ स्वाधीन रुप का चित्रण भी मन्नूजी के कथा-साहित्य में मिलता है।

५.५ विधवा नारी की समस्याएँ

''प्राचीनकाल में प्रायः सभी उच्च कुलीन साध्वियाँ वैधव्य की अनुकरण पसंद करती थी। ब्राह्मणी के अनुमरण का उदाहरण है।''[५४] उस समय एक पुरुष की अनेक पत्नियाँ होती थी। ''पति की मृत्यु के बाद वे सभी विधवा हो जाया करती थी। किन्तु अनुमरण का अधिकार केवल जयेष्ठ को होता था। विधवा माता का परिपालन न करने वाला पुत्र निंदनीय माना जाता था।''[५५] उस समय की मान्यता थी- ''वैधव्य पूर्व जन्म के पाप का फल है।''[५६] ''यह नारियों की वैधव्य संबंधी धारणा थी। विधवायें सर्व कल्पाण वर्जिता मानी जाती थी।''[५७] विधवा से लेनदेन का व्यवहार अनुचित माना जाता था। ''किन्तु कुटुंब में जैसा विधवा का आदर होता था। वैसा ही समाज में भी होता था। वह पर्दा नहीं करती थी। विवाहोत्त्सव में उसका सत्कार होता था।''[५८] सारे समारोह तथा उत्त्सवो में वह उपस्थिति रहती थी। ''विधवा कष्टमय जीवन बिताती थी।''[५९] किन्तु समाज में अनादर नहीं था। विधवा भगिनी का पालन पोषण का भार भाई पर रहता था। युद्ध में मृत सैंनिकों की विधवाओं के प्रति सभी के मन में सहानुभूति पायी जाती थी।

भारतीय समाज में विधवा नारी का मान सम्मान है। लेखकों एवम् लेखिकाओं और कवियों ने विधवाओं को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा है। किसी ने उसकी पवित्रता एवम् पुनीतता की सराहना की है, तो किसी ने उसके भरे यौवन पर अनेक प्रश्न चिह्न लगाये हैं ? सच तो यह है कि विधवा नारी की भी अपनी कामनायें होती है और यदि वे स्वयं सीमा रेखाओं में बाँधना चाहे तो भी समाज होता है, जो उन्हें ऐसा नहीं करने देता। असामाजिक तत्त्वों से कटती बचती विधवा नारी कहीं-कहीं ऐसे जालो में फँस जाती है, जिससे निकल पाना उसके

लिए असंभव होता है ।

वैदिक ग्रंथो के अध्ययन से पता चलता है कि वैदिककाल में विधवा विवाह का प्रचलन था । विधवाएँ अपने देवर या अन्य व्यक्ति से विवाह कर सकती थी। स्मृतिकाल की श्रृतियों से विदित होता है कि विधवाएँ दो परिस्थितियों में पुर्नविवाह कर सकती थी, एक तो तब जब युवती को बिना विवाह संस्कार के कोई बलपूर्वक उठा ले गया हो या विवाह के बाद यौन संबंध होने के पूर्व ही पति की मृत्यु हो गई हों । इसके अतिरिक्त उस काल में बाल-विवाह को पुर्नविवाह की आज्ञा थी । धीरे-धीरे वह प्रथा समाप्त हो गई ।

यह सोचकर कि विधाता ने जब उसका सुहाग छीन लिया है और उसे दैहिक सुख नहीं देना चाहता, विधवा अपने को सीमा रेखाओं के अर्न्तगत ही बाँधने का प्रयत्न करती है किन्तु कभी-कभी स्थितियाँ उसे प्रेम का एक नया सिरा पकड़ा देती है। जिसे लेकर वह आगे बढ़ जाती है। विवाहित पुरुष के साथ किसी विधवा ही क्या किसी कुमारी का प्यार भी अनेक उलझने लिए होता है । विधवा प्रेम की रीतियों, नीतियों को समझे होती है । वह नये प्रेमी के साथ प्रेम का तुलनात्मक विश्लेषण भी करने लगती है । वह चाहती है कि उसका प्रेमी अपने प्रेम की सीमायें उसमे भी देखे, किन्तु प्रेमी के सामने उसका घर होता है । उसकी पत्नी व बच्चे होते हैं। उसकी पत्नी को किसी बात का सन्देह हो जाये तो उसके सामने और भी अनेक प्रश्न चिह्न खड़े हो जाते हैं ।

''भारतीय सामाजिक जीवन सहस्त्रों वर्षो से एक ही ढंग पर चलता रहा है । पाश्चात्य सभ्यता के संपर्क के फल स्वरूप उसमें बहुत उथल-पुथल मची । सामाजिक क्षेत्र में सतीदाह, कन्यावध, बालविवाह, हरिजनोद्धार एवम् स्त्री शिक्षा आदि उपयोगी सुधारों के प्रचार से समाज की काया पलट हो रही थी ।''[६०] इन

कुप्रथाओं को रोकने में सामाजिक मनोविज्ञान से काम लिया गया। ''कुप्रथाओं को धर्म के प्रतिकूल बतलाकर इनके उन्मूलन के द्वारा सुधारकार्य का शिलान्यास किया।''[६१] सती दाह के साथ विधवाओं की समस्या पर ध्यान दिया गया बालविवाह और वृद्धविवाह के कारण समाज में विधवाओं की संख्या अधिक होती जा रही थी। एक ओर तो बाल विवाह रोकने की आवश्यकता थी। दूसरी ओर विधवाओं का पूर्नविवाह आवश्यक था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने भी विधवा पुर्नविवाह को समय की माँग कहा था और सरकार से कानून बनाने के लिए अनुरोध किया था। सामाजिक क्षेत्र में इसका समाधान ढूँढा जा रहा था। ''शारदा सदन'' हिन्दु विधवा आश्रम, विधवा-विवाह- सहायक-सभा आदि की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई थी। इन सारे प्रयासो के होते हुए भी विधवा समस्या का समाधान अंशत: ही हुआ। मूल प्रश्न आज तक बना हुआ है। विधवा विवाह के लिए युवकों के पास शक्ति और साहस का अभाव है। अत: व्यहारिक क्षेत्र में इस समस्या की गंभीरता आज भी जटिल है। फिर भी स्थिति में नयापन है और यंत्र-तंत्र विधवा के स्वर सुनाई पड़ते है।

''रानी माँ का चबुतरा'' कहानी नारी जीवन की पीड़ाओं तथा उसकी दयनीय स्थिति पर प्रकाश डालती है। समाज कैसा है ? कि जो दयनीय है, निरीह है उन्हें निंदा का पात्र बनाता है। ''रानी माँ का चबुतरा'' में पास पड़ौस के सभी लोग गुलाबी को चुडैल कहते है, वह तो बेचारी व्यथाग्रस्त है। लोग ऐसे व्यक्तियों की सहायता भी नहीं करते। ''जब वह अपने बच्चों को घर छोड़कर मजदूरी पर जाती है तो उसका बच्चा नाली में गिर जाता है फिर भी मुहल्ले के लोग उठाते तक नहीं।''[६२] 'अहा बड़े आये बस्ती वाले पहले कोठारी खोलकर जाती थी तो मेरा छोरा सरकते-सरकते मोरी में आकर गिर गया, किसी ने उठाया तो

नहीं, बड़े अपने बनते है। ''छोरा भी तो जाने किस माटी का बना हुआ है सारे दिन मोरी के सड़े पानी में सड़ता रहा पर मरा नहीं मर जाता तो पाप कटता।''[६३] ''परिस्थिति से पीड़ित नारी के लिए इससे अतिरिक्त कहने को और क्या रह जाता है, आज हर नारी इसी तरह जूझ और टूट रही है।''[६४] आज का जीवन ही कुछ ऐसा विरोधाभासपूर्ण हो गया है कि व्यक्ति स्वयं यातनाओं और पीड़ा के लिए उत्तरदायी है। वह किन्हीं भावनाओं को झेलने और स्वीकार करने के लिए मजबूर है। ''दर्द से छटपटाते हुए आज के ऐसे व्यक्ति और समाज की दुखती रग पर हाथ रखने की कोशिश की है, जिसे यह भी पता नहीं हैं कि दर्द कहां है और क्या है।''[६५] ''रानी माँ का चबुतरा की गुलाबी को भले ही पड़ौसी, चुडैल, कर्कशा और बुरी आदत वाली कहे, भले ही वह बच्चों को पीटे लेकिन उसके भाग्य में तो बच्चों के लिए शिशुरक्षा केन्द्र से पाँच रूपये की रसीद एकत्र करने में बेहोश हो जाना लिखा है।''[६६]

इस कहानी के अन्तर्गत जीवन मूल्यों में तीव्र परिवर्तन और अंत में टूटना आदि के दर्शन होते हैं। ''रानी माँ का चबुतरा'' शहरी जीवन से संबंधित होती हुई भी आंचलिकता का तत्त्व रखनेवाली कहानी है।

५.६ समस्या का समाधान

नारी का स्वतंत्र व्यक्तित्त्व और अधिकार उसे हीन भाव से किस सीमा तक उबार सकते हैं–यह एक अहम् प्रश्न है । क्योंकि जो गरिमामय है, वह करुण नहीं, वह दयनीय भी नहीं है । व्यक्तित्त्व सम्पन्न व्यक्ति अपनी स्वायत्तता समाज और देश के प्रति अपनी भूमिका और अपनी क्षमता के प्रति सजग होता है । यह क्षमता स्वयं अर्जित करने की वस्तु है । परिवेश और चिंतन यदि सुदृढ़ हो तो व्यक्तित्त्व को महनीय बनाया जा सकता है, आवश्यकता है सीमित क्षेत्र से व्यापक क्षितिज के स्पर्श की । जब यह चेतना समुहगत या जातिगत बन जाती है तभी उसका परिणाम और प्रतिशत विशिष्ट हो पाता है । इतिहास के अनेक कालखंडों से गुजरकर आज नारी ने अपेक्षाकृत अधिक सुविधाए प्राप्त की हैं– शिक्षा और अधिकारों के क्षेत्र में, अपनी प्रतिभा की पहचान के अवसर के रूप में स्वावलम्बन और स्वतंत्र निर्णयों के क्षेत्र में भी उसने अपने गुणो और व्यक्तित्त्व को संपन्न बनाया है, किन्तु क्या ये उपलब्धियाँ वास्तविक उपलब्धियाँ है अथवा ये अधिकार क्या एक नया इतिहास गढ़ सकते हैं– यह एक गंभीर चिंतन का विषय है । समाज अनेक जटिल और संश्लिष्ट स्तरों और देशों से बना होता है । उनमें न मिथ्या दम्भ की आवश्यकता होती है न ही किसी प्रतिद्वन्द्विता की । सदियों से चले आते संस्कारों का संशोधन और सब की समान भुमिकाओं का सम्मान भी आवश्यक होता है, व्याहारिक रूप से नारी का जो वर्तमान रूप दिखाई देता है, व स्वस्थ विकास से हटता हुआ है । भारतीय समाज के वर्तमान पतन का यही कारण है कि पहले स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा गया और फिर उन्हें शिक्षा दी जाने लगी तो उस शिक्षा संस्कारिता का अपने अस्तित्व के साथ जड़ी अपनी अस्मिता की पहचान का समावेश न था । इस शिक्षा को या, स्त्री–पुरुष की

निर्देशक, प्रेरणा व सहयोगिनी के रूप में नहीं उसकी प्रतियोगी के रूप में सामने आ गई ।

मन्नू भण्डारी के कथा–साहित्य में नारी जीवन की समस्या एवम् समाधान दिए गये हैं । मन्नूजी के कथा–साहित्य में स्थापित और आरोपित जीवन दर्शन के स्थान पर प्रामाणिक परिवेश और यथार्थ जीवनानुभवों ने अपनी 'जीवन दृष्टि' को विकसित कर कथा में व्यंजयस्त किया है । उनके कथा चरित्र वैयक्तिक और सामाजिक परिवेश की सीमा में आबद्ध यथार्थ के भोक्ता है, और इसी यथार्थ भोगी चरित्र को इमानदारी के साथ प्रस्तुत करना ही मन्नूजी का अभिष्ट रहा है । काम, प्रेम, वात्सल्य, स्वातंत्रय, स्वाभिमान, साहचर्य, अर्थ, दायित्य तथा समायोग्य आदि के मूल्यों के विकास में भी मन्नू भण्डारी ने सामान्य और असामान्य मनोविज्ञान का आधार फलक ग्रहण किया है । सामाजिक स्वास्थ्य को विकृति करने वाली जीवन दृष्टि को मनोविकुतियों– मनस्ताप, मनोविक्षिप्तना तथा मनोविकृतियाँ को यथाअवसर निराग्रह और निरावृत कर अकुंठ मानव व्यक्तित्त्व की प्रतिस्थापना ही कुंठाओं काम–विकृतियों, आर्थक विडम्बनाओं और पारिवारिक विषमायोजन के कारणों और परिणामों का प्रभावित चित्रण किया है । यही नहीं यथा अवसर परिवंशगत विकृतियों और जीवन के अस्वस्थ पक्ष के अमांगलिक परिणामो के संकेत भी मनोविशेषण के सिद्धांतों की परिसीमा में सहजता के साथ किया गया है– अचेतन, अवचेतन, अतिचेतन, अहम् सुपराहम् लिबिडों जैसे शुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रत्ययों को तो जीवन दृष्टि के शुद्ध रूप में स्वीकार किया गया है साथ ही आधुनिकता बोध, भय, संत्रास, पीड़ा, मृत्युबोध की साहित्य संकल्पना को भी मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य के अपने चरित्रों के माध्यम से कथानैत्री ने साहस के साथ उकेरा है ।

नारी के द्वारा सामाजिक चुनौतियों को स्वीकार करने का लक्ष्य अनेक आयामी है। उसने यदी नैतिकता और विवाह के प्रचलित मानदण्डों और रुढ़ियों को तोड़ने का प्रयत्न किया है तो दूसरी और जीवन की अनिवार्य स्थितियों को स्वीकार करते हुए भी अपने बौद्धिक विकास को महत्त्वपूर्ण माना है। अर्थोपार्जन एक आवश्यकता हो सकती है, किन्तु आत्माभिव्यक्ति उसे अपने दायित्वो के प्रति अधिक गंभीर बनाती है। नारी के प्रति कही गई पूरानी युक्तियों को उसने अर्थ दिये हैं। नई जीवन बोध की प्रक्रिया में पूराने महनीय और गुणात्मक उपमानों की आदर्शवादी व्याख्याएँ अधिक व्यवहारिक धरातल पर ग्रहण की जाने लगी है। पाप-पुण्य, पवित्र-अपवित्र, नैतिक-अनैतिक शब्द अब धर्म के आधार पर नहीं सामाजिक और व्यवहारिक आधार पर समझे जाने लगे हैं। सीमाओं का अतिक्रमण भी हुआ है। नारी को देह मात्र समझने वाले व्यापारियों ने उसके शारीरिक-सौष्ठव को विज्ञापन की वस्तु बनाया है।

आजादी से पहले संयुक्त परिवार प्रथा में 'विवाह' के निर्धारण, पारस्परिक संबंधों से उपेक्षाएँ और उनसे संबंध सामाजिक रीति-रिवाज एक अलग रूप में अलग मान-मूल्यों के साथ स्थापित थे। औरत की स्थिति ऐसे परिवारों में घर की चार दिवारी तक कैद थी। घर में निर्णय लेने का अधिकार केवल घर के मुखिया पुरुष का था, सत्ता का अधिकार जिन स्त्रियों के पास था, वह भी अशिक्षा, कुसंस्कार और विरासत से प्राप्त था, अतः सास और माता की अधिकार सत्ता भी घर की बहूओं और बेटियों पर थी, इन्हीं संस्कारों और कुरीतियों से जुड़ी थी अनेक समस्याएँ- बालविवाह, पर्दा प्रथा, दहेज समस्या, अनमेल विवाह विधवा समस्या और ढेर सारे अंधविश्वास, छूत-अछूत, अपवित्रता आडम्बर आदि। इन सारी स्थितियों को देखकर यह महसूस होता है कि समाज के एक

बहुत बड़े वर्ग की समस्त रचनात्मक, बौद्धिक ऊर्जा का जैसे निष्क्रिय क्षय होता रहा है। अभिजात और सुविधा सम्पन्न वर्ग की स्त्रियाँ जहाँ घर की शोभा मात्र थी मध्यवर्ग की स्त्रियाँ इन कुरीतियों की सबसे ज्यादा शिकार थी, निम्नवर्गीय स्त्रियों का शोषण दोहरा था- श्रमिक के रूप में भी उन्हें पुरुषों से कम वेतन मिलता था और घर पर भी शारीरिक श्रम अधिक होने बावजूद वे पुरुष सत्तात्मक समाज के आधिन थी। बदलती स्थितियों में नारी शिक्षा और विज्ञान की प्रगती तथा रोजगार के बदलते संदर्भो में परिवार, विवाह, स्त्री-पुरुष संबंध से संबद्ध अन्य स्थितियों में भी बदलाव आया है।

मन्नूजी का कथा-साहित्य नारी जीवन की समस्याओं से प्रभावित रहा है। उनके कथा-पात्र संबंधो को महत्त्व कम देते है। वे शोषण के खिलाफ खुलकर जुबान भी खोलते है और अपने तर्क विवेक के आधार पर संबंधों की नवीन व्याख्या भी करते हैं, तभी तो शिवानी कहती है- ''यदि हमारे संबंधो का आधार इतना छिछला, इतना कमज़ोर है कि एक हलके से झटके को भी संभाल नहीं सकता, तो सचमुच उसे टूट ही जाना चाहिए।''[६७] यहीं नहीं वह अब पुरुष पर निर्भर, नहीं वह पुरुष रूपी समुद्र में अपने-अपने व्यक्तित्त्व रूपी बूंद को विलीन नहीं करना चाहती, क्योंकि ऐसा करने से उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। इसलिए वह स्पष्ट घोषणा करती है- ''कोई भी पुरुष मेरे जीवन का पूरक हो, यह मेरे अहम् को सह्य नहीं, और समज लो यह अहम् अमला का पर्याय है। वह ऊँचाई को पाना चाहती है। अब कुछ निरर्थक सा है।''[६८] पत्नी पारस्परिक रूप से पति पर निर्भर रही है और उसकी इस निर्भरता का पति ने जी भरकर शोषण किया है। पति पुरुष है वह यह समझता है कि पत्नी उस पर 'डिपेंड करती है' उस पर आश्रित है, उसकी पालिता है, इसलिए उसे घर की चार दीवारी में बन्द रखना ही

ठीक है और स्वयं कमाऊ है, कर्ता है, इसलिए सो दोष क्षमा है, स्वामी है वह घर का। मन्नूजी की नारियाँ ऐसी रुढिवादी, अन्धविश्वासी, परंपरावादी नहीं हैं। श्रृती अपनी सखी कुन्ती से अपने पति के इस पारस्परिक मोह के संबंध में कहती है- ''विभु सोचते है कि मैं अलग नहीं रह सकती। स्वभाव से मैं बहुत डिपेंडेड हूँ, ठीक है, हर आदमी किसी न किसी पर डिपेंड करता है, मैं भी करती हूँ। पर विभु पर नहीं....खाने के लिए नौकरी पर निर्भर करती हूँ और जीने के लिए कला पर।''[६९] याने कि अब नारी पुरुष पर नहीं या तो नौकरी पर डिपेंड करती है या फिर अपनी कला पर। लेकिन संबंधों को मनोवैज्ञानिक स्तर पर जाने की उद्धान-लालसा और संबंधों की नई ढेर सारी व्याख्याओं के बावजूद आज भी मन्नू की नारी सोचती है- पूरुष और नारी की दोस्ती ? आज के युग में भी आश्चर्य की बात है। रुढ़िवादी परिवार और समाज स्त्री-पुरुष संबंध की कल्पना यौनगंध रहित नहीं कर पाता।

बदलते युग के साथ, जहाँ सभी संबंधों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए, प्रेम का क्षेत्र भी इस से अछूता नहीं रह सका। जहाँ पहले प्रेम में एक मर्यादा, पवित्रता तथा बलिदान की भावना थी वहीं आज के प्रेम के अन्तर्गत, स्वच्छन्दता और स्वार्थ की दृष्टि देखी जाती है। बुद्धिजीवी मनुष्य प्रेम के क्षेत्र में भी उपयोगवादीता दृष्टि अपना रहा है। प्रेम के पीछे अपना संपूर्ण व्यक्तित्त्व तथा जीवन नष्ट नहीं करना चाहता। यही कारण है कि ''प्रेमी की असमर्थता या मजबूरी में प्रेमीका अन्यत्र विवाह कर लेती है।''[७०] ''प्रेमी भी थोड़ी बहुत स्पष्ट होने पर अन्यत्र विवाह करने में बिलकुल नहीं हिचकिचाता।''[७१] प्रेमिका की सांत्वना और अपने को अपराध चेतना से मुक्त करने लिए उससे विवाहोपरांत भी संबंध कायम रखना चाहता है। ''बौद्धिक नारी प्रेम में आत्म रक्षा के सभी संभव प्रयास अपना रही है

कहीं दो पुरुषो के प्यार की स्थिति को सब घोषित कर रही है।''[७२] ''पुराने प्रेम संबंध वैवाहिक जीवन को कहीं छायांकित न कर दे, इस डर से अपने प्रेमी को पत्र तक नहीं लिखने को कहती है।''[७३] ''विवाह के बाद भी प्रेम की स्थिति देखी जाती है।''[७४]

मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में विधवानारी की समस्याओं को उजागर किया है और इन समस्याओं का समाधान भी दिया है। विधवा विवाह को समाज द्वारा अस्वीकार करके एक पूर्ण व्यक्ति को अशुभ, अमांगलिक बनाकर जीवन के समस्त सुख छीन लिये गए। परिणामत: विधवा आश्रमों की व्यवस्था हुई किन्तु साथ ही अनेक अनाचारों की भी वृद्धि हुई। जहाँ औरत को मात्र एक भोग्या वस्तु के रुप में माना जाता हो और पति को उसका संरक्षक, वहाँ पति के अभाव में वह अरक्षित वस्तु के रुप में परिवर्तित हो जाती है। महात्मा गाँधी ने विधवा समस्या का निदान पुर्नविवाह बतलाया था। डॉ. महेन्द्र भटनागर ने इस समस्या के कारणों का विश्लेषण करते हुए कहा है- 'इसमें संदेह नहीं कि विधवा समस्या का प्रमुख कारण आर्थिक विषमता है और आर्थिक विषमता वर्तमान समाज व्यवस्था पर आज्रित है। जब तक भारतीय जीवन के संगठन में आधारभूत परिवर्तन नहीं होते, ये समस्यायें उचित ढंग से नहीं सुलझ सकती। पुर्नविवाह और सम्पति के अधिकार से एवम् आत्म निर्भरता के द्वारा इस समस्या को काफी हद तक सुलझाया जा सकता है।'

निष्कर्षत: मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी जीवन पारिवारिक, प्रेम व योन संबंधी, आर्थिक एवम् विधवा की समस्याओं को उजागर करते हुए समाधान का निर्देश किया है।

५.७ निष्कर्ष

भारतीय पुर्नजागरण के दौर में समाज सुधारकों और साहित्यकारों ने मात्र भोग्या और वस्तु समझी जानेवाली नारी को एक संमानजनक स्वरूप प्रदान करने की पहल की। राष्ट्रीय आंदोलन ने नारी के शक्ति और क्षमता को विस्तार प्रदान किया। शिक्षा प्राप्ति तथा स्वतंत्र चेतना के उदय के साथ ही नारी ने स्वयं को समाज की मुख्यधारा का एक हिस्सा समझा। भारतीय समाज में अनेक व्यापक परिवर्तन हुए। द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका और भारत विभाजन की त्रासदी के बाद स्वतंत्र हुए भारत में पुराने मूल्य और परंपराएँ चरमराने लगी थी। साहित्यकारों ने इस संक्रामक और संघर्षशील स्थिति को बड़ी सूक्ष्मता और गहराई के साथ अभिव्यक्त किया। संयुक्त परिवार प्रथा के विघटन और गाँवों से शहरों की और निष्क्रमण ने नारी को नयी भूमिका प्रदान की। शिक्षा, स्वचेतना का विकास पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के प्रभावने उसके अस्तित्व को एक नयी करवट दी। औद्योगिकरण और भौतिकता ने स्वार्थवृत्ति और आत्मकेन्द्रीकरण को बढ़ावा दिया- फलतः नारी के सामने कुछ दायित्व विवशता से आये और कुछ प्रतिक्रियावश, परंपरा आधुनिकतावादी परिवर्तनों के टकराव की भूमिका यहाँ आरंभ होती है।

नारी शिक्षा के विस्तार से संवैधानिक अधिकारों और पुरानी स्थितियों में परिवर्तन आया है। सामाजिक और संदर्भो के व्यापक परिप्रेक्ष्य में नारी आज भी संस्कारगत जड़ता से मुक्त नहीं है। नारी द्वारा सम्मान और अस्तित्व की अपेक्षा ने अनेक अन्तर्द्वन्द्वों, संघर्ष और तनाव को उत्पन्न किया है। बार-बार मनः स्मृति का हवाला देकर, बार-बार उसे देवी की उपाधि से छलता हुआ यह समाज वास्तव में उसे समान दर्जा नहीं दे पाया है। नारी का स्थान दलित शोषित, पीड़ीतवर्ग के

नारी कमज़ोर है या उसे कमज़ोर मान लिया गया है अथवा नारी ने स्वयं को भी कमज़ोर मान लिया है ? यह बहुत अहम् सवाल है। मानविय अधिकारों की मांग की अन्तर्गत उसे लड़ना होगा। चूँ कि व्यवस्था का नियामक पुरुष है अत: लड़ाई पुरुष से या व्यवस्था से है। उसे पुरुष को साथ लेकर चलना होगा अथवा नारी समूह और संगठनों के आधार पर रहना होगा- क्या पुरुष से यह परहेज हो सकता है ?

स्वतंत्रता के बाद मध्यवर्गीय मानसिकता और महत्त्वकांक्षाओं में विस्तार हुआ है। आर्थिक विषमताओं के कारण तथा आत्मनिर्भरता की आकांक्षा के कारण नारी ने घर से बाहर आकर नौकरी की। नौकरी पेशा नारी की दोहरी भूमिका में उसे जो सम्मान, सहयोग प्राप्त होना चाहिये था, वह नहीं मिला। पुरुष प्रघान समाज के जड़ संस्कार उसे वह सम्मान देना ही नहीं चाहते, फलत: नारी की बढ़ती हुई गति और सफलताओं पर प्रहार करने के लिऐ एक नूतन सम्यता के ग्लैमर का उपयोग किया गया। पुरानी परंपराओं और सामंती संस्कारों का एक वद्य रूप है- नारी देह का प्रदर्शन का रूप-एक वह सजावट की वस्तु है और पुरुष की व्यावसायिक सामग्री। एक धीमे और मीठे जहर के रूप में आज तक नारी इसकी गिरफ्त में है। राजनीति में नारी को प्रवेश मिला है अवश्य किन्तु उसने वहाँ भी जिद्द से घुसपैठ की है, वहाँ उसका प्रतिशत बहुत कम है। नारी की सामाजिक स्थिति परिवार की भीतरी संरचना में गुँथी हुई है, माँ-बहन-गृहणी-पत्नी-पुत्री के रूप में वह परिवार की महत्त्वपूर्ण ईकाइ के रूप में है, और समाज में अपनी बौद्धिक, क्षमताओं और प्रतिभा को स्थापित करने के लिये कटिबद्ध है। उसकी स्वाभिमानी चेतना और मुक्ति की छटपटाहट ने नारी आंदोलन को सशक्त वाणी दी है। पश्चिम से उठे इस आंदोलन ने भारतीय सामाजिक परिप्रेश्य

में बंधन और मुक्ति के नये रूपों को जन्म दिया है। नारीवादी दृष्टिकोण एकांगी नहीं है।, पुरुष विरोधी भी नहीं है बल्कि समाज में अपनी पहचान और क्षमता को मनवाने का एक कारगर प्रयास है।

सही सामाजिकरण के लिए नारी परिवार में उसे जन्म से ही सम्मान मिलना आवश्यक है। उसकी बौद्धिक चेतना जातीय परम्परा और इतिहास से जुड़कर ही विकास का मार्ग तलाश करती है। मानवीय संवेदनाओं की उदात्तता के लिये तथा मुक्ति की यह आशंका के लिए व्यावहारिक धरातल को समझना जरुरी है। स्वावलम्बन के द्वारा नारी समाज में न केवल सक्रिय भागीदारी निभा सकती है बल्कि देश की ठोस परिस्थितियों से जुड़ाव भी अनुभव करती है।

नारी चेतना की पहुँच बुद्धिजीवी जमातों से निकल कर मध्यवर्गीय और किसान मजदूर औरतों तक होनी चाहिये। एक वर्गविहिन समाज का सहयोग ही नारी की छबि को अनुकरणीय बना सकता है, अतः ठोस कार्यक्रम और सही दिशा का ज्ञान पहली शर्त है। बौद्धिक कार्यवाहियों और आंदोलनात्मक गतिविधियों के समन्वय तथा संकीर्ण मानसिकता का त्याग करके ही वे अपनी मांग करना सीखें। आजतक लिखा गया साहित्य यद्यपि नारी की स्थिति को विभिन्न रूपों में ही अभिव्यक्त करता है, फिर भी उसके संघर्ष, विकास की आकांक्षा, स्वाभिमानी चेतना और सफलता का शेष चित्रण हुआ है।

प्रकरण : ५ संदर्भ सूचि

(१) मन्नू भण्डारी : एखाने आकाश नाई, त्रिशंकु तथा अन्य कहानियाँ। पृ. : १२५

(२) मन्नू भण्डारी : छत बनाने वाले, एक प्लेट सैलाब। पृ. : ५५

(३) मन्नू भण्डारी : छत बनाने वाले, एक प्लेट सैलाब। पृ. : ५७

(४) मन्नू भण्डारी : त्रिशंकु, त्रिशंकु, कहानी संग्रह। पृ. : ६५

(५) मन्नू भण्डारी : एखाने आकाश नाई, त्रिशंकु कहानी संग्रह। पृ. : १२५

(६) मन्नू भण्डारी : एखाने आकाश नाई, त्रिशंकु कहानी संग्रह। पृ. : १२७

(७) मन्नू भण्डारी : रेत की दिवार, त्रिशंकु, तथा अन्य कहानियाँ, कहानी संग्रह। पृ. : ८२

(८) मन्नू भण्डारी : घूटन, तीन निगाहों की एक तस्वीर, कहानी संग्रह। पृ. : ४६

(९) मन्नू भण्डारी : एखाने आकाश नाई, त्रिशंकु, अन्य कहानियाँ, कहानी संग्रह। पृ. : १२७

(१०) मन्नू भण्डारी : रेत की दिवार, त्रिशंकु तथा अन्य कहानियाँ, कहानी संग्रह। पृ. : ८५

(११) मनुस्मृति : अध्याय ९, १०१-१०२ श्लोक

(१२) मन्नू भण्डारी : गीत का चुम्बन, मैं हार गई संग्रह। पृ. : २६-२७

(१३) मन्नू भण्डारी : दिवार, बच्चे और बरसात, मैं हार गई संग्रह। पृ. : ९६

(१४) मन्नू भण्डारी : दरार भरने की दरार, त्रिशंकु, कहानी संग्रह। पृ. : ६१

(१५) मन्नू भण्डारी : बन्द दरवाजों का साथ, एक प्लेट सैलाब, कहानी संग्रह। पृ. : ४२

(१६) मन्नू भण्डारी : तीसरा आदमी, यही सच है । पृ. : २६

(१७) मन्नू भण्डारी : रानी माँ का चबुतरा, यही सच है। पृ. : ११५

(१८) डॉ. प्रमिला कपूर : विवाह, सेक्स और प्रेम। पृ. : १७९

(१९) हेवर्लाक एलिस : यौन मनोविज्ञान (अनु. मन्नथनाथ गुस)। पृ. : १९

(२०) मनोविश्लेषण : (भाग-१, अनु. देवेन्द्रकुमार वेदालंकार)। पृ. : २७६

(२१) मनोविश्लेषण : (भाग-१, अनु. देवेन्द्रकुमार वेदालंकार)। पृ. : २७७

(२२) डॉ. प्रमिला कपूर : विवाह, सेक्स और प्रेम। पृ. : १८२

(२३) डॉ. प्रमिला कपूर : विवाह, सेक्स और प्रेम। पृ. : १८२

(२४) डॉ.प्रमिला : विवाह-सेक्स और प्रेम। पृ. : ४६

(२५) डॉ.प्रमिला : विवाह-सेक्स और प्रेम। पृ. : ४९

(२६) मन्नू भण्डारी : दिवार, बच्चे और बरसात, मैं हार गई, कहानी संग्रह। पृ. : ८४

(२७) मन्नू भण्डारी एवम् राजेन्द्र यादव : एक इंच मुस्कान। पृ. : १७४

(२८) मन्नू भण्डारी : बाहों का घेरा, एक प्लेट सैलाब, कहानी संग्रह। पृ. : २५

(२९) मन्नू भण्डारी : ऊँचाई, एक प्लेट सैलाब, कहानी संग्रह। पृ. : १३०-१३१

(३०) मन्नू भण्डारी : आपका बंटी। पृ. : १५१

(३१) मन्नू भण्डारी : तीसरा आदमी, यही सच हैं। पृ. : ३०

(३२) मन्नू भण्डारी : घूटन, तीन निगाहों की एक तस्वीर। पृ. : ७५

(३३) मन्नू भण्डारी : स्त्री-सुबोधिनी, त्रिशंकु। पृ. : ३२

(३४) मन्नू भण्डारी एवम् राजेन्द्र यादव : एक इंच मुस्कान। पृ. : १२७

(३५) मन्नू भण्डारी : एक बार और, प्रतिनिधि कहाँनियाँ, कहानी संग्रह। पृ. : १३५

(३६) मन्नू भण्डारी : यहीं सच है, कहानी संग्रह। पृ. : १२८

(३७) मन्नू भण्डारी : स्त्री-सुबोधिनी, त्रिशंकु, कहानी संग्रह। पृ. : ३५

(३८) मन्नू भण्डारी : अभिनेता, मैं हार गई, कहानी संग्रह। पृ. : ९८

(३९) मन्नू भण्डारी : बन्द दराजों का साथ, मेरी प्रिय कहानियाँ, कहानी सग्रह। पृ. : ४०

(४०) डॉ. प्रेमिला कपूर : विवाह, सेक्स और प्रेम। पृ. : ५४

(४१) मन्नू भंडारी : घूटन, तीन निगाहों की एक तस्वीर, कहानी संग्रह,श्रमजीवी प्रकाशन। पृ. : ८५

(४२) मन्नू भंडारी : घूटन, तीन निगाहों की एक तस्वीर, कहानी संग्रह, श्रमजीवी प्रकाशन। पृ. : ८३

(४३) मन्नू भण्डारी : बाहों का घेरा, एक प्लेट सैलाब। पृ. : २२

(४४) मन्नू भण्डारी : तीन निगाहों की एक तस्वीर। पृ. : २२

(४५) मन्नू भण्डारी : एक कमज़ोर लड़की की कहानी, मैं हार गई, कहानी संग्रह। पृ. : ६८.

(४६) मन्नू भण्डारी : स्त्री-सुबोधिनी, त्रिशंकु, कहानी संग्रह। पृ. : ३५

(४७) मन्नू भण्डारी : स्वामी। पृ. : १०८

(४८) मन्नू भण्डारी : रेत की दिवार, त्रिशंकु और अन्य कहानियाँ। पृ. : १३५-३६.

(४९) मन्नू भण्डारी : यही सच है, यही सच है तथा कहानियाँ। पृ. : १२९

(५०) मन्नू भण्डारी : क्षय, श्रेष्ठ कहानियाँ। पृ. : ८५

(५१) मन्नू भण्डारी : तीन निगाहों की एक तस्वीर, कहानी संग्रह। पृ. : ४७

(५२) मन्नू भण्डारी : बाहों का घेरा, एक प्लेट सैलाब, कहानी संग्रह। पृ. : २५

(५३) मन्नू भण्डारी : क्षय, यही सच है। पृ. : ९

(५८) आदिपर्व । १८३-२०

(५९) आरण्यक । २७७-३५

(६०) आदिपर्व । ११२-२६

(६१) अनुशासन । २२२-७

(६२) आदिपर्व । १८९-२

(६३) सभापर्व । ६१-७४

(६४) ठाकुर और चौधरी : आधुनिक भारत का इतिहास । पृ. : ३८०

(६५) डॉ. देवेश ठाकुर : प्रसाद के नारी पात्र । पृ. : ५२

(६६) मै. लालगर्ग : स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन, चित्रलेखा । पृ. : १२७

(६७) मन्नू भण्डारी : यहीं सच है और अन्य कहानी संग्रह । पृ. : १२०

(६८) मन्नू भण्डारी : यहीं सच है और अन्य कहानी संग्रह । पृ. : १२०

(६९) डॉ. सन्तबख्शसिंह : नयी कहानी और शिल्प । पृ. : ११०

(७०) ना. नामवरसिंह : कहानी, नयी कहानी । पृ. : ३०

(७२) मन्नू भण्डारी : आपका बंटी । पृ. : १५३

(७३) मन्नू भण्डारी : ऊँचाई, एक प्लेट सैलाब, कहानी सग्रह । पृ. : १३१

(७४) मन्नू भण्डारी एवम् राजेन्द्र यादव : एक इंच मुस्कान, । पृ. : १७५

(७५) मन्नू भण्डारी : तीसरा हिस्सा, त्रिशंकु, कहानी संग्रह । पृ. : १४३

(७६) मन्नू भण्डारी : बाहों का घेरा, एक प्लेट सैलाब, कहानी संग्रह । पृ. : २७

(७७) मन्नू भण्डारी : एक बार और, प्रतिनिधि कहानियाँ, कहानी संग्रह । पृ. : १३६

(७८) मन्नू भण्डारी : यही सच है, यही सच है कहानी सग्रह । पृ. : १३०

(७९) मन्नू भण्डारी : एक कमज़ोर लड़की की कहानी, मैं हार गई, कहानी संग्रह। पृ. : ६७

प्रकरण : ६. उपसंहार

प्रकरण : ६. उपसंहार

आधुनिक साहित्यकारों के बीच मन्नू भण्डारी का नाम आदर से लिया जाता है। मन्नूजी की रचनाएँ साहित्य जगत में विशेष स्थान रखती है।

स्वतंत्रता-पूर्व हिन्दी कथा-साहित्य में नारी के विविध रूप संबंध, अर्थ विचार और पर्यावरण के आधार पर मिलते है। आधुनिक युग में कथा-साहित्य का जो स्वरुप हमें मिलता है, उसका इतिहास अधिक प्राचीन नहीं है। उसका प्रारंभ १९वीं शताब्दी के पश्यात पाश्यात्य-साहित्य के प्रभाव एवम् भारत की सामाजिक परिस्थितियों के कारण हुआ है। उससे पूर्व कहानी का प्राचीन रूप कथा-साहित्य के रूप में ही मिलता है। कथा की परंपरा काफी लम्बे समय से चली आ रही है। ''कथासरीत्सागर'',''हितोपदेश'',''पंचतंत्र'',''वृहत्कथायें'' आदी इसका प्रमाण हैं।

भारत में प्राचीन काल से नारी का स्वतंत्र व्यक्तित्व संमानित रहा है। उसे अध्ययन-अध्यापन, शास्त्रार्थ, चर्चा, अपना पति चुनने का अधिकार प्राप्त था। वैदिक संस्कृति में एवम् गुप्तकाल में स्त्रियों को सारे अधिकार प्राप्त थे। गुलामी के बाद-मुगलों की और अंग्रेजों की-में स्त्रियों के अधिकार संकुचित हो गये। वे घर में सीमित हो गयीं। अनेक कुप्रथाएँ चल पड़ी जैसे बाल विवाह, बहु विवाह बेमेल विवाह, भ्रुण हत्या, लड़कियों को मार देना। इनके अलावा वैधव्य के उपरांत नरकीय जीवन, इससे छुटकारा पाने के लिए सती प्रथा का आगमन, शिक्षा के अधिकारों से वंचित आदि बातें हमें दिखायी देती हैं। स्त्री का इस काल में कामिनी रूप ही अधिक अंकित है। वह माँ, गुरुआइन, बहन न रह कर प्रेमिका या भोग्या रही। उसका नख:शिख वर्णन कवियों का प्रमुख विषय रहा। आजादी के आंदोलन के समय स्त्रियों ने राजनीतिक आंदोलन में खुलकर हिस्सा लिया

जैसे पिकेटिंग करना, धरना देना, जुलुस निकालना, जेल जाना, सत्याग्रह करना आदि बातें पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर की। समाज-सुधारकों के कारण स्त्री-अत्याचारों के खिलाफ कानून बनाये गये। आजादी के बाद संविधान ने उनको बराबरी के अधिकार दिये। यह बराबरी राजनीतिक क्षेत्र में, नौकरी के क्षेत्र में और अन्य व्यवसायों में मिली। साथ-साथ पश्चिमी विचारों के कारण नारियों में चेतना जागी।

अनेक उदाहरण ऐसे हैं जिनमें नारी स्वयं नारी की शोषक रही है। जिसमें प्रदर्शन की वृत्ति काम करती है। कभी माँ के रूप में-तो कभी बेटी के रूप में कभी सास के रूप में-तो कभी बहू के रुप में इतना ही नहीं तो पत्नी,प्रेयसी,पडोंसन आदी कई रूपों में नारी-नारी का शोषण करती है।

हिन्दी कथा-साहित्य के स्वतंत्रता-पूर्व के विकास को प्रेमचंद-पूर्व, प्रेमचंद युग और प्रेमचंदोत्तर युग के रूप में देखा जा सकता है। प्रेमचंद पूर्व युग के कथा-साहित्य में कथात्मकता, कुतूहलता, घटनात्मकता आदि तत्व प्रधान थे। उसी के आधार पर कथा-साहित्य का ताना-बाना बुना जाता था। पात्रों के व्यक्तित्व सामान्य वर्ग से न हो कर विशिष्ट वर्ग में से होता था, क्योंकि भारत पर एक ओर अंग्रेजी सत्ता का प्रभाव था ओर दूसरी ओर सामंती व्यवस्था के तत्व भी पूर्णतया लुप्त नहीं हुए थे। पूंजीवादी व्यवस्था का प्रभाव भी पड़ना प्रारंभ हो गया था। कथा-साहित्य विद्या की प्रारंभिक स्थिति एवम् समाज में संक्रमण की स्थिति के कारण नारी के विविध रूपों को सामाजिक धरातल पर अभिव्यक्ति नहीं मिली। इंशा अल्ला खां की ''रानी केतकी की कहानी'', किशोरीलाल गोस्वामी की ''इन्दुमती'' के नारी-पात्र सामान्य नारी-जीवन के नहीं है, फिर भी शिवप्रसाद सिंह 'सिप्रे' की ''एक मिट्टी भर टोकरी'', बंग महिला की ''दुलाई वाला'' आदि में

नारी-जीवन की सामान्य समस्याओं को देखा जा सकता है। अतः प्रेमचंद पूर्व हिन्दी कथा-साहित्य अपनी प्रारंभिक स्थिति में होने के कारण सामाजिक यथार्थ से पूर्णतया नहीं जुड़ पायी।

प्रेमचंद युगीन हिन्दी कथा-साहित्य में नारी के विविध रूप संबंध, अर्थ विचार, और पर्यावरण के धरातल पर मिलने प्रारंभ हो जाते है। प्रेमचंद युग में आकर साहित्य का कथ्य और शिल्प बदला। प्रेमचंद युग की कहानी पर अपने युग का प्रभाव मिलता है। प्रेमचंद युग में नारी आदर्श, मर्यादा, मूल्य, त्याग क्षमा, बलिदान, श्रद्धा, सहानुभूति आदि गुणों की प्रति मूर्ति के रूप में चित्रित हो रही थी। कथा-साहित्य सामाजीक यथार्थ से किसी सिद्धांत या आदर्श विचारधारा के माध्यम से ही जुड़ी। इसलिए नारी के विविध रूप- कन्या, पत्नी, बहन विधवा, प्रेमिका, वेश्या, आदी कथा-साहित्य की दृष्टि के माध्यम से ही उभरे। कथा-साहित्यकार समाज के प्रति सजग थे। प्रेमचंद, प्रसाद, यशपाल आदि के साहित्य में नारी के विविध रूपों के विविध आयाम मिलते है।

प्रेमचंदोत्तर युग में साहित्यकारों ने नारी को सामाजिक धरातल पर चित्रित न करके मनोविश्लेषात्मक धरातल पर चित्रित किया है। प्रेमचंदोत्तर हिन्दी कथा-साहित्य में जैनेन्द्र, अज्ञेय, जोशी का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रेमचंद, प्रसाद, यशपाल ने नारी को सामाजिक आधार प्रदान कर गरिमा दी तो जैनेन्द्र, अज्ञेय, जोशी ने नारी को वैयक्तिक आधार प्रदान करके, उन्होंने नारी अन्तर्मन की गहराइयों को अभिव्यंजित किया है। जैनेन्द्र, अज्ञेय, जोशी के कथा-साहित्यों में नारी के कन्या, पत्नी, माँ, बहन, विधवा, प्रेमिका, वेश्या के रूपों के आंतरिक पक्ष का ही अधीक उद्‌घाटन हुआ है।

प्रेमचंद-पूर्व-युग, प्रेमचंद-युग, प्रेमचंदोत्तर-युग से स्वतंत्रता-प्राप्ति तक

हिन्दी कथा-साहित्य में नारी के विविध रूप संबंधों के धरातल पर ही अधीक मिलते हैं। नारी को आर्थिक, शैक्षणिक, वैचारिक सुविधा अभी अधिक नहीं मिली है। उसमें नारी के विविध रूप संबंध, अर्थ, विचार, पर्यावरण के धरातल पर स्पष्ट रूप से मिलते हैं।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्यात भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन हुआ है। नारी के व्यक्तित्व के विकास के आधारों में जैसे-जैसे परिवर्तन हुआ है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्यात नारी को सामाजिक और संवैधानिक दृष्टि से पुरुषों के समान स्वाधीनता मिली है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्यात कथा-साहित्य में नारी संबंधी दृष्टिकोण में बदलाव आया है। कथा-साहित्य में नारी को किसी सिद्धांत, आदर्श या विचारधारा के माध्यम से चित्रित न करके उसे उसके वैयक्तिक एवम् सामाजिक परिवेश में स्वतंत्र इकाई के रूप में चित्रित किया है। इसलिये स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में नारी अपने जीवन के सभी पहलुओ में चित्रित हुई हैं।

मन्नू भण्डारी के कथा-साहित्य में नारी रूप में परंपरागत और नवीन दोंनो ही आयामों को उभारा है। काम अतृप्ति दाम्पत्य संबंधों को तोड़ने काफी महत्त्व पूर्ण भूमिका निभा रही है। शारीरिक, मानसिक अतृप्ति, नारी-पुरूषों को घर से पटका रही है। ''एक इंच मुस्कान''की अमला, रंजना तथा अमर, ''तीसरा आदमी''का सतीश व शकुन, ''तीन निगाहों की एक तस्वीर''की दर्शना ''स्त्री-सुबोधिनी'' की मैं तथा शिन्दे, ''एक बार और'' की बिन्नी,''स्वामी'' की मिनी ''आपका बंटी'' की शकुन तथा बंटी, ''दरार भरने की दरार'' की श्रृती, ''आते-जाते यायवर'' का नरेन,''कील और कसक'' की रानी आदि इस संदर्भ में आते है। भावुक रंजना अणने बौद्धिक पति अमर से भावात्मक तृप्ति नहीं पाती।

अति व्यस्त व्यवहार कम्मो को यांत्रिक-सा ही लगता है। अतृप्ति कुंठा के कारण नारी घर छोड़ने पर बाध्य हो रही है। पति की अत्यधिक सहनशीलता और अन्तर्मुखता के कारण ''स्वामी'' की मिनी अपने पति घनश्याम को छोड़कर प्रेमी नरेन के साथ चली जाती है। काम, क्रोध, वात्सल्य, स्वातंत्र्य, स्वाभिमान साहचर्य, अर्थ, दायित्व तथा समायोग्य आदि के मूल्यों विकास में भी मन्नू भण्डारी ने सामान्य और असामान्य मनोविज्ञान का आधार फलक ग्रहण किया है। सामाजिक स्वास्थ को विकृत्ती करने वाली जीवन दृष्टि को मनोविकृत्तीयों- मनस्ताप, मनोविक्षिप्तता तथा मनोविकृत्तीयाँ को यथा अवसर निराग्रह और निरावृत कर अकुंठ मानव व्यक्तित्व की प्रतिस्थापना ही कुंठाओं मनोविकृत्तीयों, आर्थिक विडम्बनाओं और पारिवारिक विषमायोजन के कारणों और परिणामों का प्रभावी चित्रण किया है।

मन्नूजी ने आधुनिक व पुरानी दोनों ही पीढ़ीयों के पात्रों को अपने साहित्य में स्थान दिया है। जहाँ उनकी आधुनिक नारी समस्त सामाजिक नैतिक मूल्यों का खण्डन करती हुई दिखाई देती है, वहाँ परंपरागत भारतीय नारी सहनशील और समर्पिता के रूप प्रस्तुत होती है ; किन्तु यह भावतिरेक उनकी प्रारंभिक कहानियों में ही अधिक दिखाई देता है। कहीं-कहीं उनके नारी पात्र प्रसाद के नारी पात्रों के समर्पण भाव को स्पर्श करते हुए भी प्रतित होते है। प्रायः सभी पात्र में विद्रोह और संघर्ष उभरकर आए बिना नहीं रहता है। अमरकांत, मोहन राकेश, शानि मार्कण्डेच, रेणु, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा तथा उषा प्रियंवदा आदि नये कहानिकारों की भाँती मन्नूजी ने जीवन के यथार्थ को व्यक्ति की मजबूरी, पीड़ा, व्यथा निराशा और संत्रास आदि में मानवीय संवेदना के साथ देखा है। कभी-कभी आश्चर्य होता है कि एक पीढ़ी के इन कथाकारों की वैचारिकता में इतना अधिक

सामने कैसे संभव हो सकता है, किन्तु शायद राजेन्द्र यादव का कथन ही इस प्रश्न का उत्तर देता है कि''आज के प्राय: सभी कहानिकार एक ही सामाजिक प्रतिक्रिया के परिणाम और एक ही से साहित्यिक संस्कारों में पले और बढ़े है अत: उनके प्रेरणा-स्त्रोत भी इतने समान है कि प्राय: उनकी शब्दावली और सोचने का ढंग कहीं-कहीं एक सा दिखाई पड़ता है।''

यही कारण है कि मन्नू भण्डारी के साहित्य का मूल स्वर नई कहानी के अन्य मूर्धन्य कहानी कि समस्याओं को सभी ने अपने-अपने ढंग से अपनी-अपनी अनुभूतियों के अनुरुप व्यक्त किया है। उदाहरण के तौर पर मन्नूजी के आपका बंटी को लिया जा सकता है। नए कथाकारों ने दाम्पत्य संबंधों और तलाक की समस्या को अनेक रुपों में अपनी कृतियो में अभिव्यक्ति दी है।

उनके पात्रों में ''आपका बंटी'' के बंटी, ''उँचाई'' की शिवानी , ''एक इंच मुस्कान'' की अमला ''बंद दराजों का साथ'' की मंजरी, ''रानी माँ का चबुतरा'' की गुलाबी, ''नकली हीरे'' की इन्दु, ''यही सच है'' की दिपा, ''स्वामी'' की मीनी, ''घूटन'' की प्रतीभा, ''तिसरा हिस्सा'' के शेरा बाबु, ''महाभोज'' का बिन्दा, ''बिना दिवारों का घर'' की शोभा आदि अनेक पात्रों का उल्लेख किया जा सकता है। इन पात्रों के साधारण व विशिष्ट चरित्र को मन्नू भण्डारी ने मनोविश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है।

मन्नूजी ने आधुनिक युग का प्रतिनिधित्त्व करने वाले पात्रों का संयोजन भी किया है, तो पुरानी पीढ़ी के पात्र भी उनके साहित्य में समाहित हुए है। ''मजबूरी'' की माँ, ''नशा'' की आनंदी, ''छत बनाने वाले'' के ताऊजी, ''सयानी बुआ'' की सयानी, ''अकेली'' की सोमा बुआ, ''इन्कमटेक्स और नींद'' के डॉ.दयाल ''रेत की दिवार'' के कामता बाबू, ''स्वामी'' की गिरी, मिनी की सास व

देवरानी, ''संख्या के पार' के बाबा आदि कुछ ऐसे ही पात्र है।

आधुनिक युग के संत्रास, अविश्वास, घूटन, कुंठा और बिखरते-टूटते संबंधों की भयावह परिस्थितियों के बीच जिन्दगी की सच्चाईयाँ से संघर्षरत मानव को उन्हों ने चित्रित किया है। उनके पात्रों में जीवन की विवशताओं और अभावों को झेलती नारियाँ भी है, जैसे- ''किल और कसक'' की रानी, ''गीत का चुम्बन'' की कनिका, ''एक कमज़ोर लड़की की कहानी'' की रुपा, ''अभिनेता'' की रंजना, ''बंद दराजों का साथ'' की मंजरी, ''तीन-निगाहों की एक तस्वीर'' की दर्शना, ''घूटन'' की मोना तथा ''एक इंच की मुस्कान'' की रंजना आदि। उदाहरण के लिए ''किल और कसक'' की रानी को लिया जा सकता है। रानी का पति कैलास आर्थिक कर्ज के बोझ में दबा हुआ है। मशीनों के बीच काम करते-करते वह भी मशीन बन गया है। रानी के युवा हृदय की उमंगो, लालसाओं और इच्छाओं को न हीं वह समझ पाता है और न हीं उन्हें पूरा ही कर पाता है। जब कैलास से रानी की युवा भावनाए तृप्त नहीं हो पाती तो वह शेखर के प्रति आकृष्ट होती है। किन्तु जब शेखर भी विवाह कर लेता है तो रानी का नारीत्व आहत हो उठता है। ईर्षा, द्वेष और आक्रोश से रानी कुंठित हो उठती है। और बात-बात पर शेखर की पत्नी से लड़ती है। मन्नूजी ने रानी की अभावजन्य कुंठा और विवशता को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत कर नारी मन का सुंदर विश्लेशण किया है। वर्तमान युग की आर्थिक विषमताओं से जूझते, टूटते, बिखरते पात्र भी मन्नूजी ने लिए है, जिन्हें ''तीन निगाहों की एक तस्वीर'', ''खोटे सिक्के'', ''सजा'' ''क्षय'', ''रेत की दिवार'', ''शायद'', ''महाभोज'' आदि कृतियों में देखा जा सकता है।

'क्षय' की कुन्ती आधुनिक युग की आर्थिक विषम परिस्थितियों से जूझते

मानव को साकार करती है। बीमार बूढे पिता और छोटे भाई का भार उस पर है इस भार को वहन करते करते वह स्वयं टूट-सी जाती है । विडम्बनापूर्ण आर्थिक परिस्थितियों में घिरे पात्रों और उनकी मन: स्थितियों को मन्नूजी ने यथार्थ दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है ।

मन्नूजी के पात्रों में सामाजिक मूल्यों से जूझते पात्र भी हैं, जो ''संख्या के पार'', ''ऊँचाई'', ''एखाने आकाश नाई'', ''दिवार'', ''बच्चें और बरसात'' आदि कृतियों में अपनी विवशताओं और विद्रोह के साथ उभरे हैं। वैसे तो मन्नूजी के प्राय: सभी पात्र ही रुढिगत, सामाजिक परंपराओं और मान्यताओं से जूझते दिखाई पड़ते हैं, किन्तु इनमें से कुछ पात्र विशेष साहस, दृढ़ता और निडरता से परंपरागत सामाजिक-मूल्यों के विरोध में खडे हुए है। ऐसे पात्रों में 'ऊँचाई' की शिवानी का नाम लिया जा सकता है । शिवानी नारी की शारिरीक पवित्रता के परंपरागत मूल्यों का विरोध व खण्डन करती है । विवाहोपरान्त अपने प्रेमी से शारिरीक संबंध स्थापित करके वह स्वयं को दोषी मानने से स्पष्ट इन्कार कर देती है। यही नहीं अपने पति के समक्ष वह निसंकोच दृढ़ता से इसे स्वीकार कर अपने नये दृष्टिकोण और साहस का परिचय देती है । उनके अधिकांश पात्र बाह्य परिस्थितियों और आंतरिक मनोभावों और स्थितियों के बीच झूलते, संघर्ष करते टूटते, बिखरते और संभलते हुए आधुनिक पात्र है। इन पात्रों की बाह्य परिस्थितियों में तो संघर्ष की स्थिति है ही; उनके अन्तर में भी बराबर एक द्वन्द्व और संघर्ष चलता रहता है। आंतरिक संघर्षो से जूझते प्रमुख पात्रों में ''तीसरा आदमी'' के सतीश, ''यही सच हैं'' की दीपा , ''बाहों का घेरा'' की कम्मो, ''बन्द दराजों का साथ'' की मंजरी, ''एक इंच मुस्कान'' के अमर, अमला व रंजना, ''आपका बंटी'' का बंटी, ''किल और कसक'' की रानी तथा ''एक बार और'' की बिन्नी

आदि का समावेश किया जा सकता है। मानसिक द्विधा और उहापोह को मन्नूजी ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। दीपा ने मन की यह दुविधा और अनिश्चितता आधुनिक मानव की मानसिक जटिलताओं और द्वन्द्वात्मक परिस्थितियों को उद्‌घाटीत करती है।

मन्नू भण्डारी ने अपने कथा-साहित्य में नूतन समस्याओं एवम् संघर्षो का चित्रण किया है जो वर्तमानयुग में व्याप्त कुंठा, निराशा, असंतोष और विश्रृंखलता का परिणाम है। सामूहिक रूप से अनुशीलन करने पर मन्नूजी के कथा-साहित्य में निम्न प्रवृतियों की दृष्टिगत होती है।

निम्नवर्ग और मध्यवर्ग के प्रति उनकी सहानुभूति उनकी लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण है। प्रेमचंद की भाँती अनके साहित्य की कथा चेतना निम्नवर्गीय और मध्यवर्गीय सामाजिक परिवेश से मूलतः जुड़ी हुई है। यही कारण है कि प्रेमचंद के यथार्थवादी समाजोन्मुख दृष्टिकोण के आधुनिक रूप को कुछ सीमा तक मन्नू भण्डारी के साहित्य में देखा जा सकता है मन्नू भण्डारी की अपने समय के युग-बोध और युग-सत्य को उसके संपूर्ण परिवेश में सच्चाई से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति प्रेमचंद के साहित्य की याद दिलाती है। ''खोटे सिक्के'' में शोषकवर्ग के प्रति उनकी वितृष्णा और शोषितों के प्रति सहानुभूतपूर्ण संवेदना उन्हें प्रेमचंद के निकल ले लेती है। मन्नूजी के साहित्य में सामाजिक प्रतिबद्धता की भावना और मानव हित के प्रति चिंता का भाव भी इसी ओर इंगित करता है। इनकी प्रायः सभी कृतियाँ मानवीय संवेदनाओं पर आधारीत हैं, किन्तु ये संवेदनाएँ मनुष्य के सामाजिक परिवेश से जुड़ी हुई है।

मन्नू भण्डारी ने प्रेम और सैक्स संबंधों को भी एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया है। प्रेम की सरसता और रोचकता के साथ-साथ उसकी बोरियत को भी उन्होंने स्वभाविकता से प्रस्तुत किया है। आधुनिक नारी को केन्द्र बनाकर उसने जीवन की अनेक स्तरीय समस्याओं का चित्रण मन्नूजी की अनेकानेक कहानियों में हुआ है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मन्नू भण्डारी ने आधुनिक परिस्थितियों में आंतरिक और बाह्य संघर्षो से जूझते, नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के पात्रों का सुंदर समन्वय अपने साहित्य में किया है। पुरानी पीढ़ी के पात्रों की रुढिगत मानसिकता के विरोध का स्वर और नई पीढ़ी के लोगो की मानसिक परिस्थितियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उनकी कृतियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

मन्नू भण्डारी का कथा-साहित्य अन्तः बाह्य परिवेश और क्रूर मानवीय स्थितियों से प्रेरित स्थूल और बाह्य घटनाओं की अपेक्षा आंतरिक और अनुभव जगत का विश्लेषक रहा है। अन्तर्मन की इन कथाओं का द्वन्द्व भी आंतरिक ही है। देखने में कथानक स्वल्प और लघु प्रतित होते है, लैकिन परत दर परत उकेरी गयी मन की परतों के बाद ये पाठक और आलोचक को अन्तःमन की जटिल और संकरी गलियों की यात्रा करवाते हैं तो यह यात्र त्रास्क और पीड़ा देने वाली तो होती ही है साथ ही कथाकार की मजबूत पकड़ को और जीवंत और सटीक चित्रण को देखकर ओलोचक या पाठक चमत्कारिक हुए बिना नहीं रह सकता। मन्नूजी के कथा-साहित्य का बहुलांश अहं, हीनता या श्रेष्ठताकी ग्रंथी, काम तथा सामाजिक वृत्त में समाहित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक समस्या को व्याहारिक समस्या के समाधान की व्यवहारिक अभिव्यक्ति या अभ्यान्तर प्रभाव की स्थितियाँ या मनः स्थिति की विसंगति व विडम्बना पूर्ण व्यक्ति ही उनके कथा का कथ्य बनकर सामने आई है। परिवरिक विघटन की मनोवैज्ञानिक स्थिति और कारणों को ही मन्नूजी ने अपने कथ्य का आधार बनाया है, साथ ही स्त्री-पुरूष के नवीन संबंधों, नवीन सेक्स चेतना व क्षण की महत्त्वता की कथानक में स्वीकारण और उन पर भी प्रत्यक्ष या परोक्ष मनोवैज्ञानिक प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

उन्होंने समस्याओं के समाधान प्रस्तुत नही किए है, किन्तु उन समस्याओं को इस प्रकार उठाया है कि मनुष्य उन पर सोचने के लिए मजबूर हो जाता है। समस्याओं का समाधान तभी संभव है जब समाज के लोग उस पर गंभीरता पूर्वक विचार करे। अत: मन्नूजी ने उस ओर संकेत करके अपने लेखकिय कर्तव्य का पालन किया है। मन्नूजी की सजग दृष्टि परिवेश की यथार्थता पर सदैव केन्द्रित रही है अत: उनकी कृतियों में व्यक्ति के परिवेश को सजीवता से उभारा गया है। व्यक्ति के प्रति पूर्ण सहानुभूति होने के बावजूद मन्नूजी ने उसके परिवेश के महत्त्व को खुले ह्रदय से स्वीकार किया है। मन्नूजी की दृष्टि में जहाँ वैयक्तिक विडम्बनाओं के लिए स्वयं व्यक्ति जिम्मेदार है वहाँ उसका सामाजिक परिवेश भी उनके लिए उतना ही जिम्मेदार है। इस तथ्य का उद्‌धाटन उनकी अनेक कहानियों में हुआ है। पूंजीपति व शोषकवर्ग के प्रति वितृष्णा एवम् आक्रोश तथा सर्वहारा व शोषित वर्ग के प्रति पूर्ण सहानुभूति उनकी कहानियों में व्यक्त हुई है। समाज की आर्थिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक विकृतियों पर उन्होंने तीक्ष्ण व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं। उनकी प्राय: सभी कहानियों में समाजवादी दृष्टिकोण स्पष्ट व्यक्त हुआ है।

मन्नूजी ने किसी सिद्धांत या आदर्श का आधार ग्रहण नहीं किया है। नारी को इकाई रूप में ग्रहण करके उसके आसपास के परिवेश में चित्रित किया है। मन्नूजी ने हिन्दू धर्म संस्कारो को तिलांजलि देकर नारी को चित्रित किया है। भारतिय सामाजिकव्यवस्था का समूचा ढांचा परिवर्तित नहीं हुआ है। अत: मन्नूजी का मुख्य उद्‌देश्य व्यक्ति और परिवेश का यथार्थ चित्रण रहा है। नार के विविध रूपों की परिवर्तित स्थिति तथा परंपरागत दृष्टि दोंनो ही कथा-साहित्य के माध्य से ही उभरी हैं।

परिशिष्ट

ग्रंथानुक्रमणिका

आधार ग्रंथ

क्रम	ग्रंथ	लेखक	प्रकाशन/संस्करण
	उपन्यास साहित्य		
१	आपका बंटी	मन्नू भण्डारी	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ही
२	एक इंच मुस्कान	मन्नू भण्डारी	राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट दिल्ही, संस्करण - १९८४
३	कलवा	मन्नू भण्डारी	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ही
४	महाभोज	मन्नू भण्डारी	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ही-१९७६
५	स्वामी	मन्नू भण्डारी	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ही
	कहानी साहित्य		
१	आँखो देखा झूठ	मन्नू भण्डारी	अक्षर प्रकाशन, संस्करण:-१९८१
२	एक प्लेट सैलाब	मन्नू भण्डारी	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ही १९८४
३	तीन निगाहों की एक तस्वीर	मन्नू भण्डारी	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ही
४	प्रतिनिधि कहानियाँ	मन्नू भण्डारी	राजकमल प्रकाशन दिल्ही १९८४
५	मन्नू भण्डारी की श्रेष्ठ कहानियाँ	मन्नू भण्डारी	अक्षर प्रकाशन, दिल्ही
६	मैं हार गई	मन्नू भण्डारी	अक्षर प्रकाशन, दिल्ही
७	यही सच्च हैं	मन्नू भण्डारी	अक्षर प्रकाशन, दिल्ही १९८४
८	त्रिशंकु तथा अन्य कहानियाँ	मन्नू भण्डारी	अक्षर प्रकाशन, दिल्ही १९८१

क्रम	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशन/संस्करण
१.	आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति	डॉ.प्रेमचंद नारायण सिन्हा	अनुपम प्रकाशन पटना १९८०
२.	आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में काममूलक संवेदना	डॉ. श्री राम महाजन	चिंतन प्रकाशन कानपुर – १९८६
३.	आकाश द्वीप	जय शंकर प्रसाद	भारती भंडार इलाहाबाद १९६३
४.	आतंक ब्रीज	निरुपमा सेवती	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ही १९७५
५.	आज के साये	मोहन राकेश	आभास प्रकाशन दिल्ही १९६७
६.	आदम और इवा	महेरुनिसा परवेज	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ह – १९७२
७.	आठवें दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य	डॉ. उमेश देशमुख	विद्याप्रकाशन कानपुर १९९४
८.	उजाले के उल्लू	महीपसिंह	उमेश प्रकाशन दिल्ही १९७१
९.	उलजन	महीपसिंह	लिपि प्रकाशन दिल्ही १९७३
१०.	उपन्यासकार मन्नू भण्डारी : १९९८	माधुरी बाजपेयी	अतुल प्रकाशन कानपुर १९९८
११.	एक समर्पित महिला	नरेश महेता	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन १९६७
१२.	एक और जिन्दगी	मोहन राकेश	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ही १९७०
१३.	एक– एक दुनियाँ	मोहेन राकेश	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ही १९६९
१४.	एक दुनियाँ समानान्तर	राजेन्द्र यादव	अक्षर प्रकाशन दिल्ही १९७१
१५.	एक वह	रामदश्श मित्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ह १९७४

१६.	ऐतिहासिक भौतिकवाद	व.केल्लेम कोवालोजोन	प्रगती प्रकाशन मोस्को १९७४
१७.	कथाकार मन्नू भण्डारी	अनिता राजुरकर	नेशनल पब्लिशिंग हाउस १९८७
१८.	कहानी : नयी कहानी	डॉ.नामवरसिंह	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद १९७३
१९.	कहानी : स्वरुप और संवेदना	राजेन्द्र यादव	नेशनल पब्लिशिंग हाउस १९६८
२०.	काढ का सपना	गजानन माधव मुक्ति बोध	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ही १९६७
२१.	काला रजिस्टर	रविन्द्र कालिया	रचना प्रकाशन इलाहाबाद १९७२
२२.	कितनी कैद	मृदुगा गर्ग	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ही १९७३
२३.	नयी कहानी की भूमिका	कमलेश्वर	अक्षर प्रकाशन दिल्ही १९६९
२४.	नारी जीवन तथा अन्य कहानियाँ	प्रेमचंद	सरस्वती प्रेस बनारस १९७०
२५.	नारी अस्मिता हिन्दी उपन्यास में	डॉ. सुदेश बत्रा	रचना प्रकाशन जयपुर १९९८
२६.	पहला कदम	दुधनाथसिंह	रचना प्रकाशन इलाहाबाद १९७६
२७.	परिन्दें	निर्मल वर्मा	राजकमल प्रकाशन दिल्ही १९७४
२८.	पटरियाँ	भीष्म सहानी	राजकमल प्रकाशन दिल्ही १९७३
२९.	परिवार, व्यक्तिगत सम्पति और राजसत्ता की उत्पति	फ्रेडिरक एँगेटस	पीप्युल्स पब्लिशिंग दिल्ही १९७१
३०.	पिछली गर्मियों में	निर्मल वर्मा	राजकमल प्रकाशन दिल्ही १९६८
३१.	पेपरवेट	गिरिराज किशोर	राजकमल प्रकाशन दिल्ही १९६७
३२.	मनोविज्ञान	नारमन एल.एन.	राजकमल प्रकाशन दिल्ही १९७२

३३.	मन्नू भण्डारी का कथा–साहित्य	प्रा.किशोर गिरडकर	अमोलचंद महाविद्यालय यवतमाल
३४.	महिला उपन्यास कारो की रचनाओ में वैचारिकता	डॉ. शशि जैकब	जवाहर पुस्तकालय मथुरा १९८९
३५.	मानसरोवर (भाग १ थी ६)	प्रेमचंद	सरस्वती प्रेस बनारस १९७०
३६.	माँस का दरिया	कमलेश्वर	अक्षर प्रकाशन दिल्ही १९६९
३७.	भाषा और संवेदना	डॉ. रामस्वरुप चतुर्वेदी	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ही १९६४
३८.	भारतीय समाज मे नारी की परिस्थिति	भारतीय अनुसंधान विज्ञान	आर्नल्ड पब्लिशर्स दिल्ही १९७५
३९.	राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में मध्यमवर्गीय जीवन	डॉ. अर्जुन चौहाण	राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.ली. १९९५
४०.	राजा निरबंसिया	कमलेश्वर	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन १९६६
४१.	रिश्ता	गिरिराज किशोर	रजकमल प्रकाशन प्रा.ली. दिल्ही १९६९
४२.	रोयेरेशे	मोहन राकेश	आभास प्रकाशन नई दिल्ही १९९८
४३.	समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि	डॉ. धनश्रेय(सं)	अभिव्यक्ति प्रकाशन १९७०
४४.	साठोतरी हिन्दी उपन्यास में राजनैतिक चेतना	प्रसादसिंह वबा	नेशनल पब्लिशिंग दिल्ही १९७५
४५.	सुहागिनी तथा अन्य कहानीयाँ	शैलेश भटियानी	विकल्प प्रकाशन इलाहाबाद १९७१
४६.	सामाजिक मानवशास्त्र	डी.एन.मजुमदार	नेशनल पब्लिशिंग हाउस १९७१
४७.	स्वातंत्रोतर दिन्ही कथा–साहित्य मे नारी के बदलते संदर्भ	डॉ. शीला रजवार	इन्टर्न बूक लिंक्स दिल्ही१९७०
४८.	हिन्दी उपन्यास के पद चिह्न	डॉ. मनमोहन सहगल	सूर्य प्रकाशन दिल्ही १९७९
४९.	हिन्दी उपन्यास में प्रतिकात्मक शिल्प	डॉ. सुशीला शर्मा	१९८४

सहायक अंग्रेजी ग्रंथ

1.	Indian Woman.	Hansa Mehta	Butala & Comp Delhi-198
2.	Indian Women's Bettles	Kamala Devi Chttopadhyay	Abhinav Publica-tions Delhi-1983
3.	Women and Social in India	Jana Mastson Evert	Heritage Publishees New Delhi-1979

पत्र पत्रिकाएँ

१.	हंस	सं राजेन्द्रयादव – दिल्ली १९९८	अक्षर प्रकाशन
२.	समिक्षा	गोपाल राय	समिक्षा प्रकाशन
३.	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	सं, मनमोहन श्यामजोशी	नारी विशेषांक १९७८
४.	मानक हिन्दी कोश भाग–३	सं, रामचन्द्र वर्मा	हिन्दी साहित्य संमेलन प्रयाग १९६४